ओटक्कुषल्

(बाँसुरी)

मूल-कृति
जी० शंकर कुरुप

रूपांतर
जी० नारायण पिल्लै
लक्ष्मीचन्द्र जैन



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक २३५
सम्पादक एवं नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन



Lokodaya Series Title No 235
OTAKKUZHAL
(Poems)
G Sankara Kurup
Bharatiya Jnanpith Publication
First Edition 1966
Price 8.00



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस कलकत्ता २७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

विक्रय-केन्द्र
३६२०/२१, नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली ६
प्रथम संस्करण १९६६
मूल्य ८.००

मुद्रक
ज्ञानेन्द्र शर्मा
जनवाणी प्रिंटर्स ऐण्ड पब्लिशर्स प्रा लि,
१७८, रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता-७

हो सकता है कि कल यह वंशी
मूक होकर काल की लम्बी कूड़ेदानी में गिर जाये
या यह दीमकों का आहार बन जाये या यह
मात्र एक चुटकी राख के रूप में परिवर्तित हो जाये।
तब कुछ ही ऐसे होंगे जो शोक निःश्वास लेकर
गुणों की चर्चा करेंगे;
लेकिन लोग तो प्रायः बुराइयों के ही गीत गायेंगे।
जो भी हो मेरा जीवन तो तेरे हाथों समर्पित होकर
सदा के लिए आनन्द लहरियों में तरंगित हो गया
धन्य हो गया।

मुखपृष्ठ ई अल्काजी

तूने अपनी साँस की फूँक से
उत्पन्न कर दी है प्राणों की सिहरन
इस निःसार खोखली नली में। (जी शंकर कुरुप)

(मुखपृष्ठ की रचना करते श्री अल्काजी ने वंशी की जगह वंशी ध्वनि को चुना है एक छायावृत्त पत्ती के रूप में प्रकृति के बिखरे हुए अनेक उपादानों में से—कि वंशी का रूप चाहे जितना आधुनिक और सूक्ष्म क्यों न हो उस कल्पनालोक तक नहीं पहुँचाएगा जो महाकवि कुरुप की गीतात्मक प्रकृति से सम्पन्न है और आटक्कुपल् का प्रतीक भी।)

ज्ञा के सामने आ रही है। इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन भारतीय साहित्य के
हास की बड़ी घटना है। इस अवसर पर यदि भारतीय ज्ञानपीठ का विशेष
और गौरव अनुभव हो, तो यह स्वाभाविक है।

इस घटना के कितने कितने आयाम हैं। यह, कि समग्र भारतीय साहित्य
एक इकाई के रूप में देखकर उसके मूल्यांकन का प्रयत्न देश में पहला बार
हा है, कि, एक निश्चित विधि विधान के अन्तर्गत भारतीय साहित्य की
र कृति का निर्धारित अवधि में प्रकाशित सर्जनात्मक साहित्य की श्रेष्ठ उपलब्धि
पित करके देश का ध्यान उस कवि और उसकी कृति की ओर आकर्षित किया
रहा है, कि अपेक्षा है कि इस कृति का अनुवाद प्रकाशन हिन्दी का वास्तविक
य में देश की साहित्यिक उपलब्धियों के आदान प्रदान का सार्थक माध्यम प्रमाणित
रेगा कि, इस प्रकाशन से यह प्रमाणित होगा कि दिल्ली में जनमा और
ठा हिन्दी भाषा भाषी साहित्यकार (दिल्ली में इसलिए कि, यहां ही इस
काशन का अनावरण पहली बार हो रहा है) मूल मलयालम को देवनागरी लिपि
माध्यम से पढ़ कर देखेगा और विमुग्ध होगा कि जिस अखिल भारतीय संस्कृति
और सांस्कृतिक स्पंदन की बात कही जा रही है साहित्य के क्षेत्र में वह कोरी
ल्पना नहीं है ठोस यथार्थ है क्योंकि भाषा छन्द विधान, भाव निधि इतने
जाने-पहचाने लगते हैं जब उसकी अपनी भाषा की श्रेष्ठ कृतियां की भावभूमि
मलयालम के माध्यम से प्रस्तुत की जा रही हो—यद्यपि यहां दिल्ली, और वहाँ
केरल।

कृतिकार, महाकवि शंकर कुरुप का नाम इन पंक्तियों में अभी तक लिया
नहीं गया। केरल और दिल्ली के हृदयों के इस सम-स्वरीय स्पन्दन के विधाता
वे हैं। ओटक्कुषल् का शाब्दिक अर्थ मलयालम में, 'बांस की नली' है हिन्दी में
हमने उसे बांसुरी कहा है, अर्थात् वंशी—बांस की वंशी। कवि का नाम

'शकर' और कृति का नाम 'वशी'—जसे देश का सारा दाशनिक, साहित्यिक, सास्कृतिक चित्र फलक एक प्रकाश बिन्दु के आलोक में जगमगा उठा।

पुरस्कार के लिए इस कृति का वरण 'सवश्रेष्ठ' के रूप में प्रकाशन-अवधि की सीमाओ से बाधित है, यह बात ध्यान मे रख लेना आवश्यक है। पुरस्कार विधान के अतगत, १९६५ के पुरस्कार के लिए वे ही कृतियाँ विचारणीय थी जिनके लेखक जीवित हो, जो सजनात्मक साहित्य' की कोटि में आती हो और जिनका प्रकाशन सन् १९२० से १९५८ के बीच हुआ हो। कृति के वरण की पद्धति यह है कि भारतीय सविधान विहित १४ भाषाओ के लिए एक-एक 'भाषा परामश समिति' है जो अपनी भाषा की एक कृति को 'सवश्रेष्ठ' के रूप में चुन कर, भाषा वग समितियो के विचाराथ प्रस्तुत करती है। भाषा वग समितियो का गठन इस प्रकार होता है कि परस्पर सम्बद्ध क्षेत्रो की दो-दो या तीन-तीन भाषाओं का एक वग बनाया जाता है, क्योकि (अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त पडास के भाषाचल की भाषा जाननेवाले समीक्षक सुविधापूवक मिल जाते ह) जो सम्बन्धित भाषा-परामश समितियो द्वारा पुरस्कृत दो या तीन कृतियो पर विचार करते ह और उनमें से एक श्रेष्ठ' को चुन लेते ह। इस प्रथम पुरस्कार के सदभ में ऐसी ५ वग समितियाँ भी थी जिन्होने एक एक कृति को चुना, और अन्तिम निणायक मडल—'प्रवर परिषद्'—के विचाराथ प्रस्तुत किया। प्रवर परिषद' ने द्वि भाषी साहित्यिक समीक्षको से कृतियो का पारस्परिक मूल्याकन करवाया, एक विशेष आधार पर, इनका पुनमूल्याकन करवाया गया हिन्दी-अनुवाद भी सामने प्रस्तुत रहा, अन्तिम निणय से पहले सम्बन्धित भाषा समितियो के सयोजको और कृतियो के हिन्दी अनुवादको को आमन्त्रित करके प्रवर परिषद् ने उनमे अनुशासित कृतियो के सबन्ध में विचार विनिमय किया, प्रश्नोत्तर हुए मूल कृतियो के चुने हुए अशो के पाठ द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया कि अनुवाद में मूल के छन्द, स्वर लय की जो प्रतिध्वनियाँ नही आ पाई वे क्या ह—आदि आदि। इस प्रकार जो कृतियाँ अन्तिम चरण में विचारणीय थी, उनमें से प्रवर परिषद ने सव-सम्मति से महाकवि कुरुप की इस कृति ओटक्कुषल' का वरण सवश्रेष्ठ के रूप म किया।

प्रत्येक सभव प्रयत्न किया गया कि पुस्तक का वरण सवथा निष्पक्ष और प्रामाणिक रहे। हमें प्रसन्नता है कि भारतीय ज्ञानपीठ और प्रवर परिषद की निष्पक्षता और प्रामाणिकता के विषय में कही कोई सन्देह नहीं रहा। कृति के वरण के विषय में कही कोई मत भेद हो सकता है, वह प्रत्येक पुरस्कार के सम्बन्ध में सदा रहा है।

अनुवाद के प्रारूप को आधार बना कर रूपान्तर प्रस्तुत किया जा सका है। श्री भट्टतिरि ने अपने अनुवाद में हिन्दी की छन्द और लय ध्वनि देने का प्रयत्न किया। श्री जी० नारायण पिल्ल की लगन, उनकी क्षमता और श्रम बहुत सहायक रहे। वह दो बार कलकत्ता आये, कुछ दिन रहे और रूपान्तरण के लिए मूल के शब्दों और भावों का स्पष्टीकरण किया। संग्रह की एक कविता 'वन्दनम् पन्युव' का अनुवाद, 'शतश धन्यवाद' श्री दिनकर ने रेडियो के दिल्ली केन्द्र द्वारा आयोजित सर्वभाषा सम्मेलन में प्रस्तुत किया था। उसे सामार सम्मिलित किया गया है। एक समय कवि द्वारा प्रस्तुत अनुवाद को सम्मिलित करने का एक विशेष प्रयोजन यह भी था कि कवि की एक कविता का छन्दवद्ध प्रवाह नमूने के रूप में सामने आये और कवि की अन्य कृतियों के अनुवाद के लिए प्रेरणा मिले।

'ओटक्कुपल्' में संग्रहीत कविताओं का चयन कवि ने अपनी १९५० तक रचित कविताओं में से ही किया था। इधर के १५ वर्षों में कवि की प्रतिभा ने कौनसे सामर्थ्य और कौनसे आयाम प्राप्त किये है, जब तक वह सामने न आयें, कवि कुरुप के कृतित्व का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं हो सकता। भारतीय ज्ञानपीठ ने 'ओटक्कुपल्' के प्रकाशन के साथ-साथ कवि की चुनी हुई परवर्ती दस कविताओं का एक दूसरा संकलन, उनकी एक कविता के आधार पर एक और नचिकेता' शीर्षक से प्रकाशित किया है जो इसी प्रथम पुरस्कार-समर्पण-समारोह के अवसर पर पाठकों को भेंट किया जा रहा है।

कवि कुरुप ने अपने काव्य विकास के सम्बन्ध में जो वक्तव्य 'ओटक्कुपल्' की भूमिका के रूप में तयार किया था उसका अनुवाद सम्मिलित है। हाँ, श्री गुप्तन नायर का विस्तृत, भावपूर्ण भूमिका का अनुवाद सम्मिलित नहीं किया गया विशेषकर इसलिए कि हिन्दी के पाठक और समीक्षक कृति का रसग्रहण और मूल्यांकन स्वयं करें।

महाकवि और उनकी कविता के सम्बन्ध में विशेष कुछ न कह कर यहाँ हम उस 'प्रशस्ति' को उद्धरित कर रहे हैं जो कवि के सम्मान में समर्पित है

"भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रवर्तित एक लाख रुपये राशि का यह साहित्यिक पुरस्कार श्री जी० शंकर कुरुप को उनके मलयालम काव्य-संग्रह 'ओटक्कुषल' के लिए समर्पित है जिसे पुरस्कार विधान के अन्तर्गत गठित प्रवर परिषद ने सन १९२० से १९५८ के बीच प्रकाशित भारतीय भाषाओं के सर्जनात्मक साहित्य में विधिवत सर्वश्रेष्ठ निर्णीत और घोषित किया है।

"ओटक्कुषल का वरण यद्यपि सन १९६५ के लिए हुआ है, किन्तु इसका प्रकाशन वर्ष १९५० है। इस दृष्टि से यह कृति कवि के न केवल १९५० तक के सर्वश्रेष्ठ कृतित्व का प्रतिनिधित्व करती है अपितु उनके अगले १५ वर्षों तक के अधिक समर्थ कृतित्व का पूर्व परिचय देती है। 'ओटक्कुषल' की कविताओं में भारतीय अद्वैत भावना का माध्यम है जिसे कवि ने परम्परागत रहस्यवादी मान्यता के अंगीकरण द्वारा नहीं, प्रकृति के नानारूपों में प्रतिबिम्बित आत्म-छवि की वास्तविक अनुभूति द्वारा प्राप्त किया है। चराचर के साथ तादात्म्य भाव की इस प्रतीति के कारण कवि कुरुप के रूमानी गीति-काव्य में भी एक आध्यात्मिक और नैतिक उदात्त स्वर है।

कवि की काव्य चेतना ने ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक युगबोध के प्रति सजग भाव रखा है और उत्तरोत्तर विकास पाया है। इस विकास-यात्रा में प्रकृति प्रेम का स्थान यथार्थ ने समाजवादी राष्ट्रीय चेतना का स्थान अन्तर्राष्ट्रीय मानवता ने लिया और इस क्रम की परिणति आध्यात्मिक विश्वचेतना में हुई जहाँ मानव विराट विश्व की समष्टि से एकतान है जहाँ मृत्यु भी विकास का चरण होने के कारण वरेण्य है।

कुरुप बिम्बों और प्रतीकों के कवि हैं। उन्होंने परम्परागत छन्द विधान और संस्कृत निष्ठ भाषा को अपनाया परिमार्जित किया और अपने चिन्तन तथा काव्य प्रतिबिम्बों के अनुरूप उन्हें अभिव्यक्ति की नयी सामर्थ्य से पुष्ट किया। इसीलिए कवि का कृतित्व कथ्य में भी और शैली शिल्प में भी मलयालम साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में ही नहीं, भारतीय साहित्य की एक उपलब्धि के रूप में भी सहज ग्राह्य है।

कवि दीर्घजीवी हों। शुभं भूयात्!"

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

संपादक-नियोजक, लोकोदय ग्रंथमाला



महाकवि जी शंकर कुरुप

मेरी कविता

प्रकृति की कनिष्ठा सन्तान होने के कारण विश्व की अपेक्षा मनुष्य आयु में बहुत छोटा है। आज भी उसका जीवन शिशु-सहज कौतुक से भरा है। रूप, नाद, रस, गन्ध तथा स्पर्श के द्वारा उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ निरन्तर जागरूक हैं। ये ज्ञानेन्द्रियाँ हृदय तथा आत्मा को मोहित करनेवाला वृत्तान्त मनुष्य को सदा सुनाती आयी हैं। यह वृत्तान्त कितना भी लम्बा क्यों न हो मनुष्य की आत्मा को वह कभी बुरा नहीं लगता। आत्मा को तो इस बात का दुःख रहता है कि नयी अनुभूतियों के वृत्तान्त लाने के लिए मनुष्य के पास नयी इन्द्रियाँ नहीं हैं। आत्मा में इस कारण एक प्रकार की असन्तृप्ति बनी रहती है।

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अवगत होनेवाला विश्व मनुष्य के हृदय में एक कौतुकपूर्ण जिज्ञासा जाग्रत करता है। जब कल्पना चिन्तन आदि मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा प्रकृति का प्रतिबिंब आत्मा पर पड़ता होता है तब मनुष्य हृदय में जाग्रत जिज्ञासा, उस प्रतिबिंब का विश्लेषण करने तथा उसका सञ्चय करके एक कथा वस्तु के रूप में प्रकट करने के लिए तत्पर हो जाती है। विश्व विशाल तथा कला का यह सजीव स्रोत किसी के भीतर निरन्तर बहता रहता है तो किसी में तुषार कण की तरह प्रकट हो कर विलीन हो जाता है। मेरी आत्मा के किसी उच्च स्तर पर आज भी बहनेवाले उस स्रोत ने ही कदाचित मेरे हृदय में प्रकृति एवं मनुष्य-जीवन को ध्यान से देखने तथा उनका अध्ययन व आस्वादन करने का कौतुक उत्पन्न किया हो। यह आत्मीयता का भाव ही मेरी अकिंचन तथा अपूर्ण कविता का उद्गम है।

कुछ लोगों का मन्तव्य है कि वैज्ञानिक अभिज्ञता बढ़ने के साथ विलक्षणता कम होने लगती है तथा चिन्तनशक्ति के प्रहार से कल्पना का प्रासाद ढह जाता है। मुझे यह मान्यता ठीक नहीं लगती। सूर्य मण्डल के सम्बन्ध में मनुष्य की वैज्ञानिक जानकारी बहुत बढ़ गयी है। क्या उस जानकारी के कारण पृथ्वी तथा ग्रह मनुष्य की दृष्टि में और भी अधिक रम्य नहीं बने हैं? अपने प्रसन्न मुख पर प्रेम की उष्मता लिए अनन्त आकाश में कभी झुककर और कभी सीधे निर्निमेष देखने-वाला नित्य प्रेमी सूर्य तथा ऋतु-परिवर्तन की विचित्रता लिये अपनी तिमिर

केशराशि को पीठ पर फलाये विविध रगो में सजकर विविध शब्दो के साथ स्वय घूम घूम कर नृत्य करनेवाली पृथ्वी—इन सबके भव्य काल्पनिक चित्र मेरे लिए आज भी दर्शनीय है। एक क्षुद्र 'सेल' रमणीय सुदरी शकुन्तला के रूप में विकसित हो जाता है। क्या इस वैज्ञानिक सत्य में कल्पना की उडान के लिए स्थान नही है? वास्तव में विज्ञान से कल्पना का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा कौतुक बढ़ता है। बचपन के दिनो की बात है। इडव[1] मास की अधेरी रातो में जब मैं अकेला अपने छोटे घर के बरामदे में बैठकर पने झाड़ो की गोद से निकल कर उसी में छिप जानेवाली बिजली को देखता तो न जाने क्या, उछल पडता। आज मैं बिजली से अनभिज्ञ नही हूँ। वह मेरे परिवार का ही अग बन गयी है और इस समय मेरी मेज के पास खडी हो कर, पतले काच के मीने अवगठन के भीतर से मेरी लेखनी उसे देख-देख कर मुस्करा रही है। फिर भी विद्युत की अप्सरा के प्रति तथा उसको बाध कर रखनेवाले मनुष्य के प्रति मेरा कौतुक रत्ती भर भी कम नही हुआ है। अपने शरीर पर हाथ लगाने की अविवेकी कृत्य करनेवाले को भस्म कर देनेवाली बिजली क्या चरित्रगुण में दमयती से कम है? वैज्ञानिक अभिज्ञता कवि कल्पना के पखो को सत्य की रक्त शिरायें प्रदान करती है और उनमें उडान की शक्ति भर देती है।

कला-कविता

कौतुक से सजीव कल्पना विश्व तथा मनुष्य जीवन को अपनी ओर खीचने तथा अपने बाहुपाश में करने के लिए हाथ बढाती रहती है। इसलिए उसके हाथ बलिष्ठ होते है और उसकी पहुच दूर तक होती है। मन में बिजली-जैसी उठने वाली प्रक्रिया जब मनुष्य हृदय में और विश्व-हृदय में भी अपनी प्रतिध्वनि सुनने के लिए मचलने लगती है तब हमें सर्वव्यापी एकता की अनुभूति होने लगती है। कल्पना तथा मानसिक प्रक्रिया का यह कार्य जितना शक्तिशाली होता है उतना ही कलाकार का महत्व भी बढता है। कवि हृदय एव प्रकृति के बीच मधुर कल्पना तथा आर्द्र भाव युक्त सयोग से उत्पन्न होनेवाली अनुभूति का घनीभूत रूप ही कथावस्तु है। कल्पना कथावस्तु का प्राण है तो मानसिक प्रक्रिया है उसकी शिराओं में दौडनेवाला जीव रक्त। कल्पना सुरभित तथा भाव निर्मित इन कथा-वस्तुओं में प्रकृति तथा मानव आत्मा की छाप स्पष्ट रूप से देख सकते है।

१ ऋषभ राशि का तदभव रूप। केरल के महीने का नाम।

यह छाप ही कलाकार का व्यक्तित्व है, कथावस्तुओं का प्रकाश ही कला है। अपने कलात्मक जीवन की अनुभूतियों से कविता के सम्बन्ध में यही कुछ मैंने समझ पाया हूँ।

मेरे लिए कविता आत्मा का प्रकाश मात्र है। जैसे धूसर क्षितिज पर सन्ध्या की छवि प्रतिबिंबित होती है वैसे ही वन्धुर छंदों के पदबन्धों में कवि का हृदय प्रतिबिंबित होता है। इस आत्म प्रकाश से और कुछ बने या न बने, किन्तु एक कलाकार के लिए यह परमानन्द का कारण तो है ही। जैसे मंद पवन हंस के पंखों को ऊपर उड़ा ले जाता है वैसे ही परमानन्द की यह अनुभूति एक कलाकार की आत्मा को भौतिक शरीर से परे उठा ले जाती है। प्राचीन मनुष्य द्वारा गुहा भित्ति पर अंकित हिरन के चित्र को ही लीजिये। जब मनुष्य के हृदय से निकल कर वह हिरन अचल शिला पर दौड़ने लगा तब उसके साथ उस मनुष्य की आत्मा ने कितनी उड़ानें भरी होंगी। उस मनुष्य की अनुभूति का वह प्रतीक जब उसके मित्रों के हृदयों को भी पुलकित करने लगा तब वे भी उसके निकट खिंच आने लगे। इस प्रकार जो केवल एक व्यक्ति की आत्मा का प्रकाश था उसका एक सामाजिक मूल्य उत्पन्न हो गया। एक कवि होने के कारण अपनी अनुभूतियों का प्रकाश ही मेरे लिए परमानन्द का विषय है। और यदि उस आनन्द का आस्वादन अन्य लोगों को भी करा सका तो वह मेरी विजय होगी। उससे मेरी कला को एक सामाजिक आधार मिलेगा। लोगों का उत्कर्ष अन्य लोगों के द्वारा हो अथवा मेरे द्वारा! यह अनुभूति कैसी वांछनीय है, और कितनी आत्म-संतृप्ति है उसमें!

कविता व्यक्तिगत अनुभवों का प्रकाश है। 'मुत्तुकळ' नामक अपने कविता-संग्रह में मैंने अपनी यह धारणा प्रकट की थी। जीवन के यथार्थ-अनुभवों के आघात से हृदय में उत्पन्न होनेवाली मधुर संवेदनाओं को कल्पना का आवरण पहनाकर प्रकट करना ही रचना है। उसमें व्यक्ति की प्रधानता रहती है। 'इल्यूज़न ऐण्ड रियलिटी' नामक एक पुस्तक मैंने पढ़ी थी। उस पुस्तक में उपर्युक्त कथन का प्रतिपादन यह प्रमाणित करने के लिए किया गया था कि कला व्यक्ति की नहीं समाज की सृष्टि है। ये दोनों बातें परस्पर विरोधी लगती हैं। किन्तु वास्तव में हैं एक ही सत्य के दो पहलू। क्योंकि व्यक्तिगत अनुभव सामाजिक अनुभवों का अंग है और व्यक्ति सामाजिक परिस्थितियों की उपज है।

मेरे गाँव के हरे मैदान, सुनहरे खेत, ग्राम्य हृदय में मस्तक ऊँचा किये खड़े रहनेवाला प्राचीन मंदिर दरिद्रता में डूबा हुआ प्रतिवेश, कवि कल्पना को अपने पास बुलानेवाली पहाड़ियाँ इन्हीं सब ने मेरे हृदय को स्वप्नों से भर दिया था और फिर

उन स्वप्नों को विविध रंगों में सजाया तथावाणी देकर सजीव बनाया था। वह खेत जिसमें कगना-हँसिया की चमक दिखाई देती है, सिर पर धान का बोझा लिए चलने में हाँफती हुई वे कृषक कन्याएँ, अपनी खोपड़ी की इमलियों पर बैठे रहनेवाले पुलयर[1] सन्ध्या के शान्तिपूर्ण वातावरण में मधुरता फैलाता हुआ मंदिर से आनेवाला शंखनाद—इन सब से मेरे कल्पना-समुद्र में अव्यक्त एवं विचित्र तरंगें उठी हैं।

सरणामुख सामन्तशाही तथा पाखण्डी पुरोहितों के अत्याचार के कारण ही गाँव का जीवन विकृत हो रहा है यह बात बचपन के उन दिनों में मैं नहीं समझता था। तो भी सामन्ती पाखण्डियों तथा उनके नियमों के प्रति मेरे हृदय में लेश मात्र आदर नहीं था। मेरे हृदय में जब मेरा व्यक्तित्व अंकुरित हुआ तब उसको वायु तथा प्रकाश का आहार मिला मेरे गाँव के वातावरण से। इसलिए मेरी कविता भी उस ग्राम हृदय का एक अंग है। उसके बाद जब अध्यापक का काम करने लगा तब एक और गाँव का प्रभाव मेरे हृदय पर पड़ा। तिरुविल्वामला का विशाल हृदय की तरह फैला हुआ स्वप्न सा द्रुमैदान, टीला-वनों में आँखमिचौनी खेलती हुई संकेत स्थान पर आ मिलनेवाली नदियाँ, हाथों में जलकुंभ लिए खड़े रहनेवाले मेघ, तराई के मार्ग पर मन्दगति से जानेवाली बैलगाड़ियाँ ये सब दृश्य हैं जिनके कारण एकान्त में भी मैं एकाकी नहीं था। वे दृश्य मेरे व्यक्तित्व के विकास में सहायक रहे। *एकादशी के पर्व के अवसर पर दयालुओं की उदारता की आशा में मार्ग पर मिट्टी की थाली रख कर दूर जा खड़े होने वाले* नायाडियों[2] को देख कर मुझे दारिद्र्य तथा छूत छात की क्रूरता के साथ-साथ किसी समय स्थापित हुए आर्यों के उपनिवेशों का स्मरण हो आता। तो भी मनुष्य को प्रकृति चित्र के कतिपय बिंदुओं की तरह ही मैं देख सका था। सम्भव है उस समय प्रकृति चित्र को संवेदनाओं के उत्ताप से सजीव बनाने के लिए ही मेरा मन मनुष्य को ढूँढता था। *किन्तु आज मैं प्रकृति चित्र से भिन्न मनुष्य के आदर्शमय अस्तित्व का वास्तविक चित्र देखता हूँ।*

बाल्यकाल स्मृतियाँ

एक ऊजड़ गाँव के छोटे परिवार में मेरा जन्म हुआ था। आर्थिक दृष्टि से दरिद्र होने पर भी माँ तथा मामाजी के वात्सल्य वन की गोद में मैं पला था।

---
१ एक जाति का नाम जो अछूत मानी जाती है
२ एक अछूत जाति

पिताजी को अभी आस भर देख भी न पाया था कि उनका देहान्त हो गया। मेरे पिताजी मुझे शोकसागर में छोड कर चले गये और मेरे भीतर एक ऐसी रिक्तता छोड गये जिसकी पूर्ति असभव है। उनको स्मरण करते हुए मेरा मन कभी कभी किसी अदृश्य लोक में पहुँच जाता और आध्यात्मिक ज्ञान से अपनी झोली भर कर लौट आता। मेरी मा का हृदय प्रकृति के समान विशाल था। मेरे मामाजी चाहते थे कि उनका भानजा शीघ्रातिशीघ्र आदमी बन जाए। तीन वर्ष की आयु में उन्होने मेरा विद्यारभ कराया—एव आठ वर्ष की आयु तक पढाया। उन्होने न तो मुझे खेलने दिया, न सखाओ के साथ मिल कर ऊधम मचाने दिया। मेरा शारीरिक नही, मानसिक स्वास्थ्य उनका अभीष्ट लक्ष्य था। बचपन में ही आदमी बन जाना कोई अच्छी बात नही है। किन्तु म उसी रास्ते पर चल रहा था। 'अमर कोश' 'सिद्धरूपम' 'श्रीरामोदन्तम' आदि ग्रन्थ कठस्थ हो चुके थे। रघुवश काव्य के कई श्लोक पढ चुका था। ऐसे समय सौभाग्यवश मेरे गाँव में एक प्राथमिक पाठशाला की स्थापना हुई। मामाजी ने मुझे पाठशाला के दूसरे वर्ग में भर्ती करा दिया। इस प्रकार कठिन अनुशासन मे सस्कृत काव्यो को कठस्थ करने के काम से छुट्टी मिली। साथ ही साथ अपनी इच्छा के अनुसार स्वतन्त्र रूप से काव्य रसास्वादन की प्रेरणा मन में जाग उठी। मेरे मामाजी के पास भाषा टीका के साथ सस्कृत काव्यो के बहुत से ग्रन्थ थे। म उन्हें पढने लगा। कविता के प्रति कौतुक बढानेवाली उस शिक्षा के प्रति अपना ऋण म कृतज्ञता के साथ स्वीकार करता हूँ। सस्कृत काव्य-जगत में प्रवेश करने का [illegible] मेरे लिए उस समय खुला था, उसको मने आज तक बन्द नही होने दिया [illegible] तत्परता के रूप में म अपनी गुरुदक्षिणा देता रहूँ—यही मेरी कामना है।

कविता की ओर मुझे उन्मुख कर देनेवाली एक और घटना [illegible] १०८७ के (मलयालम सवत्) लगभग, जब म ग्यारह वर्ष का [illegible] कुंजिकुट्टन तपुरान अपने कुछ नपूतिरि मित्रो की प्रेरणा से मेरे [illegible] इतिहास प्रसिद्ध मन्दिर में पधारे। (वरमान[1] पद्मनाभ द्वारा [illegible] निर्मित कहे जानेवाले प्रस्तुत मन्दिर के बार में बहुत-सी दन्तकथा [illegible] मन्दिर की भित्ति पर अकित चित्र कला प्रेमियो का [illegible] चेङन्नूरमन[2] के हाथी का उत्तरापाय के लिए नाथ [illegible] आह्लाद प्रकट किये गये की मन्त्र कृष्ण महाकवि के आम्न [illegible]

---

१ जनपद केरल का अन्तिम सम्राट
२ एक प्रसिद्ध ब्राह्मण भवन

लक्षित हुए। "कवि बनना एक महान दवी सिद्धि है" शायद मुझे उस दिन ऐसा लगा होगा। तदुपरान् व प्रति मरे मन में उत्पन्न आदर और पक्षपात वर्षो तक रहा। किन्तु बाद का उनकी कविताओं में से कुछ ही ने कविता की हैसियत से मुझको आनन्दित किया है। शायद केवल भावगीतों की ही (लिरिक) कविता मान ऐंठनवाली मेरी मुग्धता ही इसका कारण हो। साहित्य की ओर मुझे आकर्षित करने वाली एक प्रमुख घटना थी यह मुलाकात। मेरी माताजी गर्व का अनुभव किया करती थी कि आठवें महीने में चलने लगा। उसी तरह मातुल भी कहा करते थे कि उसने नवें वर्ष में कविता लिखी। आज लज्जा के साथ मैं याद करता हूँ कि वे सब पद्य की हैसियत से भी मूल्यवान् प्रयास नहीं थे। जब म चौथी कक्षा में पढता था, अपने एक सहपाठी के प्रति उत्पन्न कृतज्ञता पर, अपने पुराने घर के किसी कोने में बैठकर संस्कृत के छन्दों में कुछ पंक्तियाँ लिखीं। (वह सहपाठी जिसने पोलियो के आघात से कक्षा में चक्कर खाकर गिर जाने पर मुझको अपने कन्धे पर उठाकर एक मील पैदल चलकर घर पहुँचाया था आज जिन्दा नहीं है।) वे पंक्तियाँ भी छन्दों के बन्धन में रहने की शिक्षा प्राप्त अक्षर मात्र थी। एक कुटुम्बी मित्र ने जो काव्य छन्द का लक्षण देखकर मात्रा और पंक्तियों का मिलान थे, मेरी जो प्रशंसा की वह शायद उनके सौजन्य के कारण। 'अक्षरश्लोक' एवं तुकबन्दी—ये दोनों, विद्यार्थियों में से हम कुछ लोगों के लिए मध्याह्न भोजन के स्थान पर होनेवाला कार्यक्रम बना हुआ था। क्षीरसागर मन्थन की कथा को विभाजित कर मैं और मेरे मित्र ने जो शतक लिखा उसको सुनकर परम्पावूर स्कूल के सातवीं कक्षा के अध्यापक ने कहा—"शतक सुनाने की परीक्षा आ रही है।"

उस अवस्था से ही मैं साम्यवाद के पक्ष में दरिद्रों के साथ रहा हूँ। प्रसिद्ध वाग्मी एवं प्रशस्त समाजसेवक श्री एम० एन० नायर जो बाद में मंत्रिस सामाजिकी की सभा में चले गये, मुवाटदुपुषा में मेरे अध्यापक थे। वे मुझे बड़े लाड-प्यार से प्रोत्साहित किया करते थे। ब्रिटिश हिस्ट्री और अर्थशास्त्र वे ही पढ़ाते थे। सोश्यलिज्म के पर्यायवाची शब्दों के तौर पर वे कभी 'समष्टिवाद' और कभी समाजसमत्ववाद' के शब्द इस्तेमाल करते थे। 'अपनी समस्त सम्पदा को समाज की सम्पत्ति बनाकर समान रूप से उपभोग करने के लिए जो सन्नद्ध हैं वे खड़े हो जायें'—एक दिन गुरुजी ने हँसते हुए कहा। मैं उठ खड़ा हुआ। "इससे तो शंकर कुरुप की कोई सम्पत्ति नष्ट होनेवाली नहीं है न?" हँसते हुए फिर जब गुरुजी ने पूछा तो मैं लज्जित भी हुआ हो। बाद को ही मुझे पता चला कि

एशिया के राष्ट्रों में मुझसे कम सम्पत्ति रखनेवाले ही मेरे जैसे सम्पत्तिवाला से कहीं अधिक हैं। रूस उन दिनों आर्थिक शान्ति का द्वार खटखटा रहा था।

मामाजी ने मेरे हृदय में ज्ञानतृष्णा की जो लौ लगाई थी उसकी ज्वाला बढ़ती गयी, यही मेरे लिए बड़े सौभाग्य का विषय है। 'तिरुविल्वामला' में जब मैं अध्यापक बन कर गया तब मुझे इस बात का आनन्द था कि वहाँ रह कर अंगरेजी भाषा तथा साहित्य से परिचय करने का अवसर मिलेगा। मेरे कविता-संग्रह 'साहित्यकौतुकम्' के प्रथम भाग की कविताएँ तिरुविल्वामला जाने के पहले की हैं। मुझे उस समय ही लग रहा था कि मेरे मन के विकास के लिए आवश्यक प्रकाश मुझे अपनी उस समय की शिक्षा से नहीं मिला था। तिरुविल्वामला में आकर मैंने अपने अध्यापक मित्रों को गुरु बनाया और उनकी सहायता से अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया। टैगोर और उमर खय्याम के अतिरिक्त बहुत से अंगरेजी कवियों समालोचकों के पास सविनय पहुँचने का मार्ग इस तरह मेरे सामने न खुलता तो 'साहित्यकौतुकम्' की सीमा से कदाचित् मैं आगे न बढ़ पाता। यह नया मार्ग मुझे संस्कृति की खान की ओर ले गया। मेरे कल्पना क्षितिज का विस्तृत तथा आदर्श-बोध का विकसित करने में टैगोर का जितना हाथ था उतना शायद किसी और का न रहा हो। उमर खैय्याम' हाफ़िज़' आदि फारसी कवियों से परिचय होने पर मुझे लगा कि उनकी कविताओं में कल्पना के परिमार्जन पर नहीं, प्रतिप्रतिपादन की रीति पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अंगरेजी साहित्य मुझे गीति के आलोक की ओर ले गया।

मेरी आयु बीसवीं शताब्दी से केवल छह महीने कम की है। प्रथम विश्व-युद्ध के समय जर्मनी की विजयों की वार्ता सुनता तो मेरा विवेक शून्य हृदय आनन्द से नाच उठता क्योंकि उसमें पराजय हो रही थी मेरी मातृभूमि को पराधीन कुचलने वाले ब्रिटिश साम्राज्य की। गांधीजी के नेतृत्व में होने वाले स्वतन्त्रता संग्राम तथा धार्मिक क्रांति ने मेरे हृदय में देश प्रेम का मंत्र फूंका। रूस की आर्थिक तथा सामाजिक क्रांति और उसके द्वारा होने वाली जनप्रगति से मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ और मेरे हृदय में साम्यवाद की नींव पर सामाजिक व सांस्कृतिक संगठन का संकल्प घर कर गया। एबिसीनिया पर होने वाले फासिस्ट अत्याचारों तथा जापान की चीन पर चढ़ दौड़ने की धृष्टता ने मेरी कल्पना को देश के प्राचीरों से निकाल कर मनुष्य मात्र के दुःख व अभिलाषाओं में साथ देने की प्रेरणा दी। और फिर दूसरे विश्व-युद्ध के बाद मेरी मातृभूमि ने स्वतन्त्र होकर अपना सिर उठाया तो मेरा भी सिर ऊँचा हुआ। इतिहास

की इन घटना-बहुल घड़ियों के कारण मृत्यु से जीवन की ओर, अन्धकार से आलोक की ओर निरंतर प्रयाण करते हुए देश के एक कोने में पैदा हो कर बढ़ने वाले एक व्यक्ति के हृदय में उठने वाली समय की, क्षीण प्रतिध्वनि मेरी कविता में पायी जाएगी।

तुच्छ पदविन्यासों लिये अधीर हो कर पहले पहल जब मैंने साहित्य-संसार में पदार्पण किया तब मेरे आराध्य देव थे महाकवि वल्लत्तोल। "साहित्यमंजरी"[1] के कल्पना-सुरभित तथा मधुर भावों से भरे गीतों ने मेरे हृदय को पहले ही मंत्र मुग्ध कर लिया था। महाकवि उल्लूर के रचना-वैचित्र्य ने मुझे चकित कर दिया था। महाकवि कुमारन् आशान की हृदय की गहराई की भाव-व्यञ्जना करने वाली कविताओं से परमानन्द का अनुभव मुझे बाद में हुआ। वल्लत्तोल के उपग्रह, नालप्पाटन तथा के॰ नवननायर बुध गुरु की तरह साहित्य क्षितिज पर चमक रहे थे।

मेरी कविता का रंग प्रवेश हुआ वल्लत्तोल की पत्रिका आत्मपोषिणी में। मेरी प्रथम रचना पढ़ कर महाकवि ने बड़े प्रेम के साथ एक पत्र लिखा और मुझसे शब्दालंकार की तड़क भड़क से दूर रहने को कहा। मेरी दूसरी रचना पढ़ कर उन्होंने रचना तथा पदचयन सम्बन्धी कई विशेष बातें समझाइं। मेरी तीसरी रचना 'घनमेघ की पाटी पर इन्द्र धनुष की रेखा खीचनेवाली प्रकृति बाला' के सम्बन्ध में थी। उसको पढ़ कर महाकवि ने अभिनन्दन का पत्र भेजा। उससे मेरा साहस बढ़ा। किन्तु अल्प समय के अन्दर ही वल्लत्तोल ने आत्मपोषिणी का सम्पादन छोड़ दिया। उसके बाद कविता रचना के रहस्यों को सीखने के लिए मैं और किसी के पास नहीं जा सका। जिनका सौहार्द सुरभित सम्पर्क मेरे साहित्य जीवन में लाभप्रद हुआ है उनमें सुप्रसिद्ध समालोचक सी॰ एम॰ नायर तथा ख्यातिनामा कवि कल्लमारत्तोटि रामुण्णिमेनन के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री रामुण्णिमेनन मुझे अपना भाई समझते थे। इन्द्रधनु तथा वृन्दावन' के ऊपर मेरे गीतों की प्रशंसात्मक आलोचना करके सरदार के॰ एम॰ पणिक्कर ने मेरा उत्साह बढ़ाया था। एक बार उन्होंने एन्थालोजी आफ वर्ल्ड पोयट्री आदि पुस्तकें उपहार स्वरूप भेज दी थी। यही नहीं अन्वेषणम' आदि कई एक कविताओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद करके उन्होंने मेरा सम्मान किया। मेरे साहित्य जीवन के प्रारंभ में ही सरदार के॰ एम॰ पणिक्कर और थोड़े समय बाद से प्रिंसिपल शङ्करन् नम्पियार ने मेरा जो उत्साह बढ़ाया है उसको मैं कृतज्ञता के साथ स्मरण करता हूँ।

---

१ वल्लत्तोल का कविता-संग्रह

मेरे विचार में, मेरी प्रारम्भिक कविताओं में जीवन का सञ्चार किया है, प्रकृतिप्रेम तथा देश भक्ति ने। प्रकृति के प्रति मेरा आकर्षण उसके साथ मेरा निकट सम्बन्ध, उसके साथ एकाकार हो जाने की अनुभूति तथा उससे प्राप्त प्रकृति के परे रहने वाली चेतना शक्ति का आभास इन सब की पूँजी के बल पर ही साहित्य लोक में प्रवेश करने तथा उसके एक कोने में घर करने में मैं समर्थ हुआ हूँ। 'सान्ध्य नक्षत्र' जब हँसने लगा तब मेरा हृदय भी हँस उठा था। उसी समय मुझे अनुभव हुआ कि एक ही चेतना शक्ति हम दोनों में विद्यमान है। इस अनुभूति से मुझे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन करने की क्षमता 'सान्ध्य-नक्षत्र' से 'अन्तर्दाह' तथा 'विश्वदर्शन' तक पहुँचने पर भी मेरी भाषा में नहीं है। तरंग-ताडित नदी में सम्वेदनाओं की उथल-पुथल मचाने वाले अपने हृदय का आभास देख पाना, सूर्यकान्ति के कम्पित अधरों में अपने भाव तरल अधरों को देख सकना, अरुणोदय की प्रतीक्षा में तपस्या करने वाले कमल के रूप में सत्य-सौंदर्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाले अपने जीवन को देख सकना—मेरे लिए परमानन्द का कारण है।

श्री ए० बालकृष्ण पिल्ल के सम्पादन में निकलने वाली 'केसरी' पत्रिका में मेरे कविता-संग्रह 'सूर्यकान्ति' की समालोचना हुई थी। उस समय मैंने यह दिखाने की चेष्टा की थी कि उस समालोचना से मेरा कुछ बिगड़ा नहीं है। वास्तव में उससे मेरी कल्पना को बड़ी चोट लगी थी। रोमाण्टिक ढंग की कविताओं का सुन्दर संग्रह कहकर 'सूर्यकान्ति' की प्रशंसा करने के बाद केसरी ने 'रोमाण्टिक' कविता की खिल्ली उड़ाई थी। संक्षेप में समालोचक का कहना था कि जिस लेखनी को 'रियलिज़्म' का नेतृत्व करना चाहिए वह पथ भ्रष्ट हो कर भटक रही है। इस समालोचना से मुझे दुःख भी हुआ क्षोभ भी। असमंजस में पड़ कर कई दिनों तक मैं हतोत्साह भी हुआ। मेरी कविताओं की यह प्रथम प्रतिकूल समालोचना थी। इस आघात के बाद 'मेरी कविता से' नामक रचना द्वारा मैंने अपनी कविता को सान्त्वना देने की चेष्टा की। यह नहीं कह सकता उससे मेरी कविता को कोई सान्त्वना मिली। चाहे जो हो, कहानियों व उपन्यासों में पायी जाने वाली रियलिज़्म कविता के लिए मुझे अच्छी नहीं जँची। प्रसंगवश, मैं यहाँ पर एक लेख का उल्लेख करना चाहता हूँ जो 'जॉन ओ' लण्डन' नामक साप्ताहिक में रिचर्ड चर्च ने लिखा है—'कविता व यथार्थवाद पर उस प्रसिद्ध समालोचक के विचार हमारे यथार्थ-मार्गगामी कवियों को ध्यान से पढ़ने चाहिए।'

उसके बाद मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि कल्पना में जीवित रहने वाली कविता को नयी अनुभूतियों से सजा कर नये परिवेशों से प्रेरणा ले कर लावण्य व

चेतनापूर्ण रूप देना ही कवि का कर्तव्य है। इस अभिज्ञता का प्रथम निदर्शन था मेरा 'नाळे' (आगामी कल) नामक गीत। उसकी रचना शैली 'रोमाण्टिक' कवि की थी तो उसका प्रतीक प्रदान किया था प्रकृति ने। परम्परा से प्राप्त अधिकार के बल पर मनमानी करने वाले मुट्ठी भर लोगों के आतंक से छूट कर जनता को स्वतन्त्र वातावरण में रहने का अधिकार दिलाने वाले एक 'नाळे' की परिकल्पना थी उसमें। केसरी के ममत्वपूर्ण प्रहार ने मुझे दुर्बल नहीं किया, बल्कि—यद्यपि मैंने उनके कहे मार्ग का अवलम्बन नहीं किया—मुझमें आगे बढ़ने की शक्ति और और स्फूर्ति उत्पन्न की। (उस कविता का मेरी नौकरी पर जो परिणाम हुआ उसके बारे में कहने की आवश्यकता नहीं।)

उस कविता के बाद के तीन चार वर्ष आलस्य तथा शारीरिक अस्वस्थता की पीड़ाओं में कटे। वह समय किसी प्रकार के रचनात्मक कार्य के लिए अनुकूल न था। एक एकांकी नाटक 'इरुट्टिनुमुन्पु' 'कालम' 'नक्षत्रगीतम' आदि गीत तथा कई एक लेख बस ये ही सब उस समय की रचनाएँ हैं। दूसरे विश्व-युद्ध के पहले नई आकांक्षा देश प्रेम का आदर्श अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण तथा मनुष्य की प्रमुखता में विश्वास ले कर जब प्रगतिशील विचार धारा सर्वत्र फलने लगी तब मेरी कविता भी अपनी तन्द्रा से जाग उठी। 'निमिषम्' 'वेंकतिरकळ' 'सन्ध्या मुकुळ' 'इतळुकळ' आदि मेरे कविता संग्रहों में भारत की स्वतन्त्रता के पूर्व के धूप छाया के प्रतिबिम्ब मिलेंगे। उसके बाद की अनुभूतियाँ संगृहीत हैं—'वनगायकन' 'पथिकन्टे पाट्टु', 'अन्तर्दाहम्' 'वेळ्ळिल परवकळुम' आदि में।

कुछ लोगों का कहना है कि 'सूर्यकान्ति' के साथ मेरी कविता का विकास बन्द हो गया है तो कुछ लोग यह भी कहते हैं कि नहीं 'सूर्यकान्ति' के बाद मेरी कविता विकसित हुई है। किन्तु मेरे लिए मेरी सभी कविताएँ मेरे आत्म विकास का प्रतिबिम्ब हैं। 'सूर्यकान्ति' मेरे श्मशान का फूल नहीं बल्कि तारुण्य के शिखर पर मधुर सम्वेदनाओं से प्रेरित हो कर खिला हुआ मेरा ही हृदय है। उसके बाद मैं वहाँ से भी ऊपर उठ गया हूँ। मेरी आँखों ने नये दृश्य देखे हैं कानों ने नई ध्वनियाँ सुनी हैं। मेरे हृदय ने अपनी व्यक्तिगत परिधि को पार कर विश्वमात्र के चेतन जीवन के साथ एकाकार होने की चेष्टा की है। हो सकता है सूर्यकान्ति के बाद की मेरी कविताओं में आध्यात्मिक या लौकिक प्रेम-स्वप्नों का उन्माद छलकता हो। किन्तु मैं दावा करता हूँ कि उन कविताओं में एक अधीर हृदय का स्पन्दन है जो मनुष्य की महत्ता में गर्व करता है जिसमें सुन्दर भविष्य के स्वप्नों का उत्साह है जो मनुष्यता का मूल्य गिरता देख कर दुःखित है और जो सौंदर्य बोध को मनुष्य जीवन के लिए मृतसंजीवनी मन्त्र समझता है।

[मूल— जी० शंकर कुरुप। हिन्दी अनुवाद—गोविन्द विद्यार्थी]

अनुक्रमणिका

ओटक्कुपल्

ओटक्कुषल्

नीलयिल् जीवितगीतिक्ळ पाटुम् दि
क्कालातिवर्त्ति माहात्म्यशालिन्!
आरालुमनातमामेता मण्णिल् वी
णाराल् नशिक्कुवान् तीर्न्नोरिन्ने
निन् दयावैभवम् जगमाजगम-
मन्दनमायोरु वेणुवाक्कि।
भावल्कनश्वासत्ताल् चतयपूर्णमेन्
जीवितनिस्सारशून्यनाळम्।

मानसमादक लाकवगायक,
गानमायडडेभिल् वर्त्तिम्वतुन्नु।
मल्लेङ्कुलिग्जडसाश्नम् वल्लुमो
वल्लतुम् हृप्टमायालपिप्पान?

हूमन्दहासत्तिन् वेण्णुर, निम्मल-
प्रेमप्रवाहत्तिन मन्द्रध्वानम्,
जीवितमत्सरम् तन्नोळम् तळळल् वा-
ण्पाविलनीलनेत्राल्पलडडळ
दारिद्रयक्कोटक्कार च्चात्तिन् वरिलिपल्
पारिलेप्पापत्तिनावत्तनडडळ,
एन्निव चेर घालिच्चीटट्टे मेलक्कुमे-
लेन्निलेस्सगीतकल्लालिनि!

बाँसुरी

नाना भाव से जीवित गीतों का गानेवाले
दिशा और काल की सीमाओं से निर्बन्ध हे महामहिमामय !
मैं जनमा था अनाम-अपरिचित
वहीं मिट्टी में पड़े-पड़े नष्ट हो जाने के लिए
किन्तु तेरी वैभवशालिनी दया ने
मुझे बना दिया है बाँसुरी
चराचर को आनन्दित करनेवाली ।
तूने अपनी साँस की फूँक से
उत्पन्न कर दी है प्राणों की सिहरन
इस निस्सार खोखली नली में ।

मन को मगन कर देनेवाले
अखिल विश्व के अनाम गायक !
तू ही तो है जो मेरे अन्दर गीत बनकर बसा है
अन्यथा क्या बिसात थी इस तुच्छ जड़ वस्तु की
किंचित् भी कर सकती राग-आलाप
इस प्रकार हर्षोल्लास से भरकर ।

मन्द-हास का मनोरम नवल धवल फेन
प्रेम प्रवाह की कलकल मन्द्र ध्वनि
मानव अहङ्कार की उद्दाम लहरों का उछाल,
अश्रुसिक्त नेत्रों के नीले कमल,
दैन्य-दारिद्र्य के वर्षाकालीन मेघों की काली छाया,
सांसारिक पापों के भँवर-जाल
—इन सब को साथ लिये लिये बहती रहे
मेरे अन्तर की संगीत-उल्लासिनी यह सरिता
हे प्रभु !

ओटक्कुष़ल

आटक्कुपलितु नीट्टुट्ट वालत्तिन्—
कूटयिल् मूकमाय वीपाम् नाळे,
मण्चितलायक्का, मल्लॅक्किलित्तिरि
वेण्चारम् मात्रमाय मारिप्पाकाम्।
न मयेच्चाल्लि विनिश्वसिक्काम् चिलर,
ति मयप्पटि टये पाट्ट लाकम्।
एनालुम निन कैयिलप्पिच्चारन जन्म-
मनाळुमानन्दसान्द्रम् धन्यम।

—१६२६

हो सकता है कि कल यह वाणी,
मूक होकर काल की लम्बी कूड़ेदानी में गिर जाये
या यह दीमकों का आहार बन जाये या यह
मात्र एक चुटकी राख के रूप में परिवर्तित हो जाय।
तब कुछ ही ऐसे होंगे जो शोक निःश्वास लेकर
गुणों की चर्चा करेंगे
लेकिन लोग तो प्रायः बुराइयों के ही गीत गायेंगे।
जो भी हो मेरा जीवन तो तेरे हाथों समर्पित होकर
सत्य के लिए आनन्द-लहरियों में तरंगित हो गया
धन्य हो गया।

—१९२९

अम्मयेविटे ?

"एविटेये विटेयम्म, यच्छनेन्तो
वविळ कपुकुम्बितु मण्णुनीरिनाले ?"
पवियुमलियुमारलम् वितुम्पुम्
पविपनिरच्चोटिपूण्ट पैतल् चाल्पू ।

चरमजलधितन् करयक्कु पोकान्
परमरसत्तोटु पूपियात्त मूयन्
विरमोटमलसच्यतटे चेता
हुरवसनत्ते वलिञ्चिपच्चु निल्पू ।

पक्लरतिपिलम्बरालयत्तिन
मुकळनिलयिकलणञ्ञ काञ्चु तारम्
अक्मुपरि विळत्तुनिल्कयल्ली
स्वकजनमिन्नियेयडङ्ङु मण्टिटाते ।

प्रणयविवशयायेटुक्कुवाना
क्षणद शशाककुमारनाटुकूटि
अणयवेयुरळुनु सागरम् वेण्
मणलोळि मत्तयिलात्तकौतुकत्ताल् ।

माँ कहाँ है ?

'कहाँ है, कहाँ है माँ ?
पिताजी, आपकी आँखों से
क्या बहे जा रही है आँसुओं की धार,
क्या आप गालों को धो रहे हैं बार-बार ?"
—पूछ रहा है मुन्ना, इस तरह रो-रोकर
कि वज्र भी पिघल जाये।
लाल प्रवाल जैसे उसके होंठ प्रश्नाकुल हैं।

अस्त सागर के द्वार पर पहुँचने के लिए
अत्यन्त उल्लास विकल सूर्य शिशु
आह्लाद की किलकारियाँ भरता हुआ
निर्मल सन्ध्या के मनोरम आँचल को
बारबार घसीट जा रहा है।

दिनान्त हो गया है
एक छोटा सितारा अम्बर की ऊपरी मंज़िल पर
खड़ा है अत्यन्त विपन्न और पीत-वर्ण
क्योंकि नहीं दिखाई दे रही है कहीं भी उसे
अपनी माँ रात्रि।

वात्सल्य से विकल होकर गोद में उठा लेने के लिए
जब आती है रात्रि बालचन्द्र के साथ
तो सागर आनन्द विह्वल होकर
लोट-पोट हो जाता है
सिकताओं की प्रभापूर्ण शय्या पर।

मोटक्कुपल

कर कटलिविटत्तिलोक्वेयुम दुर–
भरक्दनत्तोट्ु ताययेस्सदापि
तिरवोरु चेरुक्काटट्ु हा! निराशा–
परवशनाय् करयुनु दीनदीनम्।
एविटेयेविटेयम्म ?–तकमे नी
कवियुवोराटलिनाल् विळिच्च देवि
दिवि मरुवुकयाणुडुक्कळेत्त–
प्पविरननाळनयालनग्रहिप्पान।

—१९२४

भूमि और सागर के इन सभी प्रदेशों में
सन ही मा को खोजनेवाला बाल-पवन
निराशा से पराभूत और नितान्त दीन
बिलख बिलखकर रो रहा है
'कहा है, कहा है माँ ?'
प्यारे मुन्न !
तून शोकाकुल होकर जिस देवी को पुकारा है
वह तो स्वर्ग में निवास कर रही है,
देख तो, वहा उसे कितने सारे नक्षत्रों को
निरन्तर पालना-पोसना है अपना प्यार देना है !

—१९२४

पुष्पगीतम् . १

१

श्यामसुन्दरमायि
　　　राजिच्चुमनाद्यन्त-
व्योमम, विश्वव्यापि-
　　　याय निन् हृदयान्तम
प्रेमशीतळमायि-
　　　त्तुळिक्कुम् मञ्ञिन् तुळ्ळि
फोळमयिर् कोण्टेटि्टट्टु
　　　पूणकाममिप्पुष्पम् ।

सागरम् निरप्पक्कुन्न
　　　मयिनिल्ललो पञ्ञम
वेगमीयळुक्किनुम्
　　　वेणुन्न निरखेपान् !

पेलवम् दलपुटम्
　　　भगवन् भवद्दया-
लोलशीकरम् ताडिङ-
　　　ल्लामाद्मारानन्नम् ।

नीयारालेटुत्तालु-
　　　मी तुळिळ तेजोराशे,
पायालो वेरुम् मणि-
　　　　　लेङनानुम् दीवल्यत्ताल ?
तावकागथी पञ्च
　　　पिटिप्पिच्चोरिक्कुन्निन-
ताप वाग्प्रदेशत्तिल्
　　　स्वातन्त्र्यम् तानाजमम्

पुष्पगीत • एक

१

श्याम सुन्दर
अनादि अनन्त,
हे आकाश!
तेरे विश्वव्यापी हृदय में से चू पड़ी है
स्नेह की एक शीतल ओस-बूंद
जिसने बना दिया है मुझ पुष्प को
पुलकित और पूर्ण-काम।
जो हाथ सागर को भरते हैं
वे भला इस तुच्छ सीपी को
नितान्त भरा पूरा बनाने में
क्या कोई अभाव अनुभव करेंगे?
किन्तु मेरा यह मृदुल दल सम्पुट
तेरे दिये गन्ध आमोद के भार से
पहले से ही विनत है
फिर भगवन! आपकी कृपा का यह चंचल-शीकर
मैं किस प्रकार वहन करूँ?

ममता की इस बूंद को दया करके
हे तेजोराशि!
यह कहीं गिर न जाय सूखी धरती पर
मेरे दौर्बल्य के कारण।
अपनी अंग-श्री द्वारा तूने
हरा भरा बनाया है इस टील की तराई को
मैंने यहाँ जीवन भर लूटा है स्वातन्त्र्य-सुख

नुवर्नु नुवर्तीत्त–
कौतुवम विटरुवा–
नुणर्वेकुकमूलम्
धयययमाय्त्तीर्नेन ।

२
मन्दारम् तळिर च्चेम्पान्–
नीराळनुट चात्तुम
वृन्दारकारामत्तिल्
रत्नगलापान्तत्तिल्
विरिवानाग्नियुनी–
लत्युप्रमाकुम वेय्लिल्
पोरियुम पुल्वकूम्पुवळ–
क्कामोदमेमावू आन् ।

मामक्स्वातन्त्र्यत्तिन्
स्वच्छमाम् मुखम् स्वग–
मामरनिपल्मूल
माविलमाविल्लल्ली ?
पारतन्त्र्यत्तिन रत्न–
मेटयेवकाळुम् सौख्यो–
दारमे स्वातन्त्र्यत्तिन्
पुल्लणिच्चेळिमाटम् ।
भयमाणेनिवकल्प–
मल्पवक्षकच्छाय
प्रियदशनमाय
निनमुखम् मरच्चाला ?
कोमळ, निन्नगत्तिन
नीलिम मायिल्लल्ली
हेमशैलत्तिन् पीन–
मान्नितन् तिरत्तल्लाल् ?

ओटक्कुपल्

तेरी प्रेरणा से मैंने सदा ही माना है विकास का उल्लास
तूने मुझे बनाया है नितान्त धन्य !

२

जो पहनते हैं
मन्दार वृक्षों के पल्लवों का
स्वर्णजटित रेशमी छत्र—
उन देवताओं के उद्यान में,
रत्न शैल के प्रान्तर प्रदेश में
नहीं खिलना चाहता हूँ मैं !
मैं चाहता हूँ खिलना
उस भूमि में जहाँ
तेज़ गर्मी की आँच से झुलस गयी है
दून, सिर धुन रहे हैं सूखी घास के झुण्ड !

मेरी स्वतन्त्रता के स्वच्छ मुख पर
स्वर्ग के उन महान् पेड़ों की छाया की कालिमा न पड़े
यही है मेरी प्रार्थना !

परतन्त्रता के रत्नों से जगमगाते महल की अपेक्षा
मेरे लिए सुखकर और सन्तापदायिनी है
स्वतन्त्रता की धाम में उगी-बनी
मेरी छोटी-सी मलिन पापड़ी !
मुझे डर है कहीं इन कल्पवृक्षों की
छिछारी छाया
तुम्हारे प्रियदर्शी मुख को
मेरी आँखों से ओझल न कर दे !
कहीं ऐसा तो नहीं कि
स्वर्ण माला की पीली कान्ति की झिलमिलाहट में
तुम्हारे कोमल अंगों की नाजुक नीलिमा तिरोहित हो जाये ?

मंगलम् भवमौन-
गानते लोभोलभ्रान्त-
भृंगत्तिन् मुखस्तुति
विस्मरिप्पिविल्ललली ?

३

आ रत्नाचलत्तेक्काळ
पोडि्ङनिन्नीटुम् काल्य-
तारत्तेप्पोलिवुज्ज्ञि-
क्वाट्टुपूविनेक्कूटि
नित्यवुम् मपुल्फुल्ल-
सोभगमाक्कुनू नी ,
स्तुत्यमे भवदीय-
मेकभावनावत्वम !

शोणजिह्वयालयु-
ग्राघकारौघम् सोष-
प्राणायम् नक्कित्तिमु
त्तिनरूड्ढ्प्रोट्टुक्कुम्पोळ,
कुट्टिक्काट टट्टुत्तेत्ति-
क्कुलुंक्कि विळिक्कवे,
क्रेङ्ङि आनुणर्न्नु-
मत्भुतस्तिमितमाय

निन्नावू नवीनमाम
चतयम् वहिक्कुम
मन्नाळुमान्दत्तिल्-
प्पकुक्कोप्टलन्याशम् !
सौरमम् परक्काते
सादरस्नेहोदार-
पौरलोलचनातिथ्य--
माम्यवुम् भवियुक्काते,

कहीं ऐसा तो नहीं कि
भौंरों की लाभग्रस्त चाटुकारिता के गीतों की गुनगुनाहट में
मैं तुम्हारे मंगलमय मौन-गान को
भुला बैठूँ ?

३

ऊँचा है रत्नगिरि का शिखर,
उससे ऊँचे जगमगाता है भोर का तारा ।
प्रभात के उस तारे की तरह ही इस वनपुष्प को भी
सदा सुन्दर और समुत्फुल्ल बनाते हो तुम,
धन्य है तुम्हारी समदर्शिता !

जब अपनी लाल-शोणित जिह्वा से चाट चाटकर
घने अन्धकार को भी तुम लील जाते हो
ताकि संसार का परित्राण हो तमान्धकार से
तो बाल-पवन पास आकर मुझे झकझोरता है,
मैं चौंककर एक अनोखे विस्मय के साथ जाग जाता हूँ ।

मेरी कामना है, मैं खड़ा होऊँ
नव-चेतना से भरी इस भूमि के आनन्द में
मात्र सहभागी बनने के लिए, बिना किसी अन्य आशा के ।
भले ही न फैले मेरी सुरभि,
न हो मेरे भाग्य में नागरिकों की दृष्टि का आतिथ्य—
स्नेहसिक्त, आदर भरा !

ई विनीतमाम् लज्जा–
घीरकाननपुष्पम्
ताविटुम् निन लावण्यम्
तान् नुकर्न्नुम् पुण्यम्
मातभूमितन् शुद्ध––
प्रेमतुदिलमाय
मारिटत्तिङ्कलत्तमे
मालवम्रुतिर्नावु!

—१९२६

ओटक्कुषल

मैं विनम्र और लज्जाशील
कानन-पुष्प
सदा तुम्हारे पावन अवर्द्धित लावण्य को भरपूर भोगते हुए,
प्रेम प्रमुदित और निःशोक झर जाऊँ
मातृभूमि के पवित्र वक्ष पर—
यही है मेरी कामना।

—१९२६

पुष्पगीतम् २

१

शाश्वतजगत्प्राण,
शान्तनिश्चलमायि
विश्वपूणने नालु
मधरात्रियिल् निल्क्के,
रूपहीननाम नीयि—
ल्लेनु चिन्तिच्चेना य—
चापलम् पाऊत्तालुम् !
जानम् वनपुष्पम् ।

स्वलपदाच्चनयक्काये—
नितळानुतिर्नी, स्ने—
म्नरुपमाम् परिमळम्
निनक्कायर्प्पिच्चील
चेणुट्‌ट नि मारत्तु
लेपनम चेयितल्लात्म—
रेणुवाल स्वयम् पुणर —
म्नऊडु निश्श दम् निल्क्के ।

अल्लेंकिल् परिमाण—
हीननायनादिया—
युल्लसिच्चीटुम लाका—
लम्बमाम पवमान
तारिनेन्तरियाम् हा !
तव मे मयेप्पटि ट
वारिधि वेश्म मुत्तु—
चिप्पियालळक्कामो ?

ओदक्कुषल

पुष्पगीत दो

१

हे शाश्वत जगत्प्राण !
जब तुम शान्त निश्चल होकर
खड़े थे आधी रात में और
यद्यपि थे विश्व भर में व्याप्त
मैंने समझा यही कि तुम रूपहीन का
अस्तित्व ही नहीं है।
क्षमा करो इस अज्ञ चपलता को
मैं अज्ञ वन पुष्प ही तो ठहरा !

हाय तुम्हारे चरणों की अर्चना के लिए
मेरी एक पखुरी तक न झरी,
मेरा जो स्वल्प परिमल है
वह भी मैंने समर्पित नहीं किया।
मैंने नहीं किया अपने पराग का आलेपन
तुम्हारे सुंदर वक्ष पर—
जब तुम स्वयं खड़े थे निःशब्द
मुझे स्नेह पूर्वक वक्ष से चिपटाये हुए।
किन्तु
हे अनादि
लोकालम्बन परिणामहीन पवमान !
यह क्षुद्र पुष्प क्या जानता है
तुम्हारी महिमा ?
क्या सीपी नाप सकती है
महासागर को ?

ओटबकुशल

अल्लिलुम् माग्गम् काटटुम्
    दिव्याङुक्वळतन मौन—
च्चाल्लिलेप्पाख्ळातुम्
    चिंतनम् चेय्तीटाते।
क्षुद्रमिण्णुम्यम् भव—
    त्साम्निध्यम् मरम्नेवम्
निद्रचेयतुपोयल्लो
    तेनिनाल् तप्पिक्काते।

२

विस्मरिच्चीटोल्लेसाल
    अड्डळेन्नात्तङ्डुन्नु
विस्मयावहम् भावम
    मारियल्युच्चारवम्।
मारिमेघमाम् जटा
    मण्डलमिळकियुम
पारिटम नटुङ्डीटुम—
    पाटिटयक्कलरियुम्
वानिनेत्तिळक्कुन्न
    वाळिटयिक्कटयक्कूरि
नीनिम्नु नत्तम चेय्तु
    नीळेयल्युप्राकारम्।
नेरक्नेपुम् भवल्—
    क्कापत्तिनिरयायि
धारमामिटित्तीयु
    वीणारिग्गिरिप्रान्तम,
दग्घमाक्वे कण्णु
    पोत्तिमेय विरयकुन्न
मुग्घतारकवन्दम
    क्टल् चेयिततात्रन्दम

ओटक्कुपल

नही चिन्तन किया कभी
उन तारा के मौन गीत-तत्त्वा का
जो दिखाते है रास्ता रात में भी,
नही किया तपण तुम्हारा कभी
अपने अन्तरग के मधु से,
तुम्हारे सानिध्य को भी भूलकर
हा गया था निद्रा निलीन
यह क्षुद्र वन-पुष्प !

२

शायद ऐसा सोचकर कि
हम तुम्हें भूल न जायें
अत्युग्र ताप के साथ
विस्मयकारी ढग से रूप बदलकर
वर्षा मेघा का जटा-जूट प्रकम्पित कर
अपने गजन-तजन से
बार-बार समूचे ससार का चौंकाते हुए
बीच-बीच में
खीच लेते हो तुम अपनी नगी तलवार
जा आकाश को दमका देती है,
भयानक रौद्र रूप धारण कर
रच डाला है सब कही ताण्डव नत्य तुमने।
तुम्हारे इस कृत्रिम क्रोध क कारण
जहाँ गाज गिरी
वही गिरिप्रान्त दग्ध हा गया,
भय विकम्पित मुग्ध तारको ने
आँखें मूँद ली,
समुद्र ने करुण स्वर में रुदन किया।

फलसम्पत्तेल्लामे
पाक्वे कण्णीर तूकि
दलरूपमाम् भीति—
वेपितम् वृक्षव्रातम ।
शाकड्ङलाचायमार,
जीवाधारमामड्ङु
लाक्व्यापियाणमु
घड्ङ्ळक्कु बाधप्पट्टु ।

भगवन परिभ्रात
सागरान्तरत्तिलु
मगसफुलात्तुग—
ङ्ङु न पवतत्तिलुम
दुरतिनमम् भवल—
प्राभवम् बावि त्तप्पाट्टुम्
स्वरमुच्चत्तिलवयळक्काय ।
वेनु नी खिन्वारमावे ।

३

शा तमाय भवलक्काप,
म घनारम् पायु, पूर्वा–
शान्तमुज्वलमायि–
त्तीर्नितनेरम् वीण्टुम् ।
दीनमाम् वटलात्म
शक्ति पिथ्रेयुम् नेटि
यान दलास्यम् चेयतु,
क्कुनु कोळमयिवर्कोण्ड्ु ।

सौम्य कालिम माञ्ज
विण्मुखत्तिद्धुलुक्काणाय्
रम्ययाम् शुचिस्मितम्
निटे वारुण्यत्ताले ।

जब फल सम्पदाएँ सारी नष्ट हो गयी
तो भय-कम्पित पादपों ने
पात-पात आँसू बहा दिये।
दुःख ही तो है असली आचार्य!
तब हमें अनुभव हो गया कि
आप जो जीवों के आधार हैं
वास्तव में विश्वव्यापी हैं।

तब परिभ्रान्त सागरान्तर में
अगम संकुल उत्तुंग कुल पर्वत में
तुम्हारे दुरतिक्रम प्रभाव का स्तुतिगीत
सुनाई पड़ा उच्च स्वर में—
हे विश्वात्मन्
जय हो तुम्हारी!

३
उपशम हो गया तुम्हारा क्रोध,
मिट गया सारा अन्धकार
प्रदीप्त हुआ फिर से
पूर्व दिशा का द्वार।
पुनः प्राप्त कर अपनी आत्म-शक्ति
आनन्द लास्य करने लगा सागर,
पुलकित हो उठा पर्वत!

हे सौम्य!
मिटने लगी कालिमा
दिग्दिगन्त के मुख पर से
चमक उठी स्मित रेखा
तुम्हारी करुणा की कोर से
विमल, रम्य।

आत्तु वाप् तुवान मूव—
भाक्लुिमनङ् डन्नो—
रेम्नितळ्न्नुष्टत्तात्त
वात्सल्यम् नी चुम्बिच्चु ।
मृदुहस्तत्ताल् प्रेम—
व्याकुलम् वीण्टुम् वीण्टुम्
त्वदुरस्तटत्तिली—
क्वाट्टुपूविनेच्चेर्तु !
सारहीनमे नाल्—
मेन्टे जीवितम् पुण्यो
दारतावक्स्पशम्
परिपावनमाक्कि ।

इळकुमतुम्बूटि
निन्हितत्तालल्लो, ञा—
निळयिल्प्पतिच्चिनि—
प्पाटियाम्प्पाकुम् मुम्पे,
मत्परागम् काण्टह ह—
यृक्कगलेपनम चेयतु—
मत्पमाम् सुगन्धत्ता—
लामादम् जनिप्पिच्चुम
चरितायमायत्तीन्
पित्रयुम् भवदेव—
परितोपाथम वल्ल
काट्टिलुम् विरिञ्ञाव् !

—१९२६

मेरे मूक अधर कम्पित होने लगे
तुम्हारी स्तुति के लिए
अत्यन्त वात्सल्य से पूरित
आंक दिया तुमने अपना चुम्बन
उन पर।
प्रेमाकुल होकर
तुमने अपने कोमल हाथों से
इस पुष्प को उठाया, और
बारम्बार अपनी छाती से लगाया।
यद्यपि सारहीन है मेरा जीवन
तथापि हूं पुष्पाधार,
तुम्हारे स्पर्शों ने इसे बना दिया नित्यपूत।

मेरा प्रत्येक कम्पन है
तुम्हारी इच्छा पर आधारित,
यही है मेरी कामना कि
इस मिट्टी में मिट्टी बन जाने से पहले
अपने पराग से
कर सकूं तुम्हारा अंग-लेपन
यह मेरा अत्यल्प सौरभ
यदि तुम्हें आमोदित कर सके
तो हो जाऊं मैं कृतार्थ,
मैं फिर भी खिलूं किसी जंगल में
तुम्हारे ही परितोष के लिए
—यही है मेरी कामना!

—१९२६

साान्ध्यतारम्

आरु नीयान दक्दमे ! लोकत्तिन
चारुत चार्त्तिन पाटटुपाले,
वारुणदिक्कि-ट्टे क्णावतसमाम्
वारट ट वाटामलरपाले
नीलिमापूणमामाका-तीथत्तिल्-
च्चेलिलिरङिङ वणङ्ङ्ग्माके
क्षीणयाम् वासरश्रीयरियातुनु—
मीणताम् रत्नागुलीयमपोलें ।

वेल वटिञ्ञुम् पोटिञ्ञ वियर्पाला
लालनरमुत्तणिञ्ञुम लाकम
आन दनामकमादकमासवम्
पानम् क पिच्चतिमत्तमायि
लाळनीयाकृते, नाक्नुनु विश्राम—
वेलयक्ककम्पटि निल्कुम् निन !

नाणम् कुणुङ्ङ्ग्न सुदरितनल्प—
घ्राणमधुराम् तुनेटि टमल्
स्वेदकणिकयिल् तह्न्नातयरभुतो—
न्मादम् कविञ्ञपुम् कामुकाक्षि
पाटलपाश्चिमदिक्कु विळिक्कुम् नि
न्नाटणयुन्नितुल्फ् लमायि ।

ओटक्कुपल

सन्ध्या-तारा

हे आनन्दवन्द !
बताओ तो, तुम कौन हो—
विश्व सौन्दय के ललाट पर अंकित बिन्दी के समान,
वारुणी दिशा के कानों पर अलङ्कृत
अम्लान मनोहर कर्णफूल के समान,
नीलाम्बर के तीर्थ में प्रवेश कर
अचना कर के लौटती हुई श्रान्त
दिनान्त लक्ष्मी के अंगुलि-भार से स्खलित
रत्न-मुद्रिका के समान ?

हे प्रियदर्शिनी,
तुम हो विश्राम की घड़िया की अग्रदूतिका,
काम धन्धा सब छोड़कर
श्रम-स्वेद का तरल मुक्ताहार पहनकर
आनन्द की मादक मदिरा पिये
निहारता है यह उन्मत्त संसार
तुम्हारी ओर एकटक !

पाटल प्रभ पश्चिमी दिशा को
कान्तिमान करनेवाली
अगाध विस्मय के उन्माद से मत्त प्रेमी की आँखें
तुम्हारा ही पीछा कर रही हैं,
नहीं निहारती हैं वे
लजीली प्रिया के ईषद् आरक्त
सुन्दर ललाट पर झलकनेवाली
स्वेद कणिकाओं को।

उत्सवदायिकयाकुम् युवजन–
वत्सलरात्रियात्तेत्तुम् निने,
मुग्धनीलाळकम मेल्लेयातुक्कियुम्
स्निग्धनिबिडमिमननञ्जुम्
हृर्षविकसितनेत्रत्तालु मुख—
कपकबालिकयादरिप्पू ।

ओमनप्पैतलिन् चेम्पविपप्पोळि—
क्कामळच्चुण्टिले वेण्निलविल
अञ्जनक्कण्मुन चेलवीलत्यरमुत—
पुञ्जमे, नीयन्तिच्चोप्पिल निल्कव ।

नि मुखदर्शनत्ताले मति मर–
न्नु मुलनाम्प्पोकुमाट्टिटयन,
ईणत्तिल्मूळुमाग्गानत्ताल मामत्तिन्—
प्राणनु कारित्तरिप्पकुम्नु ।

पारमपन्ञु कणङ्कपल मूटुम पान–
नीराळम् चात्तिय [illegible]ध्यालक्षिम
च तम् वळ न निन नेक्कतिपेलवम्
चेन्तळिरगुलि नीट्टिनिल्पू ,
वाटमा तोट्टाक्किलेन भयत्ताला
वायुक्कुम्न सम्रमाल् क वलिप्पू ?

तरुणों की प्यारी
उत्सव का रग बाधनेवाली रजनी के साथ-साथ
आती हो तुम
अपने नीले-नीले अलकों को हाथों से सँवार
गर्दन ऊँची कर,
गीली घनी नीलम पलकोंवाली
आनन्द विस्मित आँखों से
तुम्हें देखती है कृषक बाला,
करती है तुम्हारा स्वागत।

हे विस्मय पुंजिके!
जब तुम खड़ी होती हो सन्ध्या की अरुणिमा में
तब माता के अञ्जन रञ्जित नयनों की ओर
नहीं जाती हैं अपने प्यारे शिशु के
विद्रुम अधरों पर चमकनेवाली
चाँदनी की ओर!

देखते ही तुम्हारा मुख
उन्मुख हो चलता है चरवाहा
बिसार कर सुध-बुध
छेड़ता है मधुर तान
पुलकित करता है गाँव का मन प्राण!

एड़ी तक पहने
नीले-ढीले सुनहले पटम्बर से
सुशोभित सन्ध्या
बढ़ा रही है
तुम्हारी ओर
कोंपलों की मृदुल लाल उँगलियाँ,
किन्तु सिकोड़ लेती है
अपना हाथ डर से
कुम्हला न जाओ कहीं।

२

आरु नीयानन्दकन्दमे ! शान्तितन्
चारुस्मितत्तिट्टे विटुपाले,
पल्लवितमाय लास्समाधान—
मुल्लतन्नायत्ते माटटुपाले,
प्रेमपरिमळम् वीशान तुरन्नारु
हेममयमाय चेप्पुपाले !

उच्चयवरु तीवारि वर्षिच्चु वत्तिच्चो—
रच्चाण्डवासरम वाचकत्तिल्
पावनदर्शन, निसनयादार—
पादरजस्सु शिरस्सिलेल्क्के
भूवलयत्तिने रागसुलळित—
भावम् कलनु तटवुकयाय !
चेम्पटटु नल्कुनु वृक्षलतादिक्कु,
पोनपोटि सागरवाचिकळवकुम ।
तारकङ्ङळक्कु पकुत्तु काटुक्कुन्नु
सारसुपममामात्मराज्यम !

वेन्तकम नीरिटामाननम वाटिटा—
मन्तिमलरिप्पूवेन्नाक्किलुम,
पाटे मरन्नुम चिरिच्चुम् पकलिट्टे
पादत्तिल् चेयवू सुगन्धलेपम् ।
सौम्य निन् सगममूलम् परिणाम—
रम्यमी ग्रीष्मदिनत्तिन् जन्मम् !

२

हे आनन्दकन्द
बताओ तुम कौन हो—
शान्ति के मन्द हास की कणिका के समान,
विश्वशान्ति की पल्लवित कुन्दलतिका की
प्रथम कलिका के समान,
प्रेम का सौरभ प्रसारित करने के लिए
खुले हुए स्वर्ण सम्पुट के समान !

यह प्रचण्ड तप्त-वासर जो मध्याह्न में
बरसा रहा था अंगार,
अब ढलती आयु में मस्तक पर चढा रहा है
तुम्हारे अमल उदार चरणों की रज,
सहला रहा है भूमण्डल को
सुराग-ललित दुलार से,
दे रहा है पेड़ों और लताओं को
लालिम पटम्बर,
प्रदान करता है सागर-वीचियों को
स्वर्ण कणिकाएँ,
बाँटता जा रहा है तारक मण्डल को
अपनी सुषमा का साम्राज्य !

यद्यपि दुखता है मन,
परिशुष्क होता है आनन,
तथापि
यह सान्ध्य मल्लिका-सुमन
भूलकर सारे सन्ताप
कर रही है दिवस के पैरों पर परिमल लेपन
प्रसन्न-वदन।
हे सौम्य
परिणाम रम्य है तुम्हारी संगति से
ग्रीष्म दिवस का जन्म।

३

आर नीयान दवन्दम, दैवत्तिन्
वारण्यत्तिट्टे कणिक्पाले,
ध्यानसमयमायेन्नरियिक्कुवान
वानिन्टेयुम्मरत्तिण्णयि मेल्
मेत्तिन सौदय तलम् पवन्नारा
कत्तिच्च पोंनिन् विळक्कुपोले,
लोकतरवङङळेयेल्लामोतुक्कुन्नो—
रेक कनकलिपियेप्पाले।

ईयक्षरत्तिन वेळिच्चत्तिलुल्वुद—
मायिट्टुम तरा मावु पाडिङ,
पारिन् निपलुक्ळ विट्टुक्ष्रङने
पावकुम पात्तिने विस्मरिच्चुम्
भावन मन्दम् विहत्तिप्परक्कुमु
पावनमेतो नभस्थलत्तिल्।
केवलनिवृतितन् नवलेपमेन—
जीवनिल्मूशुम नभस्थलत्तिल्।

क्लेशत्तिन् जीणमाम् वस्त्रम् वलिच्चेरि—
ञ्ञाशयम् पीयूपमग्नमायुम
अगम् तरिच्चपोल् मेवुन्नु लोकम , नी
मगलात्मावे मरञ्ञीटाल्ले।
निखिलुमेनिलुम् द्योतियक्कुम् ज्यातिस्सु—
मान्निन पोरितनेयायिरियक्काम्।
मूलमेन्तल्लेंङ्किल नीयुज्वलियक्कुम्पोळ
मालकन्नेन्नात्मावुल्लसिप्पान ?

३

बताओ तो हे आनन्दकन्द
कौन हो तुम दृश्यमान
प्रभु की कारुण्य-कणिका के समान—
उस स्वर्णिम दीपक के समान—
उजाला है जिसे किन्हीं अज्ञात हाथों ने
आकाश की वेदिका में दुर्लभ कान्ति-तैल भरकर
इसलिए कि
उद्भासित हो जाये ध्यानमग्न होने का मुहूर्त।

इस प्रणवाक्षर की दीप्ति में उदबुद्ध होकर
ऊपर को उठती है मेरी आत्मा
छोड़कर संसार की परछाइयों को
भूलकर अपने नीड़ को
धीरे धीरे फैलाकर भावनाओं को
किसी अज्ञात दिव्याकाश में
कर रही है विहार उस नीलाम्बर में
जो लाता है मेरे प्राणों में निवृति का लय।

संसार अपने क्लेशों का जीर्ण वसन
उतार फेंक रहा है
हो गया है उसका अन्तरंग
अमृत-स्रोत से प्लावित
खड़ा है आनन्द से स्तब्ध,
हे आनन्द-ज्योति,
न हो जा अदृश्य,
मेरे और तुम्हारे भीतर
प्रज्वलित है एक ही ज्योति का स्फुलिंग,
अन्यथा कैसे था यह सम्भव
कि जब तुम होती हो द्युतिमान
चमक उठता है मेरा मन दुःख-मुक्त।

ओट्टुम निरमट्टुम पाप पोटि पटि ट्युम्
चेट्टुम् किटक्कुम् मनुष्यात्माविल्
ओन्नु मुक्कर्पावू निनक्कुळिच्चुष्टिना,
लोन्नु पवर्पावु निन्सोभाग्यम् ।

—१९२७

चूम लो अपने शीतल अधरों से
मानव की आत्मा
जो मलिन धूसरित पड़ी है,
भर दो उसमें
अपनी ही कान्ति की दमक।

—१९२७

पिन्नत्ते वसन्तम्

१

मधुमासमेत्तिटे विजयकाहळम
मधुरकण्ठत्ताल् मुषक्कुम् कोकिलम्
विळम्बरम् चेय्तू — 'विळम्बमेयेशा—
गळम् स्वजीवितमधु नुकरविन्!
समयपीयूषमापुकुम्नू तृष्णा—
शमम् वरुत्तुवान् कषियिल्ला पिन्ने।
चिरियुम् कण्णीरुम कलर्त्तिय कुप—
प्परिय जीवितममूल्यमाकिलुम्
क्षणिकमल्लया बेयिलेट्ट हिम—
कणिकपोलत्तु, कळवयो वथा?'

अपवेपुम चित्रशलभमण्डल निर—
मपविल्लिन् पाटि वितरियपाले
पिटञ्ञाणयुम्न् पिकगीति केट्टु
विटम्न काननमलरिनु चुटदुम्।
मदकरमधु नुकनु मेल्कुम—
लुदयभानुविन मयूखमुज्वलम
चाकचाक्यमाय मुखत्तिनाल वानि—
नरमुरङ्ङुन्न कृष्णाभ्रमालये
उटनुटन मुकर्न्निळम् कविळत्तटम
तुटुतुटुयाक्किप्पुणन्नुणत्तुम्नु।

१

अपने मधुर कण्ठ से
मधुमास की विजय-तुरही बजानेवाली कोयल
घोषणा कर रही है
"पान करो अपने जीवन का मधु
अविलम्ब आकण्ठ,
बहता जा रहा है समय-रूपी पीयूष
सम्भव है तृषा शमन का अवसर तुम्हें फिर न मिले।
यह प्यारा जीवन—
अश्रु-हास्य का रसायन,
अमूल्य होने पर भी क्षणिक है—
जैसे धूप में नन्ही-सी हिम-कणिका—
क्या खाते हो इसको व्यर्थ?"

प्यारी-प्यारी तितलियाँ
सतरंगी इन्द्रधनुष की फुहार-सी
भावातुर होकर मण्डरा रही हैं
कानन-कलिकाओं के चारों ओर,
खोल दी हैं आँखें जिन्होंने
कोयल की कूक सुनकर।
उदयारुण का उज्ज्वल मयूख
है आरक्त आनन
मानो पी है मदिरा बारम्बार,
करता है आलिंगन
आसमान पर मायी कृष्ण मेघमाला का
जगाता है उस चुम्बना में ऐसे
कि हो जाते हैं मृदुल कपोल लाल।

अरुणमाम् गण्डम विलसिच्चु निल्क्कुम्
पुरुसुपमयीप्पुतुपनीरलर,
निरुपमलज्जानिरद्धमावया—
लोरु मापि चालवानाक्तमाक्किलुम्
सुरभिलनीधरवसितमाट्टिळम—
मरत्तु पोंगवे तटवानायुम्नू।
सुललितस्मितवदनयाय् निल्क्कु—
मलपुसोभगम् कलग्न मुल्लये
अतिपुतुक्त्ताल् तरळमाय् नाक्कि
मतिमरन्नेपूमहम्मुसतारम्
पक्ल् तुटुमिपि तुरन्नतुम् कूट्ट—
रक्नूपोयतुमरिञ्ञतेयिल्ल।

२

मरिञ्च रात्रितन् स्मरणकारणम्
चिरिक्कुवानकूटि मरन्न सामनो
निरम् पक्नु मेय् मेलिञ्ञुमक्कणीर्—
क्करयानुम् पोयानपरदिक्किनाय्।
ओरिटत्तु सुखम् कतिरिटुन्नेर—
मारिटत्तु दुःखमतिने नुळ्ळुन्नु।
मुखम् चुवक्काळम् तळिरिनु दिव्य—
सुलमयमधम् वसन्तमेक्के
भरिततरारयम ञ्ञरडङ्गूतू चिल
करियिल निलत्ततिपरुपमाय्!

मम मिपिक्कळक्कु महमायुपिक्कु
महस्मुकूटिय मनाट्रापस्साय
मरुविय पुण्यमटिपरिक्यालू
मरुवायुत्तीन्नल्लो मदीय जीवितम्।

यह नवल पाटल सुन्दरी
अरुण और द्युतिमय हैं गाल जिसके,
बोल ही नहीं पाती है लज्जा निमग्न कुछ भी ,
किन्तु जब प्रयाणा मुख होता है तरुण पवन
तब रोकना चाहती है बाट उसकी
अपने सुललित निश्वासों से ।
यह भाव-तरल प्रभात का तारा
भूल गया है स्वयं को
विस्मय से देख-देखकर लावण्यवती कुन्दलता को
खडी है जो मनोरम मन्द हास लिये मुख पर,
नहीं जानता है वह कि
दिवस ने अपने अरुण नयन खोल दिये हैं
और साथी सारे दूर चले गये हैं !

२

विगलता रजनी की स्मृतियों में डूबा यह चाँद
हँसना ही भूल गया है,
चला गया है
क्षीण विवर्ण, अश्रुपंकिल होकर ,
जब सुख खिलता है एक बार
तो दुःख आ पहुँचता है उसे चुनने को दूसरी ओर !
वसन्त ने कोपलों को
दिव्य सुख की इतनी सारी मदिरा पिला दी
कि उनके आनन नशे से लाल हो गये—
तभी कराहने लगीं निराशा से भरे
अत्यन्त करुण स्वर में
कुछ सूखी पत्तियाँ ।

जो थी मेरी आँखों की सुषमा,
जो थी इस पृथ्वी के लिए सुन्दर देदीप्यमान उषा
वह पुष्पलतिका आमूल उखड गयी है,
बन गया है मेरा जीवन मरुभूमि ।

कुसुमकालमे, भवानणविलु—
मसुन्दरमामेन् हतहृदयान्तम
कनिवट्टु विधियरिञ्ञता, णाशा—
वलिक्युम् सुखत्तलिरमुष्टामो ?
विळिप्पतेन्तिनु वथा पिवड डळे,
अळिञ्ञुमणायिक्क थिञ्ञल्लो सखि !
नरुमुमुमङ्ङळे, नेटुवीक्कुमलुम्
वेरुतेयेतिनु पक्च्चुनिल्पतुम्
मरणमाश्रुम महाजलधितन
नुरयाय लोकम् परिणामियने ।

"तरुणमाम् रविकिरणम् पुलुमी
निरुपममाय पनिनीर्च्चेम्मलर,
स्वकपात्रमोरु पुतियजीवित—
मकरन्दम् कोण्टु निरच्चेसुत्रेरम्
तिरिच्चरियुमा ?' वितुम्पिनोक्किनि—
म्नोरिमकलोमलाळुरच्चाळिङ्ङने !
कमनीयमवो पुतियताम् रुप—
ममलयामवळणञ्ञारिक्कणम् !
अथवा चेनेत्ताम् मनानमाम् वीत—
व्यथमाय नित्यवसततलोकत्ते
परिणतप्रेमपरिमलभरम
परत्तिज्जीवितम् विटरम् लोकत्ते !
मणमुतकुम् चुरुण्टिरुण्ट वार्कुय—
लणिञ्ञ कवळाल् श्मशान भूमियें
विकचपुष्पमुकाण्टलङ्कुरिक्कट्टे
विकलमाम्यनी निहतजीवितन् ।

—१९२७

हे कुसुम-काल !
तुम्हारे पदार्पण की वेला में भी
मेरा मन क्यों बना हुआ है
निराशा निहत और असुन्दर ?
निर्दयता से उजाड़ दिया है विधि ने इसे,
कैसे फूटेंगी इस में आशा की कलियाँ और सुख के पल्लव ?
कोकिलाओ ! व्यर्थ क्यों पुकार रही हो ?
तुम्हारी सखी तो गलकर मिट्टी में मिल गयी है।
क्या भरती लम्बी उसाँसें
नवकलिकाओ ?
क्या होती हो अकारण ही चकित ?
यह जगत् तो फेन है मृत्यु-सागर का,
परिणामशील है यह !

"तरुण रवि किरणों के आलिंगन में बद्ध,
अनुपम सौन्दर्यमय यह अरुण गुलाब
भरकर अपना प्याला नवजीवन के मकरन्द से
जब लौटकर आयेगा, तो पहचान पाओगे उसे ?'
—उसने पूछा था मुझ से एक बार,
शोकाकुल दृष्टि लिये।
शायद, पाया हो कोई नया कमनीय रूप
उस पुनीता ने !
अथवा पाया हो उसने वह शोकहीन चिर वासन्ती संसार
जहाँ जीवन विकस्वर होता है
अपना परिपूर्ण प्रेम सौरभ फैलाकर !
जिन हाथों से मैंने
उसकी परिमल-वाहिनी काली अलकें सजायी थीं,
उन्हीं से अलंकृत करूँ मैं विकल भाग्य निहत जीवन
उसकी समाधि को—
अकुम्भ पुष्प द्वारा।

—१९२७

कुसुमकालमे, भवानणकिलु—
मसुन्दरमामेन हृतहृदया तम
कनिवट टु विषियरिञ्ञाता, णाणा—
कलिकयुम् सुखत्तलिम्मुण्टामो ?
विळिप्पनेत्तिनु वधा पिवड टळे,
अळिञ्ञुमण्णायिक्कयिञ्ञल्लो मखि ।
नरम्सुमङडळे, नेटुवीक्कुन्नुम्
वेरनेयेन्तिनु पकञ्चुनिल्पतुम
मरणमावुन्न महाजलधितन
नुरयाय लोकम् परिणामियन्ने ।

"तरुणमाम् रविकिरणम पुल्कुमी
निरुपममाय पनिनीञ्चेम्मलर,
स्वकपात्रमोह पुतियजीवित—
मकरन्दम् कोण्टु निरञ्चेत्तुन्नेरम्
तिरिच्चरियुमो ?" वितुम्पिनोक्कनि—
मोरिक्कलोमलाळुरञ्चाळिङडने ।
कमनीयमतो पुतियताम् रूप—
ममलयामवळणिञ्ञारिक्कणम् ।
अथवा चेन्नेत्ताम् मनोज्ञमाम् वीत—
व्ययमाय नित्यवसन्तलाकत्ते,
परिणतप्रेमपरिमलभरम
परत्तिञ्जीवितम् विटरम् लाकसे ।
मणमृतकुम् चुरुण्टिरुण्ट वार् कुप—
लणिञ्ञ ककळाल श्मशान भूमिये
विकचपुष्पम्कोण्टलङ्करिक्कट्टे
विकलमाम्यनी निहतजीवितन् ।

—१९२७

वृन्दावन

वृंदावन की विटप शाखाओं पर विहार करनेवाले
मंदानिल का स्पर्श पाकर, हे मेरे मन
अपनी पूत भावना के झीने पंखों को फैलाकर
धीरे धीरे आगे बढ़ो!

देवताओं को भी पुलक-कंचुक प्रद है
यह पुण्यमय कानन।
यही वन आज भी सुरभित कर रहा है
नंदगोप के उस पुण्यांकुर के शैशव को
जो इस भूमण्डल का भाग्य है,
देवकी-देवी का प्राणोच्छ्वास है
मंगलमयी गोप बालिकाओं का
मंजुल रत्न पदक है,
समस्त विश्व को आलोकित करने के लिए अवतरित
मुग्धकारी सुषमा-पूरित सुप्रभात है।

यह वन-स्थली ही तो है वह चकोरी
जिसने सुधाकर की नवनीत चंद्रिका का पान किया
यहाँ आज भी सुप्त पड़ी है
उस नीलमणि-वर्णवाले की कान्ति
इन घनी नीली घासों में,
इन पुलक-कण्टकित कदम्ब के पेड़ों में।
अन्यथा उन्हें कालिंदी क्या चूमती
अपने तरल मृदुल लहरों के अधरों से?

गायों को चराता, बीच-बीच में वंशी बजाता
वह माया-बालक यहाँ ही तो विचरा था!

वृन्दावनम्

व दावनमरक्कोम्पिल्क्कळिक्कुम
म दानिलनेट टु मानसमे !
सावधानम् नो परन्नालुम् क्षीणिच्च
पावन भावनापत्रम वीथि ।

य दारक माक्कु म् रोमांचकचुक–
सन्दायकम् पालिप्पुण्यारण्यम
सुन्दरमी वनमुल्ल सूक्षिप्पता
न द ट पुण्यक्कुरुन्निन् बाल्यम्,
भूवलयत्ति टे भाग्यविलसितम्,
देवकीदेवितनुच्छ्वसितम
मंगलगोपालमङ्कुमार चात्तिय
मन्जुळमाय मणिप्पतक्कम्
लाक्तैयाकेत्तेळिप्पानुळ्ळाय
लोभनीयाममाम् सुप्रभातम् ।

ई निलमल्लीयातिङ्कळिन्नानील–
त्तूनिलावुण्टारिळम चकारम् !
श्यामळमायिटत्तूर्न्नपुम् पुल्लिलुम्,
कोळमयिर कालुम् कटम्पिनमेलुम
आ मणिवण्ण टे कान्ति मयङ्ङुनु—
ण्टाम दम् काळिन्दियल्लेनाविल
लोलमृदुलतरंगाधरपुटत्तालव
चुम्बियक्कुमायिग्ना ?

कालिक्किटाङडळेच्चालेत्तेळिच्चु नल्–
क्कोलक्कुपलिटयुक्कूतियूति

वृन्दावन

वृन्दावन की विटप शाखाओं पर विहार करनेवाले
मन्दानिल का स्पर्श पाकर, हे मेरे मन
अपनी पूत भावना के झीने पंखों को फैलाकर
धीरे धीरे आगे बढ़ो !

देवताओं को भी पुलक-कंचुक प्रद है
यह पुण्यमय कानन ।
यही वन आज भी सुरभित कर रहा है
नन्दगोप के उस पुण्यांकुर के शैशव को
जो इस भूमण्डल का भाग्य है,
देवकी-देवी का प्राणोच्छवास है,
मंगलमयी गोप-बालिकाओं का
मंजुल रत्न-पदक है,
समस्त विश्व को आलोकित करने के लिए अवतरित
मुग्धकारी सुषमा-पूरित सुप्रभात है ।

यह वन-स्थली ही तो है वह चकोरी
जिसने सुधाकर की नवनील चंद्रिका का पान किया
यहाँ आज भी सुप्त पड़ी है
उस नीलमणि-वर्णवाले की कान्ति
इन घनी नीली घासों में,
इन पुलक-कण्टकित कदम्ब के पेड़ों में ।
अन्यथा उन्हें कालिंदी क्या चूमती
अपने तरल मृदुल लहरों के अधरों से ?

गायों को चराता बीच-बीच में वंशी बजाता
वह माया-बालक यहाँ नाना विचरा था ।

मायाकुमारन् नटक्कवे कामळ-
माय तृक्कालेट्ट मणतरियिल्
मायातेयिन्नुम् किटक्कुन्नुण्टावामा
माधुर्यमेरुन्न पाटारोन्नुम्
तिङ्ङिक्कळर्न्न वनत्ताटनुवाद-
मेङ्ङनेयेङ्किलुम् नेटुवानाय्
सायन्तनाक्कनरङ्ङळ तिरक्कुक-
तायक्क चुम्बिप्पानायिरिय्क्काम् ।

चेणुट्ट तल्पादपल्लवम मेलेट्ट
रेणु निरञ्ञ निलत्तु नीळे
चीणुरुण्टेत्तुन चीतायचातत्ते
वेणुकदम्बकमाश्लेषिप्पू ।
सारुधतीश्राम् सप्तर्षिमारात्तु
चेरुन्न तारकमण्डलत्ते
वानिलुम्, रागात्तमाराय वल्लव—
मानिनिमारे निकुञ्जत्तिलुम्,
पाटट्टणय्क्कुवान पाटवम कूटियो—
रोटक्कुपलिट्टे दिव्यनादम
सूविक्किटप्पुण्टाम् कल्लिलुम पुल्लिलु-
माविलमूविलु मल्नेश्वाकिल्
चोविविटेय्क्कु चेविकाट्टुत्तिङ्ङने
मेविटान मूलमेन्तात्तमौनम् ?

प्रेमस्वरूपनाम् लोककारमाविट्टे
कोमळच्चुण्टिण चुम्बियक्कवे
स्नेहमाम् वेणुविल् सचराचर—
मोहनमाकिन मधुगानम्
स्वरम श्रविच्च मगङ्ङळ परस्पर-
वैरम् मरन्नु मदिच्चुपालुम् ।
अनितिन माधुयम् काण्टु निरञ्ञुपोल
कुधिट्टे भीश्र कन्दरङ्ङळ

मोटक्कुपल

उसके पैरों की वे मधुर मुद्राएँ
आज भी वन प्रान्तर की सिकताओं में
अमिट अंकित हैं।
सान्ध्य सूर्य की किरण
शायद उन्हीं को चूमने के लिए
इस बीहड़ वन की अनुमति पाने को
आतुर है।

उस मनोहर पद-पल्लवों से अंकित
सिकता भूमि पर
लोट-पोट होकर चला आया है पवन,
और गले लगा लेता है वेणुवन
उस अंगहीन को!
शायद प्रक्षीण पड़ा हो
उस बाँसुरी का दिव्यनाद
यहाँ के काँटों में, कंकड़ पत्थरों में,
और इन आविल भू विभागों में,
जो अनायास खींच लाने में पटु है
नभ में अरुन्धती और सप्तर्षियों से युक्त
नक्षत्र मण्डल को,
केलि कुंजों में प्रेमार्द्र गोप मानिनियों को।
इसीलिए तो यह आकाश कान लगाये
नितान्त मूक खड़ा रहता है।
चराचर को मुग्ध कर देनेवाला भव्य गीत
जब प्रवहमान हुआ, प्रेमिल प्रभु के
कोमल अधरों का स्पर्श करनेवाली स्नेह मुरलिका से
तो आनन्दोन्मत्त होकर सुनने लगे मृग-सिंह
भूल गये जाति-वैर!
तब भर गयी पर्वत की भयानक गुफाएँ भी
इस की मधुरिमा से,

नाक्कुम् भूमियुमन्तरमोक्केत्ती–
र्न्नवगृहत्तिन् मुरिक्ळायि।
नित्यवधिरङ्ङळ वृक्षङ्ङळपालुमा
निस्तुलगीतम नुकर्न्नुहृत्ताल
आनन्दनतनम चेय्तु निरन्तरम्,
काननम्बाक्कळेट्टु पाटि।
मन्मानुभूविनियेवुतु काणुमा
मुन्मातिरिक्कात् मारिक्काण्मान!

बालङ्ङदम्बक्कच्चिल्ल मुक्रयी
नीलशिलातलमायिरिक्काम्
माधवदर्शनप्रार्थिनियाय् चन्नु
राध वसिच्च विहाररम्यम!
आ महाभागनन् प्रेमसुरभिल–
कोमळालापमधुकणङ्ङळ,
भूतलम् मुन्पाट्टिरिन्न् मरिच्चाह
भूतकालत्तिन पूर्णेल्लुपालें
काणुमिक्कल्लिनुळ्ळारोमिटविलम्
वीणु वट्टाते किटक्कुन्नाण्टाम्!
नल्पाळम मञ्जरि ताण, तुनाक्कित्तान्
निल्पाणिटिन्ट्टु तेनवर्णीर तूकि
कोमळनादत्तालक्कारकराजिये–
मकोळमयिक्कोळ्ळिक्कुम काक्कलाळि
कैविट्टुनिल्लमुम देवितन् पादत्ताल्
पावितमाक्किमारिप्रदेशम्!
जीवितम्बालिन मरक्करपट्टींटु–
मीविधमुळ्ळ स्मृति तन् निपल्!

मुल्लक्कळ सूक्षिक्कुन्नाप्टावाम पूचेम्पि–
लल्लणिवेणितन श्वासगन्धम्

मिट गया स्वर्ग और भूमि का अन्तर
बन गये एक ही भवन के दो कक्ष,
नित्य बधिर वृक्षों ने भी
उस हृद्य संगीत का पान किया प्राणों से
करने लगे आनन्द-नर्तन,
अनुगान किया कानन के झरनों ने उसका ।
न जाने कब देखेगी मेरी मातृभूमि यह दृश्य
परिवर्तित होने के लिए पूर्ववत् !

हो सकता है
यही शिलातल हो
माधव-दर्शन के लिए उत्सुक राधा की विहार-स्थली
चूम रही है जिसे बाल कदम्ब की मृदुल डाल ।
उस पुण्यशालिनी की
मृदुल प्रेमालाप की कोमल मधुकणिकाएँ
आज भी अक्षुण्ण पड़ी होंगी यहीं
इन शिलाखण्डों की दरारों में
जिन्होंने आगे धकेल दिया है धरा को
और स्वयं बन गये हैं
मृत अतीत की रीढ़ की हड्डी ।
राधा-देवी के पद-स्पर्शों से
पावन बने हुए इस प्रदेश को
छोड़ना नहीं चाहता कोयलों का झुण्ड,
पुलकित किया है अपने कोमल नाद से
कलिकाओं को जिन्होंने ।
जीवन-सरिता के पार तक फैली हुई हैं
ऐसी स्मृतियों की छायाएँ ।

मल्लिकाओं ने आज भी सुरक्षित कर रखा है
अपने पुष्प-सम्पुटों में
गहरे तम-सी कुटिल कुन्तला राधा की
श्वास-सुरभि को

अल्लॆंक्किलॆन्तिनु वीर्प्पिट्टिळम्काट्टु
चॆल्लुन्नतॆन्तुमवयॊक्करिविल ?
हेमन्तरात्रि करञ्ञुपाकुन्नुण्टि–
श्रीमलप्रदेशत्तॆस्स दर्शिक्के ,
ई मणल्त्तट्टिमलल्लो विहरिक्का–
रोमनकण्णनुम् गापिकयुम ।

ओरा पाटियिलुम् तुविक्किटक्कुन्नु–
ण्टारामल्पूविळम्पुचिरिप्पाल् ।
अन्तिवन्नन्तिनाणल्लॆंक्किल् नियमुम्
पिन्तिरियुन्नतुम्, तमुगाब्जम्
श्यामचिकुरभरत्ताल् मरप्पतु–
मामन्दम् मौनम् भजिक्कुवतुम्,
ध्यानत्ताल् मूकनाम् वानमिटक्किटे–
क्कानन्दपूर्वमिङ्ङाट्टु नाक्कि
मन्दस्मितत्तिनाल् शारदनीरद–
वृन्दमाम् मीश वॆळुप्पिच्चतुम् ?

सामनाम् तूमलर मञ्जुपयेतिव–
श्रीमणल्त्तट्टिमेल सर्चाक्कवे
कण्णिनु कौतुकमट्टुमारॆल्लकुन्नु
वेण्णिलाविन्नुम् वॆळुप्पु वरे ।

आराध्ययायि नी राधे महर्षिमा–
राराञ्ञु काणात्त नीलरत्नम
श्रीमति, निन कैवळ तटिवर्णीतया
प्रेमम् महत्तरम् मानतकाळ् ।

अन्यथा
क्यो जाता यह तरुण पवन
नित्य उस ओर
अपनी सासो में गन्ध भरने ?
इस श्रीमय प्रदेश पर आकर फूट फूट पडती है
हेमन्त की रजनी ,
हाय, इसी सैकत पर ही तो होता था
प्यारी राधा और कृष्ण का विहार !

यहा के प्रत्येक धूलि-कण में
बसा हुआ है
उस प्यारे फूल-से कोमल मन्द हास का दुग्ध !
नही तो क्यो सन्ध्या
यहा नित आकर श्यामल केशो से
मुह ढँककर लौट जाती है नितान्त मूक,
और ध्यान-मग्न मूक गगन
बीच-बीच में जब इस ओर निहारता है
तो अपनी मन्द स्मित प्रभा से
और भी धवल कर लेता है
अपना शरदभ्र श्मश्रु ?

जब इस सैकत पर टहलती है स्निग्ध चन्द्रिका
हाथो में लिये सोम पुष्प की मजूषा,
तब अत्यधिक नयन मोहक हो जाती है
उसकी अलौकिक धवलता !

ओ राधिके, वन्दनीय है तू
सतत खोजने पर भी
जिस नीलरत्न को न पाया ऋषियो ने
वह तुम्हारे हाथो का स्वय खोजता आ पहुँचा !
निश्चय ही प्रेम ज्ञान से श्रेष्ठ है।

श्रीलवृन्दावनलक्ष्मिक्कु नीराळ-
नीलन्मारिपुट्याट तुनि
कालम् कपिक्कुम् मळिन्दकुमारी, निन
कूलत्तिल् वाणुवाणेन् जीवितम्
मतरगत्तिल् नी लाळिक्कुम श्रीराधा-
धातस्मृतियोटु माजिच्चाव !

ममरव्याजत्ताल् गोपिकामाधव-
ममसमाषणम् चोल्लिच्चोल्लि
चारुवृदारण्यम् चेक्कट्टे नल्तीय-
चारिकल्क्केमुमम दानन्दम् ।

—१९२६

हे कालिन्दी !
बिताया है तुमने जीवन
मृदुल नीलाम्बुक बुन-बुनकर
सुन्दरी वृन्दावन-लक्ष्मी के लिए।
निरन्तर तुम्हारे तट पर बसकर
विलीन हो जाऊँ मैं राधाकृष्ण की उन स्मृतियों में
जिन्हें तुमने अपने अन्तरंग में सँजो रखा है।

राधाकृष्ण के मदुल प्रेमालापों को
ममर ध्वनियों के बहाने गुंजरित करता हुआ
यह मनोहर वृन्दावन
विशुद्ध तीर्थचारियों को
सदा ही आनन्द प्रदान करे !

—१६२६

कुयिल्

"ओरु चाण् तिकयिल्ल
    जीवितम् , व्योमम्पाले
पेरताम्तानुम् कृत्य—
    मेन्निट्टुम् पिवोत्तम,
पपुते पाटिप्पाटि
    प्पायुमी वसन्तत्ते
मुघुवन् कळञ्जालो ?"
    तुटन्नू चोद्यम् पायन्

"ई विशालारामत्तिल—
    वनाट टटिक्कूट्टम निनु
जीवितप्पोरिनुळ्ळ
    काहळम् विळिक्कुम्पाळ
अलसम् वसिक्कुम् निन्
    मुग्धगीतत्तिन्नेन्तु
विलयाण, पहास्य—
    जीवितम् परमतम् ।

तकमालकळ पूण्टु—
    निल्कुन्न कोनक्कूट्ट—
त्तिङ्कलनिन्नतृप्तितन्
    मम्मरम् केळक्काकुन्नु ।
मतियेन्नताम् भावम्
    श्रेयस्सिन् प्रतिवन्ध—
मतियामसतृप्ति—
    यौनत्यसौधद्वारम ।
अभ्रलक्ष्मियादित्य—
    मण्डनचन्नत्तिमेल
सुभ्रनूल् नूट्टीटुन्नु—
    व्टालस्यम् भावियुक्कराते ,

कोयल

"जीवन तो नन्हा है उँगली की पोर जितना
किन्तु कर्तव्य है विशाल व्योम-सा,
तो फिर पिकवर,
क्या खोये दे रहे हो दुर्लभ वसन्त को
व्यर्थ ही गा-गाकर ?'

पथिक ने अपना प्रश्न जारी रखा—
"इस विशाल उपवन में खड़े होकर
चपल तरुगण
जब जीवन-संग्राम की भेरियाँ बजा रहे हैं
तो तुम निरे आलसी के गीतों का मूल्य ही क्या है ?

'हे परभृत
परिहासमय तुम्हारा जीवन है।
स्वर्णमाल विभूषित कर्णिकारों की ओर से
आ रही है अतृप्ति की आवाज़
अलभाव बाधक है श्रेय का
किन्तु
चिर-अतृप्ति द्वार है
उन्नति के सौध का।
यह आकाशलक्ष्मी
आदित्य मण्डल के चरखे पर कातते जा रही है शुभ्र सूत
बिना किसी आलस्य के,

दिवसम् सितामभोद-
च्छेत्माम् पुत्तन्पन्त्रि-
यवळ्तन् समीपत्तु
नत्राविक वेन्वीट्टु ।
पकलिनिल्ला नीळम,
वेळिञ्चम् ककुम् रानि-
यक्लत्तल्ले नयक्तु-
मायूप्पतञ्चिट्टुम् मुम्पे,
स्वकपोलान्तम तुट्टु-
प्पोळवुम् कणमपोलुम्
मिकवेरीट्टुम् जीवि-
तासवम् पोयीटाते
मुकरुनतिनल्ली
पोल्पनीप्पूविन वक्त्रम्
मुकरुम् समीरणन्
म निप्पू सनिश्वासम् ?
कटल् तन्साम्राज्यत्तं
नीटट्टुवान् तिटुङ्डूम ,
कर कीपटड हाते
निल्कुवान् यत्निक्कुनु ।"
कोमिलम् चोली -"साधो,
मगळम् ! भवान् चेन्नु
पूकुकुद्दिष्टस्थानम्
पुण्यमागत्तिल्क्कूटि ।
लोक्लावण्यक्करिम-
कूवळप्पूविनपत्र-
माव भ्रस्वात त्र्य श्री-
देवितम् पुण्य क्षेत्रम
नावमण्डलम्, वाण्के-
तश्वेत्तान् मरप्नव-
नावयाम् ञा, नेन् पाटटु
सायमो निरयमो ।

और यह दिन
उस के निकट रखे जा रहा है
श्वेत नीरद की नयी-नयी पूनियाँ
धुन धुनकर।
दिन लम्बा नही है
और उजाले को
लूट ले जानेवाली रात भी दूर नही,
हमेशा के लिए सो जाना पडेगा
उससे पहले ही दोना हाथो लूट लो
जीवन की मदिरा,
व्यय न करो उसकी एक कणिका भी,
हो जायें तुम्हारे कपोल नशे से लाल—
यह समीर
जो गुलाब के अधरो का चुम्बन ले रहा है,
निश्वास भरकर यही तो कह रहा है!
सागर
अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता है
और धरातल
पराधीन न होने का यत्न करता है।"

कोयल बोली—
"भद्र, कल्याण हो तुम्हारा,
पुण्य-पथ द्वारा तुम अपने लक्ष्य को प्राप्त करो!
स्वातन्त्र्य की श्री-देवी का पावन निवास-मन्दिर है
विश्व लावण्य के नीलोत्पल दलो में,
इस नभोमण्डल को देखकर
भूल जाता हूँ मैं स्वय को,
मालूम नही
मेरा गीत सार्थक है या निरर्थक।

तारणिक्केयुम् भगि—
　　　　यिल्ल मे, क्पुक्टे
दूरदृष्टियुमिल्ली
　　　　मामरक्कोम्पत्तेट डान
आकाशत्तिटे नित्य
　　　　सौंदयम् पाटिप्पाटि
श्शोकास्पृष्टात्मावायि–
　　　　क्कालयापनम चेयवेन ।
जीवितप्पोरिल तोट टु
　　　　तोट टुळळम् कीरिक्कीरि
मेवीटुम् सहोदर–
　　　　मारिलाक्कानुम पक्षे
आनन्ददानम् चेय्‌वान्
　　　　शक्तमायेक्कामेन्टे
गानम्, ज्ञानतिक्षुद्र—
　　　　पक्षियायिरनाङ्गे ! '

—१९२९

मुझ में न तो फूलों की सी सुकोमलता है
न गीध की सी दूर दृष्टि ,
मेरी तो कामना यही है—
पेड की इस डाली में पडा रहूँ वही शोक मुक्त
आकाश की अनश्वर सुन्दरता का गीत गाता हुआ !
जीवन-सग्राम में निरन्तर पराजित होनेवाले
विदीर्ण हृदय बन्धुओ में अवश्य होगे ऐसे कोई,
जिन्हें मेरा गाना आनन्द-दान करेगा ,
मै तो क्षुद्र पक्षी हूँ
यही सही !"

—१६२६

फाद्‌दुमुछ

नियतितन् मृदुनिम्मलहासमे,
नयनचुम्बियाम् न यश्रकाशमे,
वियति निस्तलविश्वात्सवत्तिना–
युयरुम् नीराळन्चेङ्कोटिक्कूर नी।

निरय, निन्दुतिनीरपिपिल् द्विज—
निरयिळक्कुनु नीळवे वीचिकळ।
नुरुकळ चेक्कुन्नु मालयमारुत–
तरळितड ङ्ळाम् वेण्मलर त्तोत्तुकळ्।

वपियुम् हृपत्ताल् वानिनु तारक–
मिपि तव स्पशमीलितमाकुनु।
मटलिन्मारिटमान दजृभित,—
मटवियापादचूडम् पुळकितम्।

मुक्तमिरण्ट जीमूतत्तिनु, कविळ
सुखमदरागसुंदरमाकुन्नु
दलकुलम् मवदशुक्तल्लज—
त्तल मुकरुन्नु ताण्डवम् चेय्युन्नु।

जनगणादरमेन्तोन्नरियाते
विनयलज्जाविधुरमाय् निल्कुम् ञान्
आरु वनमुल्ल, दिव्यातिथे मवा–
मरुळिटेण्टुमवेङ्ङने स्वागतम्?

वन-जुही

हे नियति के मृदु निर्मल हास
नयनों को चूमनेवाले नव्य प्रकाश,
तुम हो अनुपम विश्वोत्सव के निमित्त
आकाश पर ऊँचे फहरानेवाली लाल रेशमी ध्वजा।

हे निष्पाप
तुम्हारी सुन्दरता के सागर में
हिलोरें ले रहे हैं पखेरु,
तरुण-पवन के स्पर्श से दोलायमान
ये विकसित श्वेत सुमन मंजरियाँ
उठा रही हैं धवल फेन।

आकाश के तारक नयन
मूँद लेते हैं पलकें हर्षातिरेक से,
तब पाकर तुम्हारा स्पर्श-पुलक
आनन्द से फूल उठा है
सागर का वक्षस्थल
और पुलकित है अरण्य नव निशान्त।

श्यामलता से भरा बादल का कपोल
अभिराम बन गया है आनन्द की अरुणिमा से,
चूमकर तुम्हारे अंशुक का आँचल
ताण्डव कर रहे हैं ये पल्लव-दल।

मैं हूँ एक वन-जुही,
नहीं जानती जनगण का आदर,
विनय और लज्जा से विह्वल
कैसे करूँगी तुम्हारा स्वागत?
हे मेरे दिव्य अतिथि!

पुरटवण्णमाम् पूम्पटट्टु मलिट्ट
मरतकमणिशैलपीठान्तिके
ललितशाखाग्रलम्बियाम काचन—
त्तळिरुपट्टिनाल् वीशान् लतकळुम,
फलभरोपहारत्तेस्समर्प्पिप्पा—
नलमुयर्न्नेपुम नाना नगङ्ङळुम,
रजतनक्षत्ररत्नदीपत्ताटे
भजनलालप्रभातवुम् निल्क्कव
मृदुलहासम् कलर्न्नु वन्न भवान
मदुपकण्ठत्ति लेरे लज्जिप्पू ञान्।

कटलिनेप्पोले मन्द्रमधुरमाम
पटहमिल्लादरिच्चेतिरेल्क्कुवान्
हृदयमल्लातेयिल्लिरुत्तीटुवान्
सदनमी क्षुद्रपुष्पत्तिनङ्ङ्ये
नवपनिनीरलरिट्टे वासना—
लवबुमिल्लेनिक्कानन्ददायकम
परिचितमल्ल हारियाम पाट्टेनि—
क्करिमकालुमरुवियेप्पोलवे,
मधुवुमिल्लविटेयक्कु समर्प्पिप्पान
मधुरदर्शन, हा! अपामक ञान।
करळिलेतविटत्तेयक्कु तानुमा?
परमशुद्धमेन प्रेममरियुमा?
हिमकणाश्रुक्कळ शकनङ्ङळाकुमा
मम मनागतमावेयुरयक्कुवान?

ओटक्कुषल

सुनहरे पटम्बर से समाच्छादित
मरकतमय शैल-पीठ के समीप
खड़ी थीं लतिकाएँ।
अपनी ललित शाखाओं में
स्वर्णिम पल्लव-वसन लेकर
चामर झुलाने के लिए,
अनेक ऊँचे पर्वत
फलों का उपहार समर्पित करने के लिए,
सेवा निरत प्रभात
रजत-नक्षत्रों का दीप लिये ,
तब आप मदुल मुस्कान के साथ
मेरे ही समीप आये, मैं लज्जा विभोर हूँ।

आपकी सादर अभ्यर्थना के लिए
समुद्र का सा मन्द्र-मधुर वाद्य नहीं ,
आपको विराजमान करने के लिए
हृदय को छोड़कर दूसरा सदन नहीं
इस क्षुद्र पुष्प के पास।
सद्य स्फुटित गुलाब की
आनन्द-दायक सुरभि का एक लघु कण तक मुझ में नहीं,
मुग्ध झरना की तरह
मनोरम गीत गाना भी मुझे नहीं आता।
तुमको समर्पित करने के लिए
मधु भी तो मेरे पास नहीं ,
हे मधुर दर्शन, मैं लज्जा से बोल भी नहीं पाती ,
न मालूम आप क्या सोचेंगे अपने मन में ?
कैसे जानेंगे मेरे परम विशुद्ध प्रेम को ?
क्या ये आत्म-करुणा के अश्रु
प्रकट कर सकते हैं मेरे मन के सब भाव ?

मुकरुकेने मयरुकेन्नुळ्ळिल् नि–
घकलुवोळम् तमोभरम मदुरम् ।
प्रणयियाम् निन वपियिलन जीवित–
क्षणमपद्धिलम् वेळळ विरिन्वावू ।

—१९२९

चूम लो मुझे, चूमते रहो
जब तक कि मन का तुमुल अंधकार न मिट जाये।
हाय!
मेरे जीवन का प्रतिक्षण
तुम प्रणयी के पथ पर
अपकिल पाँवड़ा बिछा पाता।

—१६२६

तेट ट्टु पाऱ्टालुम् तेट टाकि, लार्यें, निन्–
घुट्ट्टुम् पाऱ्क्कतेन् चित्तभगम्

२

चेंकतित्तुम्पुकळ नीट्टियरिक्त्तु
तक्कक्रतिरवनुल्लसियूक्के,
अञ्जनवण्णविण्पञ्जरवद्दयाम्
पचवण्णक्किळियाय सन्ध्य
सञ्जनिताह्लादम् मेल्ले विटर्त्तिनाळ
तञ्जग मोहनचित्रपत्रम् ।

पुंचिरि तचिनिस्मोमलाळोतिना–
ळेंचिरसंचितपुण्यपुंजम् —
"वेण्मुकुळङ्ङळ विटर्नु तुटङ्ङिङ्ङय
विण्मुल्लवल्लिक नालुपाट्टुम्
भारत्ताल तूङ्ङिक्किटक्कुन्नु, पश्चिम–
भागत्तु वनन्ति पूनुळ्ळुन्नु ।
ऐंतित्र तूण्णियिल्लातावान् कण्णिण–
यूक्कन्ति चेम्मय्युमेन्तिनिल्क्के ?"

चैवटिच्चेन्तारिलोळमटियक्कुन्न
पूवणिक्कार वेणित्तुम्पु वारि
आमन्दम चुम्बिच्चुचुम्बिच्चु चोल्लि ञान्
प्रेमविकसितलाचनान्नन् —
'चाम्पिरट्टिच्चारिस्मुन्रफालत्तिल
वेप्पिन्नाल् तारकळ मिन्निमिन्नि,

अगर है यह अपराध
तो प्रिये इस अपराध को क्षमा करो,
मेरे मन का भौंरा तुम्हारे चारों ओर मँडरा रहा है।'

२

जब कनक-सूर्य अपनी अरुण रश्मियाँ फैलाये
पास खड़ा हुआ तो
अजनवश गगन पिंजरे में बन्द
पञ्चरंगी सारिका सन्ध्या ने
अत्यन्त आनन्द के साथ
अपने अंग मोहन रंग बिरंगे पंख धीरे धीरे फैला दिये।

मेरे चिर-सञ्चित पुण्य की पुंजीभूत प्रतीक प्रिया ने
मन्द-हास के साथ
मुझसे मधुर स्वर में कहा—
'खिले हुए धवल मुकुलों से लदी
यह नभ-मालती
अपने भार से चारों ओर से
नीचे की ओर मुड़ी जा रही है
और पश्चिमा दिन से आकर
सन्ध्या धूल धुन रहा है।
खड़ी है वह अरुणारुण मदिरा लेकर
आज क्या आपकी आशा की लता सूख गयी है?'

समेटकर हाथों में गन्ध-मदिर नील अलकावलि
जो लहरा रही थी अरुण चरण कमल पर
मैंने उन्हें चूमा
और प्रणयाकुल दृष्टि लिये बोला—
"इन अरुणाये हुए ललाट पर
श्रम-कणिकाओं के तारे चमचमा रहे हैं

तेल्लिळक्कीट्टुम्म नीलाळवङ्ङळा–
लल्लिन समागममोतियोति,
वेलक्ळेल्लाम वेटिञ्ञोरेनिन्द्रिय–
वेलक्क्वाक्कॉन दमेटि टयेटि ट,
रागमधुरमाम् नोट्टत्ताले मन–
स्सागरमारक्तमाक्कियाक्कि,
नानाविकारत्तिरक्कळुणत्तुवो–
री नेट्टुवीण्पुवळ वीचिवीचि
म्लानमाम् मामकसन्तप्तजीवित–
सूनत्तिलु मेयमेक्कियेक्कि
अन्तिके माहनदर्शने, नी निल्क्के–
यन्तिये वेरेयार वेपिक्कुम् ?
तेट टु पोरुत्तालुम्, तेट् टाकि, लार्ये, निन्
चुट टुम् चरिप्पतेन चित्तमेघम् ।

––१९२८

धीमे धीमे दोलायमान नील अलकें
रजनी के आगमन की सूचना दे रही हैं,
कर्मजाल को समेट लेनेवाले
कर्मेन्द्रिय भारवाहकों को श्रम-मुक्ति का
आनन्द दे रही हैं,
नेह भरी मधुर चितवन से
मेरे मन के सागर को आरक्त कर रही है,
नाना विकार - वीचियों को विक्षोभ पैदा करनेवाली
लम्बी-लम्बी साँसें चल रही हैं,
दे रही हूं नवोन्मेष
मेरे म्लान मलिन तप्त जीवन के सुमन को,
तू जब खड़ी है अत्यन्त निकट, मोहनदर्शिनी !
तो कौन क्या किसी दूसरी सन्ध्या की खोज करेगा ?
अगर यह अपराध है,
तो क्षमा कर दो इसे प्रिये !
मेरा हृदय घन घुमड रहा है तेरे चारो ओर।

—१९२८

निपल्

ञानयमट ट निप ,   लस्थिरमाम् विनावु-
तानल्लयो मलिनमाय मदीयजन्मम्
आनन्दवुम् तेळिवुमटि टपयुनु पारिल्-
क्वानल्ज्जलस्तिलारु निद्रयिल् मुङ्ङि मुङि उ ।

घारम् निदाघवेयिलेंट ट्टु तकनु निल्क्कुम्-
नेरम् तुणयुक्वणयुमेन् कुळिर मेनि पटिट्ट
स्मेरम् मुरम् सुरभि निश्वसितम् कुनिञ्चु
पारम् त्रपामधुरमाम् मलर् निल्पु मूकम् ।

मत्तिल्च्चिरिच्चुमरसुम् पकलिट्टे वण्णु
पात्ति, रसानिद्रयशिट्टे कविळत्तटत्तिल्
मुत्ति, क्करिम्पुमुळ्याल् पुळकाङ्कुरम् क-
ण्टुळ्ळित्तिङ्ङिङ्टुम् सुखमाटङ्ङने ञान् धरिप्पू ।

मारुम्नु मल्स्थितियिटपिक्कटे पुष्पवेप्लिल्
नीरुन्न ताप वरयिल्निन्नरियातेतन्ने
केरम्नु शीतळमहाद्रियिलेक्के भिक्क-
वारुम् नयिप्पतोरदृश्य बलिष्ठशक्ति ।

गन्तव्यमाकुमिटम, तिविटेक्किवटन्न-
त्यन्तम् भ्रमिप्पतिनियेतारु वस्तुविशो ?

छाया

म हूँ एक अर्थहीन छाया रूप,
मेरा मलिन जीवन केवल अस्थिर स्वप्न है,
जग की मृग-मरीचिका में आनन्द और उल्लास से वंचित
किसी स्वप्न में डूबता-उतराता सरकता हुआ चला जा रहा हूँ मैं।

निदाघ की कड़ी धूप में
जब मल्लिका म्लान हो जाती है
तो म उसकी सहायतार्थ पहुँच जाता हूँ,
मेरे शीतल शरीर से लिपटकर
मुस्कान से मनोहर मुख झुकाकर
मनिश्वास मूक खड़ी रहती है
वह लज्जा-मधुर लता-वधू।

मैं माप देता हूँ नयन दिन के
जो परिहास क्रीडा में ठहाका मारकर हँस उठता है,
और चूमता हूँ निद्रा निमग्न कृषिस्थली के कपोल,
और आनन्दित होता हूँ
ईख के प्ररोह-पुलको को देख-देखकर।

कभी-कैसी दशा बदलती रहती है मेरी!
कभी म कड़ी धूप से तपती तराई में रहता हूँ,
कभी अनजाने शीतल शैल शिखर पर चढ़ता हूँ—
निश्चय ही कोई महान् अदृश्य शक्ति
चला रही है मुझे।

कहाँ है मेरा गन्तव्य स्थान?
किस वस्तु को प्राप्त करने के लिए भटकता रहा हूँ मैं?

एतन्तरम् गिरिनिरयक्कुमनिक्कु , मद्रि
कान्तम् स्थिरम् , चपलमेन्टे विरूप जन्मम ।

अल्ला, महागिरियुमाषियुमीनिलयक्कु
निल्लाते मायण, मवाणु निम्नगरीति !
एल्लात्तिलुम् परमसुन्दरमेकसत्य–
मिल्लायकयिल्लि, वयत्तिन्टे बहिस्वरूपम् ।

हा ! बनु सन्ध्य रमणीयघरे ! पिरिञ्ञ –
पावट्टे, ज्ञानिकळिलाशु लयिक्कयायि ,
एवम् पापिक्करतु पिञ्चकवल्लि, कण्णीर –
प्पूव , लपधैयमिवनुळ्ळतलिञ्चिटोल्ले !

—१९२८

मुझ में और इन पहाड़ों में कितना अन्तर ?
पर्वत है अचल मनोहर,
किन्तु मैं जनमा हूँ चपल विरूप।

नहीं,
महाचल और महासागर भी मिटेंगे एक दिन,
कोई भी यहाँ न रहेगा तद्वत्—
यही तो है सृष्टि की स्वाभाविक गति।
सब के भीतर है किन्तु एक परम सुंदर शाश्वत सत्य,
ये जो दीखते हैं, उसी के बाहरी रूप हैं।

हाय! सन्ध्या आ पहुँची,
विदा, अयि मनोहारिणी धरिणी,
मैं क्षण भर में तम में विलीन हो जाऊँगा।
हे मल्लिके! पुष्प-अश्रुकण न झरने दो,
इस तरह न खोने दो मुझे, रहे-सहे धैर्य को।

—१९२८

प्रभातवातम्

सजातमावट्टे जयम प्रभात-
समीर, भावल्कमहोद्यमत्तिल् !
वरुन्नु नी दानवदिक्किल् निन्नुम्
धानिटे सन्देशमिळयूक्कु नलकान ।

उदारयाकुम् पुलर काललक्ष्मि-
युल्क्षिप्तहस्तांगुलिपल्लवत्ताल
आरब्धयात्राविजयोपलब्धि-
क्काशीर्वदिक्कुन्नु विकारमकम् ।

पवन्नुनोक्कुन्नु तमस्सिनुळ्ळ
पारावुकारान्निय तारकङ्ङळ
प्रत्यक्षमाकुन्नु भिळप्पवयक्कु
प्रकाशदूताग्र्य तवप्रभावाल् ।

मन्दम् चरिक्कुम महनीय निर्मल
मरम् तळिप्पू पनिनीवकणङ्ङळ,
परागसिन्दूरमुणप्पनिन्न
लताकदम्बम् तोट्टुविच्चिदुन्न ।

तट्टुत्तुनिल्कुम् गिरितन तटत्ते-
त्ताने विरम्पिन्चोरु सत्ववाने,
चुम्बिच्चिटुम् कोच्चुतणाकुरत्त-
क्कोचित्तलोट्टुम् प्रणयाद्रना नी ।

हा ! निटेनेक्कें तिरियुन्नु हारि-
हपत्तुट्टुप्पान्न हरिमुखङ्ङळ ,

प्रभात समीर

जय हो तुम्हारी, हे प्रभात-पवन !
सफल हो तुम्हारे महान यत्न,
तुम आ रहे हो देवताओं के देश से
स्वर्ग का सन्देश पृथ्वी को देने के लिए।

उदार-हृदया प्रभातलक्ष्मी
अपनी पल्लव-हस्तांगुलियों को उठाकर
तुम्हारी आरब्ध यात्रा की विजयोपलब्धि के लिए
विकारमूक होकर आशीर्वाद दे रही है।

तारे जो तम के पहरेदार हैं,
देख रहे हैं चौंक-चौंककर तुम्हारी ओर,
हे प्रकाश के अग्रदूत !
तुम्हारे प्रभाव से दिखायी देते हैं वे कैसे पाण्डुवर्ण !

मन्दगति से चलनेवाले महात्मन् !
पेड़-पादप सुरभिल गुलाब जलकण छिड़क रहे हैं।
सजग लतिकावाला कदम्ब
पराग सिन्दूर लेप रहा है।

हे महासत्व !
रास्ता रोककर खड़े रहनेवाले गिरि निकरों को
तुम अकेले ही हिलाकर रख देते हो,
किन्तु चूम चूमकर दुलारते हो
नन्हे नन्हे नवल तृणांकुर को।

दिशाओं के हर्षारुण मनहर मुख
तुम्हारी ओर घूम गये हैं

परनिट्ग्न तव पुण्यनामम
पन्नड् ङळतन कम्पितमाय चुण्टिल ।

निलयिक्कळक्कम वलराते नीळे
निल्कुन पुल्कुन्तणिमेय् तरिच्चुम,
विश्वैक विस्मापक, कन्दरास्यम
पिळर्त्तियुम निनगति नाक्किट्टुनु ।

उरक्कमिच्चिळप्पवरातिटट्टे-
य् मत्तनेनाय् मुलपानमत्तर ,
तदनभावम् करुतिक्कनिन्नु
तान वीर्प्पिट्टुम् नी पुळकप्रदायि

इरुण्टु जीर्ण्णरूवेपुमिनलत्ते-
यिळातलम नूतनशोभमाक्कान
मुतिन मूलप्रकृतियवक्कु हृत्तिल
मुळच्च दुर्वारनवाश्यम नी ।

चराचरङ्ङळक्करियाम भवाट्टे
चातुर्यमेरम् सुकुमारभाव
अल्लायिकलासेतुहिमाचलात-
माविर भविक्किल्लितुपालिळक्कम् ।

अवनु तन् 'मास्मर विद्ययालि-
ङ्ङालस्यमुष्टाक्कियोरवकारम
पुण्यप्पुळप्पाम्र पुराणदेशम
पुणनु वीष्टुम पुतुपोलप्रकाशम ।

विशिष्ट मदेशमरिञ्ञतापि
वीचिप्परप्पुम गिरितन निरप्पूम

ओटक्कुपल

पत्तों के कम्पित अधरों पर
छा गया है तुम्हारा पुण्यनाम।

अविचल रहनेवाले ये हरे भरे पर्वत
पुलकित हो विस्मय से विस्फारित गुहा-मुख,
निहारते रहते हैं तुम्हारी गति
हे विश्व के एकमात्र विस्मायक!

कहते हैं सुखपान-मत्त जागरण विरोधी
कि तुम पागल हो—
किन्तु हे पुलकप्रद,
उनकी इस अज्ञता पर द्रवित होकर
तुम उसासें भर लेते हो।

तुम्ही हो
विगत काल के जीर्ण-मलिन धरातल को
नयी द्युति से जगमगानेवाली
मूल प्रकृति के मन में अंकुरित
अप्रतिरोध्य नव-संकल्प!

जानता है चराचर जगत
तुम्हारी चतुर सुकुमार भाषा,
अन्यथा,
आसेतु हिमाचल
ऐसा स्पन्दन कैसे आविर्भूत होता?

हट गया है वह अंधकार
जिसने भर दिया आलस्य अपने इन्द्रजाल से यहाँ,
सुनहले नवीन प्रकाश को
फिर से आलिंगन कर रहा है
यह पुण्यपूर्ण पुरातन देश।
जान गये हैं तुम्हारे सन्देश को
ये शैल शृंखलाएँ और यह तरंगित विपुल पारावार।

आट्टुनु शैलद्रुमराजि, यान्ना–
न्नाटिन्निट्टुम्नू क्टलिट्टे चित्तम् ।

एरिञ्ञिट्टून् निज जीवितइड्–
ळेननाट्टिलेप्पूक्कळ भवान्टे मुम्पिल्,
मत्तेदि टट्टुनुम्टक्कन सुगन्ध–
मट्टुत्तोलिक्कुम् पुपक्कळक्कुक्कूटि ।

मुळयक्ककत्तुम भवदीयशक्ति
मूळुन्नु चैतन्यदनाम् महात्मन !
प्रेमम्पुतुम्पुन्निरियात्तु तम्मिल–
क्कवोत्तु निल्क्कुनित्तु नालु दिक्कुम् ।

चुवन्नु पच्चन्नु वेळुत्तु मेले
चुटि टप्परक्कुन्नु मुकिल्प्पताक,
उन्मेषदायिन ! मम जन्मभूमि–
यूणन्नतिन छायपिल् निनिटावू !

—१९२८

लो, पहाड़ों की पादप-पंक्तियाँ
नृत्य कर रही हैं,
और सागर का उरस्थल भी
उच्छलित और तरंगित हो रहा है।

मेरे देश के सुमन
समर्पित कर रहे हैं आपको अपना जीवन,
उनकी मदिर गन्ध बना रही है उन्मत्त
आस-पास बहनेवाली सरिताओं को।

हे चतन्यदायक महात्मन्,
गूँज रही है तुम्हारी शान्तिध्वनि वेणुवन में।
प्रेम-मग्न मन्दस्मित के साथ
खड़ी हैं चारों दिशाएँ हाथों में हाथ डालकर।

ऊपर मँडरा रही है
श्वेत-लाल-हरी मेघपताका,
हे उन्मेष-दायक!
मेरी जन्मभूमि जाग उठे
और खड़ी रहे सदा इसी झण्डे की मंगलछाया में।

—१९२८

मेघगीतम्

निपलुम वेळिच्चवुम
लीलयिल् निर्म्मिच्चूदि-
क्कपकुम वचित्र्यवुम्
वायिपयूनकुम् सविताचे,
हिमशीकरत्तिलुम्
सागरत्तिलुम् काणु-
ममलप्रकाशमे,
लोकचक्षुस्स, स्वामिन्
गेयमाम् भवन्दीय-
माहात्म्यमाक्कोंतावू,
नीयल्लो सनातनन्
प्रकृतिप्रवत्तकन् ।
प्रमत्ताल भवानोटु
लोवयघो नी लोक-
स्तोमत्तेव्वाधिक्कुम्नू
नी कालम् निर्म्मिक्कुनु ।
पल धातुजातमामगलेपनम पटिट
विलसुम् वनप्पच्चमल्ककच्चयुलयवे,
कुटिलायतम् सरिलक्कुन्तळमयिन्नु त-
भुटलिल सुमाकीण्णम् चितरिक्किटक्कवे
अलयापियाम जरिप्पट्टपञ्ञापयस
मलरिम्मणम वीशुम् वीप्पुक्ळुदियक्कवे,
राविनालिटयिक्कटक्कण्णिम चिम्मिम्भूमि-
देवि चय्युनू नित्यशयनप्रन्दक्षिणम्,
आरुटे पवित्रमाम् पान्तिन् परागङ्गळ
तारकळ् सर्वोपास्यनाकुमाम्भगवाने ।

ओटक्कुयल

मेघगीत

हे सविता,
छाया और प्रकाश की सलील रचना कर
जग को सुन्दर और विचित्र बनानेवाले,
ओस-कण में और महासागर में
समभाव से प्रतिबिम्बित होनेवाले अमल प्रकाश,
लोकचक्षु, हे स्वामिन,
कौन कर सकता है कीर्तन
तुम्हारी गय महिमा का?
तुम हो सनातन, प्रकृति के प्रवर्तक!
प्रेम की डोर से बांध लिया है तुमने
अखिल विश्व को,
तुम्हीं करते हो निर्माण काल का भी!

यह धरित्री-देवी,
विविध धातुओं के अंगरागों से अंकित
मनहर कानन हरीतिमा के उजागर उत्तरीय से शोभित
अंगों पर बिखरे हैं सुमन
शोभित है वक्र चंचल सरिताओं की कुन्तल राशि से
ऊर्मिल सागर के विलुलित शिथिल वसन धारण कर
कुसुम सुरभित निश्वास के साथ
मूंद लेती है रजनी की पलकें,
कर रही है तुम्हारी शयन प्रदक्षिणा।
हे सर्वोपास्य
ये तारागण हैं तुम्हारे पद्युगल के पराग मात्र।

२

भूवमामोह वेल्म—
मुकिल् ञान्, घनीभूत–
लावबाष्पम् निन्सम–
सामर्थ्यनिदर्शनम्।
इत्रमेलिरुण्टोरेन
जीवितम् भवान् तोर्त्तु
चित्रवेष्टितन् येण्म
वितयृक्कुम् करत्तिनाल्।

हा! जडात्मकनाम् ञा–
नरमुतसनातन–
तेजस्से, रूपान्तरम्
प्रापिप्पू वीण्टुम् वीण्टुम्।
सवदा तमोमय–
माकुमेनात्माविकल्
दुवह्मोहमाग्नि–
येन्ति ञानुपसुनु।

मामकेच्छय ल्साक्कुम्
दश्यमल्लातुळ्ळेतो
भीमशक्तिठन्लील
मलगति नियर्त्तिप्पू।
ओन्नलूतियाल् धीर–
सागरम् जाताकम्पम्,
उन्नतमहागिरि
मूशालु मण्लूत्तरि।
वानपेतलस्यमा–
याक्याल् भ्रमिक्कुन्नु
वानत्तिलिटि_टट टम्नु
वातुवार्त्ताळालम्बि।

२

मैं हूँ क्षुद्र मेघ, निरीह,
और हूँ संसार का घनीभूत वाष्प,
मैं तुम्हारी सृजन चातुरी का निदर्शन हूँ।
हे चित्रचेष्टित
प्रकाश लानेवाले अपने हाथों से ही तो
तुमने बनाया है मेरा जीवन
कालिमामय।

हे निरतिशय सनातन तेज,
मैं जड़ात्मक
बारम्बार रूपान्तर पाता हूँ,
अपनी तमोमय आत्मा में
दुर्वह ज्वाला लिये सर्वदा भटकता फिरता हूँ।

नहीं है मेरी इच्छा से यह,
करती है मेरी गति का परिचालन
कोई महती अदृश्य शक्ति।
उसकी एक फूँक से
क्षीर सागर प्रकम्पित होता है,
उन्नत महाकाय पर्वत
परिवर्तित होता है लघु धूलि-कणिकाओं में।
मैं तो लक्ष्यहीन हूँ,
इसलिए आँसू बहाता हुआ
नभ में वातावलम्बी होकर
भटक रहा हूँ।

३

चित्रहेतियाम् देव,
नाक तिलक्कूटिञ्जैन्न—
यात्र नीयारभिक्वे—
येनुळळु पोट्टुम् शब्दम्
भेरिनादमामेंकिलि द्रकाम्मुक रत्न—
तोरणम वेट्टान् वेणमेन्नाकिलेन् हृद्रक्तम
एन्निरुण्ट जीवित—
मानीलत्तपयायि
मुन्निलित्तिरि नेरम
मिनुवान मतियाविल,
नैचकत्ताळिक्काळुम दुस्सहानलज्वाल
वाचनपताकयाय कालक्षणम भविच्चाविल्
अपकाश्न वीथियिल पट्टुकळ विरिप्पाने—
न्नपलिन् निपलिनाले‌ङ्डानुम् साधिच्चाकिल,
पनिनीर तळिप्पानेन नेत्रनीरुत्तकुकि—
लिनियुम आनाशिप्पू मेषमायत्तने तीरान।
मलिनम, क्षणनान्नि—
लेन्नाल ता मागत्तिल
ज्वलिताभिमानम हे
देव! निम्नभिमुखम।
निनाप् हृपस्तमलज्जादिभावत्ताले
वन्नाळुम नानावण्णम व विळिल पकनु ञान!
तोक्ते प्रेमत्तिटे
मन्नवत्तियावकीटा—
नाकट्टे बाष्पापूर्ण—
मेन समाद्रमाम जन्मम!
नित्यनामविट्टुत्तेस्मुप्रकाशसो दय—
मत्य तम् नुकर्न्नेटे हृदयम् तेळिञ्ञावु!

—१९३०

२

हे चिरहेती भगवन!
स्वर्गपथ से जब तू जैत्र-यात्रा करने लगता है
तब यदि मेरे हृदय के टूक-टूक होने की ध्वनि
बन सके तुम्हारा भेरी रव,
यदि मेरे हृदय का शोणित काम आ सके
तुम्हारे हेतु तोरण बाँधने के,
मेरा श्यामल जीवन
हो सके थोड़ी देर के लिए ही सही, तुम्हारा अलंकार चिह्न,
मेरे अन्तरंग की असहनीय ज्वाला
बन जाये कांचन पताका,
मेरे दुःख की छाया
बिछा सके शालीन तेरे सुभग मग में,
मेरे आँसू छिड़का सकें गुलाब जल,
तो मैं चाहूँगा यही
कि अगले जन्म में भी मैं मय ही बनूँ।

मैं मलिन हूँ और हूँ भी नश्वर—
किन्तु इससे क्या?
प्राञ्जल गरिमा के साथ
हे देव, तुम्हारे सम्मुख
हृप-स्तम्भ न जा आदि
विविध भावों की रंजक रंगीन छटा
कपोलों पर खिलाये
खड़ा रह पाऊँ, और
मेरा आर्द्र बाष्पपूर्ण जीवन
जग को प्रेमाधीन करने में मग्न हो।
हे सनातन,
तुम्हारी मुस्कान की सुन्दरता पाकर
मेरा मन जगमगाता रहे।
—१९३०

आ मरम्

आ मरम्—आमरमितु काणुम्पाषुम्
कोळमयिर कोरियिट्टुन्नितेन् जीवनिल् ।
कालिटरनु , जलाद्रमाकुनु कण-
पीलि , व्रणितम् तुटिक्कुनु म मनम् ।
एन्तु कळे, नीयिनियुदिक्कात्त पू-
न्तिङ्ङळिनायिक्कुतिष्पतेन्तिङ्ङने ?
सन्तप्तजीवस्तु नष्टसुख स्मृति-
तन् तणलपोलुमत्यन्तमाश्वासदम ।
कालविहगिक राप्पकलाविय
लोलच्चिरकटिच्चेत्र मुन्पोट्टु पोय् ।
एत्र तारङ्ङळ तेळिञ्ञु मरञ्ञुपो,–
येत्र पुष्पङ्ङळ विरिञ्ञु कोषिञ्ञु पाय्,
चेताहरङ्ङळाम् सन्ध्यकळेत्रपो–
येतो किनाविन् चुषियिलाणोक्केयुम् ।
'प्रेमस्तिनाल् ज्ञानटिम" एन्निङ्ङने–
या मधुराधरत्तिकलनिनुम् स्वयम्
हू मधुस्यन्दम् नुकर्नु ञान् निघोरा
श्रीमन्निगामुखम मात्रम विभिन्नमाम् ।
अन्नत्ते नक्षत्रमन्नत्तेयन्तियु–
मन्नत्ते मन्दसमीरनुम् वेरेयाम् ।

ओटक्कुषल

यह पेड़

यह पेड़
आज भी जब वह पेड दिखाई देता है
मेरे प्राणों में पुलक फूटने लगता है
पैर लड़खड़ाने लगते हैं
बरौनियाँ गीली हो जाती हैं
और व्याकुल मन स्पन्दित होने लगता है।
ओ मेरे मन !
जिसे आगे कभी उदित नहीं होना है
उस चन्द्रमा के लिए क्या चौकड़ियाँ भरते हो ?
किन्तु नहीं—तप्त प्राणों के लिए
लुप्त मधुर सुख की स्मृति की छाया भी
अत्यन्त आश्वासदायक हो सकती है।
पल फड़फड़ाकर दिन रात के
कालविहगिनी कितना दूर चली गयी है !
कितने ही तारे टिमटिमाकर बुझ गये,
कितने ही सुमन खिल खिलकर झर गये
कितनी ही मोहक सन्ध्याएँ अस्त हुईं—
हाँ, सब कुछ किसी स्वप्न के भँवर में घूम रहा है।
किन्तु वह सन्ध्या—
जब मैंने उन मधुर अधरों से
यह मधु स्यन्दी वाणी सुनी
"मैं अनुराग की दासी हूँ"—
वह कितनी भिन्न थी !
उस दिन के तारे कुछ और ही थे
उस दिन की सन्ध्या कुछ और ही थी
और उस दिन का मन्द पवन भी भिन्न था !

अन्तिक्कतिरवप्पात्रत्तिल् नलञ्चुव-
प्पेन्तिय मद्यम पकनु पकलुमाय्
स्वरम् नुकनु मदिच्चु सच्यादेवि
पारम् तुटुत्त कविळुमाय निल्कवे,
मम्मरत्ताल् प्रतिपेधवपुमुकळ
नम्मपरनाय तनाटुर्रयिक्कलुम्
भीरुलतकळतन् वेपितागङ्डळे
मारत्तन पिन्नेयुम् पिन्नेयुम् पुल्कवे
प्रीतिप्रपाभरमूकमायत्तीनु मण
पातितुरस्नेमपुन्तिमलरिये
सौरम्यमत्तमधुकरम चुम्बना-
दारसौल्यत्ताललम् मदम्पिक्कवे,
दूरेयाणेंकिलुम्, वीक्षणत्ताल् चिल
तारकळ् भावम् ग्रहिप्पिक्कवे स्वयम
नमणम वीशुम्न निश्वसितत्तिनाल्
रम्यपुष्पाळि मरपटि नल्कवे,
पोमहर ल्लक्ष्मिये मिनुन पाटल-
हेमनीराळानुवत्ति टे यवलम
व्योमम् ग्रहिच्चु चुम्बिच्चु चुम्बिच्चुतान्
तामसिप्पिक्कुन्नु पिन्नेयुम् पिन्नेयुम् ।

अट टम् चुरप्ट कम्पिमूत्तल् वेट्टिव-
च्चोट्टप्पनारलर चूटियतिम्नुमेल
हारियामुज्ज्वलवक्षमिल्नेरिय
सारियग्रढमाम् मट्टिलिट्टङ्ने
अत्यन्तमाहनम् नूतनयौवनम्
प्रत्यगनम विकसिक्कुमुटलुमाय्

ओटक्कु

सान्ध्य-सूर्य के चषक में
भरकर अरुणासव
पान कर रही थी सन्ध्यादेवी दिन के संग
मदारुण गुलाबी कपोल थे उसके।
रसिक पवन
चकित लतिकाओं के अंगों को
बारम्बार आलिंगन में भर रहा था,
यद्यपि वे करती थी प्रतिरोध मर्मर स्वर में
सुरभि-मत्त मधुकर
प्रीति-समार से मौन-मूक
अध खिली चमेली को
उदार चुम्बन रस मे
बना रहा था उन्मत्त।
नभ में दूर स्थित तारे
जता रहे थे भाव लाल लोचनों द्वारा
उत्तर दे रही थी
रम्य सुमनराजियाँ
सुरभिल निश्वासों के द्वारा,
कामुक व्योम
गमनोद्यत दिन-लक्ष्मी के
सौवर्ण कौशेय का अंचल पकड़कर
चूमता था उसे बारम्बार—
जाने ही नहीं देता था।

खड़ी थी वह
घुंघराली नील केशराशि का जूड़ा बाँधे
गुलाब-शोभित,
हिल्लोर मनोहर उरोजों पर डाले मसृण-साड़ी
अंग-अंग में प्रस्फुटित
मोहक यौवन से उद्भासित तन

प्रेमवाचालमाम् स्निग्धाद्रपश्मळ–
श्यामळक्कणकोणिनालतिरम्यमाय्
मामकयौवनस्वप्नङ्ङळोक्केयुम्
कोमळरूपमेदुत्ततिन्मातिरि
आ मधुभाषिणिया निन्न निल्पिनु–
मामतमाक्कुन्नु मामकात्माविने ।

आमलाळ् पूर्णसौभाग्यमाम् जीवितम्
हा, मलयन्नरतिल सवाप्पमर्प्पिकनचे
ञानभिमानिच्चु साम्राज्यनायक–
स्थानम् लभिक्कुन्न निस्वनेप्पोलवे ।

आ निमिषत्तिन्टे दुल्लभसौभगम्
लानिनयविरक्कीटुवान मात्रमाय् ।
प्रेममहाजन्मयात्रयुम तिल्क्कणम्
प्रेतम्परम्पिल, मतिराज्यसीमयिल् ।
चारमायृत्तीर्न्निता लावण्यसवस्व–
सारवुम् मामकसकल्पनाक्कुम् ।

कार विल्लु वालृक्षणम काण्डु मायिल्लया ?
पूर्विन्नोर पक्लु मात्रमत्रे निल ,
नेन्न्वितप्रमातम मुकरुम हिमविन्दु
पुञ्चिरिक्कोळ्ळुम्पाषेक्कुम मरञ्ञुपाम
मानत्तु मायुन्नु मिन्नलुदिच्चुटन्
माधुर्यधम्मम् स्वभावमणिक्कन ।

स्निग्ध भोली पलकों से युक्त
प्रेम-वाचाल नील नयनांचला
मेरे युवा हृदय के सपनों की साकार
प्रतिमा बनी हुई,
आज भी मधुभाषिणी की उस
मुद्रा भंगिमा की याद
बना देती है मेरे मन को उन्मत्त!

जब कोमल कामिनी ने
अपना पूर्ण सुभग जीवन
सानन्दबाष्प सौंपा मेरे हाथों में
तो मैंने अनुभव किया सगर्व,
मानो कोई अकिंचन
अकस्मात् बन गया हो राजाधिराज!

अब तो उस घड़ी के दुर्लभ सौन्दर्य का
केवल रोमन्थ करने के लिए ही मैं बच गया हूँ।
हाय, प्रेम की विजय-यात्रा को भी
रुक जाना पड़ता है श्मशान में
मृत्यु की साम्राज्य-सीमा श्मशान में पहुँचकर!
लुट गया लावण्य का वह साम्राज्य
और नष्ट हो गया मेरे स्वप्नों का स्वर्ग!

पल भर में ही मिट जाता है इन्द्रधनुष,
मात्र दिन भर में मुरझा जाता है सुमन,
अपने वक्षस्थल में प्रभात का चुम्बन पानेवाली हिमकणिका
मुस्कराने भी नहीं पाती है कि मिट जाती है
बिजली नष्ट हो जाती है उत्पन्न होते ही,
क्षणिकता ही तो है धर्म लावण्य का!

रागमे ! नीयोरु पोल्पनिनीरलर
वेगम् सुभगदलङ्ङ्ळुतिमुपाम् ,
केवलम् मृळ्ळुवळ्ळोष्टु कीरनु नी
जीवनेप्पिने , वेरुक्कुनु निने जान

—१९३०

।

हे अनुराग,
तुम हो स्वर्णिम गुलाब
झर जाते हैं जल्दी ही सुन्दर दल—
फिर कांटों से वेधते हो तुम हृदय—
तुम से मैं घृणा करता हूँ।

—१९३०

ळी

इल्लाय्कयल्ल समरेच्छ , भटाग्निमन्नु
पुल्लार्यिरुन्नु मरणम् रणमेनु केट्टाल ,
निल्लाते पोरिनु निजालयमेत्तुवाना-
युल्लासि विक्रमनिटय्क्कु तिरिच्चु पोन्नु ।

क्ष्वेळाघनस्तनितमार्न्नु करोच्चलत्ताम्
वाळाय मिन्नलोटु चाशि पिटिच्चटुत्ताल,
धूळातेयिल्ल वुणयेरिय शत्रुयोध-
फाळाहिमण्डलियिलोत्तुमनटे मुन्पिल ।

तन् नाटिनाणु पट , मातृपरित्रिपेन्नु
घोनालयाळक्कु परदेवतयायिरुन्नु ,
अन्नायतन् महितवेदियिलात्मरक्तम्
अन्नाळोपुक्कुवतिनुत्सुकनायिरुन्नु ।

पारम् रसत्तोटरिसैनिकयूथरक्त-
पूरत्तिलाण्टवनोराण्टु पुळञ्ञु नीन्ति ,
दूरत्तिलाणिनियुमज्जयलक्ष्मि निल्क्कुम्
तीरम् , गृहत्तिलणवान् कोतियायि तानुम् ।

स्नेहत्तिनानुरुकुमेन्ट मनस्सेपुम् तल्-
गेहत्तिल निमुमोरु वीष्पविटत्तिलेत्ति ,
साहन्तानुक रवाळ वेरुमोलयेतु-
देहत्तिनाञ्चेरिय माट टतिनेत्तळत्ति ।

स्त्री

नहीं था ऐसा कि उस वीर योद्धा के मन में
समर की इच्छा न रही हो
रण था उसके लिए तृणवत्——तो भी
वह विलासी 'विभ्रम' भरे युद्ध के बीच
छोड़-छाड़कर समर लौट पड़ा आतुर अपने घर।

उसकी हुँकार ऐसी जैसे बादलों की गरज
कर की कृपाण ऐसी जैसे चमचमाती तड़ित्
जब वह सामने संघर्ष करता तो बड़ी से बड़ी रिपु-मण्डली
काल-सर्प-कुण्डलियों-सी सभय सहम सिकुड़ जाती।

चल रहा था समर उस मातृभूमि की रक्षा के लिए
जो थी उसकी आराध्य देवी जिसकी पवित्र बलिवेदी पर
वह सन्नद्ध रहता था
सदा अपना रक्त बहाने के लिए।

शत्रु-सैनिक-समूह की रक्त-सरिता की धारा में वह
तैरता रहा था वय भर
किन्तु जयलक्ष्मी खड़ी रही दूसरे ही तट पर
वह लालायित हो उठा घर पहुँचने के लिए।

प्यार से भरा जो एक हृदय उसके भवन में द्रवित हो रहा था
उसी का एक निःश्वास उसके मन में आ लगा, कर दिया उसने
वह तन प्रक्षीण जिसके सामने शत्रुओं की दर्पीली असि
रह जाती थी काँपकर एक सूखे पत्ते की तरह।

प्रेमतिनुळळ दुरितत्रममाम् प्रभाव-
स्तोमम् महात्मुतदम , अल्पमतेट ट्वेन्नाल्
श्रीमज्जलद्रवि , विवस्वत्पुण्डरीकम्
भीमन् मृगाधिपति साधुतयाळुमणम ।

प्रेमम् नटत्तुवोरु सैनिकशासनत्ति-
नामत्तनायेतिर परञ्ञु तटञ्ञु निल्पान,
सामर्थ्यमिल्लवनु तानतु चेय्तुपोयाल
भूमण्डलम् चुटल , कीर्ति वेळुत्त चारम ।

प्राणाधिनाथये वियोगविषण्णयायि-
क्काणाममयाळुदे विचारगतत्तिलेल्लाम्
एणाङ्कलेखयेयक्कलसम नभस्सिल
चाणालुमापियुटे कोळलयिलक्वणक्वे ।

तान् जागरूकतयाटेटि टटवे रणोर्वी-
सजातम द्रतर मेरिरवत्तिनेक्काळ,
कञ्जातपेलव मधूपदनूपुरत्तिन्
शिञ्जारवम् श्रुतिपुटम् स्फुटमाय् श्रविञ्ञू ।

नीराल मनञ्ञोरिम नीलिम पूण्टु नीण्टो-
रारागविह्वल विलोलविलोचनदृग्ळ,
नाराचमेय्युक्लिम एतुमटत्तिटात्त
धीराशयन्टे हृदयसे नुरुविल नूराय ।

तारुण्यमाम नववसन्तमुदिच्चु रण्टु
वारट ट पाग्रवुळिर मोग्टु वुरुत्त मारम
चारुत्वमाय निपतपोलेयपिञ्ञु मेते
चेरम् वरिकुपलुमेडग्ने विस्मरिक्कुम् ।

कैसा विस्मयकर होता है प्रेम का दुर्निवार प्रभाव
उसके सामने मध्याह्न का प्रखर सूर्य
बन जाता है सुकोमल मनहर कमल
भीम मृगाधिपति बन जाता है सीधा-सादा मृगशावक।

वह था प्रेमोन्मत्त प्रेम के कठोर सैनिक शासन के विरुद्ध
नहीं बोल सकता था वह एक शब्द
यदि उसका प्रेम पथ अवरुद्ध कोई करे तो
भूमण्डल बन जायेगा श्मशान, कीर्ति बनेगी श्वेत भस्म।

कल्पनाओं में वह देखता था अपनी प्राण प्रिया को विरह विषण्ण
जैसे सागर अपनी वीचियों में देखता है
प्रतिबिम्ब उस शशि कला का
जो रहती है ऊपर नभ में बहुत दूर।

रणक्षेत्र में युद्ध की सजग वेला में
सुनायी पड़ता है जो मन्द गम्भीर भेरी रव
उससे भी अधिक स्पष्ट सुनायी पड़ने लगी उसे
प्रेयसी के पैरों की नूपुर-झनकार अपने कानों में।

प्रिया की हठीली गीली पलकें और
राग विह्वला नीली-नीली लम्बी आँखें
दोनों की स्मृति ने कर दिये शत शत खण्ड
उस धीर-गम्भीर हृदय के जिससे टकराकर
हो जाते थे शत्रुओं के तीर कुण्ठित।

कैसे भूल सकता है वह
तारुण्य के नव वसन्त का उन्मद
कमनीय यौवन कुम्भों से सुशोभित वह उर
विलुलित होकर अंगों पर पड़ी रहनेवाली नाग-वेणी।

इल्ला वनिक्कु चिरकानिमिपत्तिलङ्ङ–
चेल्लान् , युवावतु निनच्चु शपिच्चु तने,
अल्लाम् कॉरिकटल् , अहमरमूतलङ्ङळ्
एल्लाम् कटनु बाटि कोण्टवनेत्ति नाट्टिल् ।

नानापदानमियलुम भटनेत्तियप्पा–
ळानाट्टु कोळमयिरियनु तृणाकुरत्ताल्
मानानिगोत्सुकत्त पूण्ट मरुत्तु वेप्पों–
प्पानाय् मुलिनितु मुक्नु मुक्नु मेम्पियल् ।

वेणप्रू निरञ्ज घरमागुमदगुमाल
पोन पूसुमप्रमाट्टु मुल्ल पटर्नु वेरि
सप्नूणशोभमोत कुनिनट्टुत्तु काणुम
तन् पूवपुण्यसदनम् नयनम् विटर्त्ति ।

वेगम गतिक्कधिकमाम् , युवयोधमाग्या–
मोगप्रसन्नवदने द्रुदिदृक्षयालो
रागम् क्षणत्तिलुयरुम् हृदयत्तिल निन्नु–
माग्णण्डभित्तितलमेत्ति , यट्टुत्तु सौधम् ।

आळट ट विणर्मुरियिलेरि निरन्न तारा–
गाळङ्ङळाम लिपिकळाय्गोर कामलेखम्
चीळेन्नु नीत्तळवु कोमळमाय साऽन्ध्य–
वेळय्क्कु पूकविळ तुटुत्तु मिथि ।

लोलस्वरम् सुभगनिम्नग पाटट्टु पाटि–
क्कूलद्रुमङ्ङळे मयक्कि मदिच्चोमिच्चु ,
मेलत्रयुम पुळकमेन्ति मेलिञ्ज मेघ–
मालय्क्केपुम कुळिर मुखम् मुकरन्न चालम् ।

चाहता था वह उड़कर घर पहुँचना उसी पल
किन्तु पंख कहाँ ? कैसा अभागा हूँ, उसने सोचा ।
किन्तु रजनी-रूपी नीलसागर को और
दिन रूपी मरुस्थल को पार करके
पल-भर में वह अपने देश पहुँच ही गया ।

विविध विरुदावलियों से विभूषित वह अवदानी वीर योद्धा
जब आ पहुँचा तो देश की भूमि पुलकित हो उठी
रोमांचित तृणांकुरों से, अभिमान और औत्सुक्य से भरे पवन ने
लहराकर उसके शरीर के श्रम-सीकरों को चुम्बन से पोछा
—उसे आदवस्त किया ।

रम्य पहाड़ी की उपत्यका में स्थित उसका सदन
उसके पूर्व पुण्यों का फल, आँखों के सामने उत्फुल्ल हो उठा
उस पर फैली हुई थी धवल कुसुम राशियों से भरी जूही वल्लरी
जिस पर चढ़ा रही थीं सोने का मुलम्मा अस्तगामी सूर्य की रश्मियाँ ।

युवक योद्धा आतुर था अपनी भाग्य-सर्वस्व का चन्द्रमुख निहारनेको
शायद इसीलिए भर गया उसकी वेग गति में
हृदय उच्छलित हो रहा था प्रतिपल,
अतः उसमें का राग चढ़ गया उसके कपोलों पर, आ पहुँचा समीप सौध ।

कोमलांगी सन्ध्या
विजन आकाश के सौध में पहुँचकर
तारक लिपियों से अंकित काम-लेख को जब खोलकर बाँचने लगी
तो उसके मृदुल कपोल आरक्त होकर चमकने लगे ।

सुभग सरिताओं ने लोल स्वर में गीत गाया—
बढ़ गयीं आगे तट के तरुओं का गान-भग्न बनाती हुई
कृशांगी नीरद-माला का मुख चूम-चूमकर
पवन मन्द स्मित पुलकित हो गया ।

आसन्नरात्रियुटे कालच्चुवटोच्च वेळ्प्पा-
न्नासक्तमाम गगनमप्यविचारमेये
श्वासम विटात्ते निल काण्टु , युवावणञ्ञु
वासस्थलत्तु निज वाजियिल् निन्निरङ्ङि ।

पारम वितप्पोरु वह्निस्वरजोवनाय
धीरप्पटक्कुतिर तन् मुखमाञ्ञु मुत्ति ।
घारत्तु चान्ज तरुशाखयिलाणु वधि-
च्चारवतमानसनणञ्ञु गह्वावणत्तिल् ।

एताणमूतचरवीरयशस्सु नेटि
ह्वनाथनेत्तिट्टुमनेनिलयिट्टु नोक्कि
तनाद्दमाम मिषियिटय्क्कु तुटञ्चु मुट ट-
त्तनाळुम् इन्दुमति' निल्क्कुवयायिरन्नु ।

सामन्टे वेणक्तिर काण्टु चिरिञ्चिरुन्नि-
त्ता मञ्जुळक्कुळिर मणलत्तेळिमुट टमेट टम् ,
आ मङ्कतन गियिलमषक्कशिकत्ति-
लोमनिलाबु पुतुपिञ्चकमाल चार्त्ति ।

इल्ला विमूप विलयेरिय वस्त्रमोन्नु-
मल्ला घरिप्पनवळ मेनि मलिञ्ञिरुन्नु ,
सल्लाळनीयमळकम पोटि पटि टयिट्टु
मल्लातिरुन्नु मुटि वेट्टियिरन्नुमिल्ल ।

पूविन्नु वेण्टणियल , पुष्कलगोम वेण्णि-
लाविन्नु वेण्टलोळिय्क्कु नवागरागम,
आविभवलप्पुळकमात्तनुविल प्पतिञ्ञु
ताविस्तुळुम्पि निरवद्यनिसर्गकान्ति ।

आकाश खड़ा था आतुर श्वास रोके अनन्य चित्त
आसन्न रजनी के परों की आहट सुनने के लिए
तभी वह युवक पहुँचा अपने सदन—
उतर पड़ा घोड़े से ।

चूमा उसने मुख अपनी बहिश्चर आत्मा-से तुरग का
हाँफ रहा था जो समर धीर
अत्यन्त वेग गति से चलने की थकान के कारण
बाँध दिया उसे एक समीपवर्ती विलम्बित शाखा से
पहुँचा वह प्रेमातुर वीर अपने घर के आँगन में ।

"कब लौटेगा मेरा हृदयेश्वर अप्रतिम यश को प्राप्त करके ?"
—पन्ना उलटकर देखती थी वह करती थी भाग्य-परीक्षा
पोंछती जाती थी बीच बीच में अपनी अश्रुपूर्ण आँखें
खड़ी हुई थी अपने आँगन से इन्दुमती ।

मनोरम सिकताओं से भरा वह विमल आँगन
चन्द्रमा की धवल करों का स्पर्श पाकर उन्मुक्त हास कर रहा था
सजा रही थी मोहक चन्द्रिका उसके विश्लथ
कजरारे केश-पाशों को जूही की नवल धवल मालाओं से ।

नहीं थे उसके अंग पर गहने
नहीं था परिधान अमूल्य वस्त्रों का
शरीर बन गया था कृश हो गयी थी धूल धूसरित
उसकी लालनीय अलकें बिखुर था असज्जित ।

किन्तु, क्या आवश्यकता है पुष्प को अलंकार की ?
सौन्दर्य से परिपूर्ण कौमुदी का अंगराग की ?
उसके शरीर पर विराजित अकृत्रिम सौन्दर्य
स्वयं पुलकित हो रहा था, नया निखार पा रहा था ।

क्षामांगितन् मधुरदशनमाय तोळिल्
प्रेमाकुलन् मृदुलपाणियणच्चु निन्नु ,
रोमाळियाक्केयुमुणन्नु , विटन्न कण्णा-
यीमाटे नेक्कुं निपतिच्चतु पाति कम्पि ।

चेरन्नु सौरभमेयुम् चेरवाट्टु वीशि
वाएट्ट रप्टु मुकिलिन् शकलङ्डळ तम्मिल ,
चोरन्नु चन्द्रकरचुम्बि मुखत्तु निन्नु
चारुस्मितम तनु विकम्पितमायिट्टुम्नु

वल्लिक्कु मेल तल चुरुण्टु तपच्चुलञ्ञो-
रल्लिद्धकान्तियाटपिञ्ञु किटन्निपञ्ञु
चिल्लिल्प्पतिञ्ञु पविपङ्क्ति , तेळिञ्ञु तिंवळ-
सेल्लिलुस्सुधाकणिव , अङ्ङने निर्निमेषम ।

वीरन्नु तन् कठिनवेदनमाय मारिल्-
क्कूरम्पु कोण्टु निरयुम् मुरिविङ्कलेल्लाम्
आ रम्य कोमळ करत्तळिरालत्तलोटु-
मेरत्तु वेण्ण पुरळुन्नतु पोले तानि ।

चिन्नुम् करिक्कुयलपिन्नलतातुक्किटाते
तभुन्नतस्तनपटम करियाक्किटाते,
मिन्नुन्न पाम्पुटलोटत्तरणटे देहम
ओन्नुन्नवणप्रणय वीष्टमणच्चु चापाळ

लावण्यमिल्ल धनमिल्ल कुलीनयेन्न
मावत्तिनिल्ल कक एक्किलुमेन्तुकाण्टा,
जीवन् नेरिवळ भवान नुकूलमाय
दैवत्ते येङ्ङनेयेनिक्कु पुकप तिटेण्टा ?

"भीतम् रिपुप्रकरनीरन्माय, खड्ग–
वातत्तिनाल् च्चितरि दुर्द्दिनमस्तमिच्चु ,
स्वातन्त्र्यहर्सियुटे पून्चिरवाम पताका–
जातम् जनिक्षितिनभस्सिल् निरन्नु तानुम् ।

आ नेरमातियुवरम अपयाल शिरस्सु
ताने कुनिञ्ञ तरुणन 'पट तीर्न्नतिल्ल ,
मानेलुमक्षि यनुरागश्रुताग्नि तळ्ळान्
आनेरं नाविन योट्टुविलग्गतधयनायि ।

भीरुत्वमा ! भयमेनिक्करिवितल , वेल्ला–
नारुळ्ळु ? वेनतु जलाविलमीमिपिक्कोण
ई रथमरम्यतनु, वी नेट्टुरीप्पु , पन्तेन
चोरनोरामापि , पराजितपौरुषन आन ! '

'हृनाथ विश्रमनोम्त्तरनेन्नरिञ्ञ–
तिनाणु , वीरवधुवेनु वृथा नटिच्चेन्
इन्नाटिनायिवल्लेयट्टु मरक्किलेन्न–
ननायिरनु ! कुलनारि तटञ्ञु चोन्नि ।

"प्रेमत्तिनुळ्ळ विल जानग्मितु, मात–
भूमण्डलत्तिनाटेपम मुन् नाक्किटुम्पाळ
धूमञ्ञुतुळ्ळियतु , भट स्तनधहीरम्
धीमन ! स्वधमरननाम नरनाणु धन्यन् ।

'जीवन् ज्वलिक्कुवतिनुळ्ळ विळक्कु दहम्
एवम् भमिक्करतु नश्वरमणचेरातिल्
✓ लावण्यमायतिलेपुन मयनक्कुवेन ,
भावत्स्वबुद्धि मिपि माहमि पात्ति रागम ।

ओटक्कुवल

शत्रुओं का भय प्रकम्पित मेघ-समूह विदीर्ण हो गया
आपके असि की झंझावात में, उड़ने लगीं सब कहीं
जन्मभूमि के अन्तरिक्ष में पताकाएँ
स्वतन्त्रता की मुस्कान के पंख फैलाकर।

युवक की लज्जा उत्तरोत्तर बढ़ रही थी।
बोला विनम्र होकर,
"समर का अन्त नहीं हुआ है अभी सुन्दरि, मृगशावकाक्षि
बहुत किया मैंने यत्न अनुराग की आशा टालने का
किन्तु अन्त में छूट ही गया मेरा धैर्य।

क्या यह भीरुता है? भय तो मैंने जाना ही नहीं,
कौन है मुझे पराजित करनेवाला?
किन्तु पराजित किया है मुझे इन सजल कारी चितवनों ने
इस स्वर्णिम रम्य शरीर-यष्टि ने, इस निःश्वास ने,
इन मधुस्रावी वचनों ने—मेरा पौरुष पराजित है इनके आगे।'

'हृदयनाथ, आज मालूम हुआ कि आप विक्रम नहीं 'उत्तर'[1] हैं!
हाय, व्यर्थ ही मैं गर्व अनुभव करती रही कि मैं वीर-पत्नी हूँ!
कितना अच्छा होता यदि इस मातृभूमि के लिए
भूल जाने आप मुझे —बीच में ही टोककर कहा कुलांगना ने,

"मैं भी जानती हूँ प्रेम का मूल्य, किन्तु जब तुलना करती हूँ
उसकी मातृभूमि के प्रति कर्तव्य भावना से तो बन जाता है प्रेम
एक तुषार की कणिका-सा और दूसरा दिखाई देता है अनर्घ्य रत्न-सा
धीमन् केवल वही मनुष्य धन्य है जो स्वधर्म में निरत है।

"यह शरीर केवल एक दीपक है प्राणों के प्रकाशित होने के लिए
मिट्टी के इस दीप के प्रति इस प्रकार मुग्ध हो जाना क्या उचित हुआ?
लावण्य तो मात्र इन्द्रजाल है उस दीप का
हाय, साहसी अनुराग ने आपकी बुद्धि की आँखें मूँद दीं।

१—महाभारत का एक पात्र जो युद्ध में डरकर पहले में ही रथ से उतरकर भागने का उपक्रम करने लगा था।

"आयार्यि ! दुम्महमेनिक्कितु भारतीय-
स्त्रीयाणु ञान , सुविदितम् करणीयमिप्पोळ
प्रेयाट्टे धर्मपथसञ्चरणैकविघ्न-
मायालिरिक्करतु" वाळु वलिच्चेट्टुत्ताळ ।

"स्वातन्त्र्यलक्ष्मियिह नाटकमाटुकल्प-
व्रातछलाल् सुरभियाम् नेट्टुवीर्पु विट्टुम्
स्फीतप्रभम् गगनवीथियिलुल्लसत्ताका-
जातच्चुळिप्पुरिकवल्लियिळक्कि निन्नुम् !

'वीरप्रभो तव सुगेययशस्सु पौरि-
मारम्भुतोल्पुळकमन्वळ पाटिट्टुम्पोळ
स्फारप्रहर्षभरमेन विजनश्मशान-
क्वारम् किटन्निळकिटुम , चरितार्थयाम ञान् ।"

तन गहणीयनिलयोत्तवळ नैजजीव-
भगम् वरुत्तिट्टुवतिन्नु मुतिन्न निल्क्के,
अगम् विरम्योरु विकारतरगितान्त-
रगन पिटिच्चु करम इतरमोति पिन्ने

प्राणाधिक वेटिक साहसचिन्त निना-
लाणाय विक्रमनिरङ्कुवयायि वीष्टुम ,
बाणात्तुमत्र मम पौरपमाम्नुरच्चु
काणान महासमरमाम् निकषोपलत्तिल ।

' ई विश्रुतासियिनिय जयलक्ष्मि पुल्कान
भाविक्के वेक्कुमथवा मृति क पिटिक्के ,
जीविच्चिट्टुन्नु मृतियाल चिलर चत्तु कोण्टु
जीविक्कयाणु पलर मत्युविल् ञान् मरिक्का ।"

नहीं सह सकती म इसे, मैं हूँ एक भारतीय वनिता
मैं जानती हूँ अच्छी तरह, अब क्या करना चाहिए मुझे
बने जो प्रियतम के धयपथ विहार की बाधा
उसे जीते रहने का अधिकार नहीं,"—खींच ली उसने अपनी तलवार

"कामना है मेरी कि यहाँ स्वातन्त्र्य लक्ष्मी
मन्द पवन के सुरभित निश्वास लेती
गगन में फहराती विजय-पताकाओं में अपना भ्रू विलास व्यक्त करती
सदा नृत्य करती रहे !

हे वीर जब पौर-वनिताएँ आश्चर्य से पुलकित
तुम्हारी कीर्ति के अनुरूप निर्मल यशोगान गायेंगी
तो दूर निर्जन श्मशान भूमि में मेरी चिता भस्म
यदि चचल-पुलकित हो उठेगी तो मैं धन्य हो जाऊँगी।"

सोचकर अपनी गर्हणीय दशा
चाहा वीर भामिनी ने जीवन का अन्त करना
तब विकम्पित शरीर भावाकुल-उर युवक ने
हाथ पकड़ लिया और बोला।

"प्राणाधिके छोड़ दो इस दुःसाहस का प्रयत्न
तुम्हारे आदर्श से प्रेरणा पा यह विक्रम फिर से पुरुष बन गया है
लौट जाता है रणक्षेत्र की ओर महासमर की कसौटी पर
खरा निखरेगा मेरा पौरुष रहो तुम यहीं उसे देखने।

"म्यान में वापिस जायेगी यह तलवार अब उसी दिन
जब विजय-लक्ष्मी करेगी इसका आलिंगन
अथवा मृत्यु आकर मेरा हाथ पकड़ ले जायेगी
कुछ लोग मरण का वरण करके जीवन जीते हैं कुछ लोग जीते हुए भी
मृत होते हैं—मृत्यु द्वारा मेरा मरण नहीं होगा कभी।'

राज यरक्तमापुवुम् तरुणटे चत्तो-
राजस्सु वीण्टुमुयिर कोण्टतु पाले तोन्नि,
तेजस्सुयनु मिपिपियल, त्तिरिये गमिप्पा-
माज मधोरनथ वाळवळाटु वाडि"।

वीरटे मारिलवळ चाञ्ञु, ननञ्ञु नील-
नीर धपमिपि, हृत्तटमुच्चलिच्चु,
आ रम्यमाक्यि विळत्त मुखत्तेयेरे-
नेरम् मुक्नु पटयाळि, परञ्ञु पिन्ने

'पोरिल्ज्जयापजयनिश्चयमिल्ल, चेनु-
नेरिट्टु निन्टे पतियाक्तिनट्नावेन
वैरिखमट्टु विधि निल्क्कुविलासु चेराम्
चारित्रशालिनि, नमुधिर निियिस्थलत्तिल।

"मालान्निटाय्य! पिरियामिनि, यिल्ल निल्कु-
मोला मुखाम्नुजमुयत्तु पोरक्कणम नी।'
मेलातेयायिळकुवान रसनश्चतु याग
लोलाभ्रलोचनपुटद्दळ परञ्ञिरिक्काम्।

धूमिस्सल पोलय मरञ्ञु युवाव वळक्कु
मूमिक्कु मलिरळ पुरण्टु पोले तोन्नि।
मामियधीनमुखि निन्नु नाक्नियश्रु-
श्यामिश्रदृष्टिमुनया वपि नीट्टि नीट्टि।

वार मूटियम्पिळिये, रावु विटुन्न वोप्पी-
लामूलमारमारु कोळमधिराम्नु वक्षम,
नी मूनयायविटे निरन्नुवन्नेन्नु? राग-
श्यामूदनाथिनि चरा धतधमवायन।

प्रतीत हुआ, मानो शौर्य-शोणित से भरा
नवयुवक का मृत उर फिर से जी उठा
आँखों में दीप्ति चमक उठी,
उठा ली उसने तलवार रणक्षेत्र में लौटने के लिए।

हठात् वह युवती वीर योद्धा के वक्ष पर झुक गयी
सजल हो गये उसके सान्द्र नील-पक्ष्मल नयन
तरुण वीर देर तक बारम्बार चूमता रहा
उन पाण्डुर किन्तु कान्तिमय कपोलों को
बोला वह फिर उस रमणी से

'समर में निश्चित नहीं जय न ही पराजय
तो भी मैं रण में बढ़कर प्रयत्न करूँगा कि बनूँ
तुम्हारे योग्य वीर पति। अनुकूल है यदि विधि हमारे
तो मिलेंगे हम फिर इसी जगह, पुण्य चरित!

'मत करो शोक प्रिये, विदा दो मुझे
नहीं अब संग रहना चाहता मैं अधिक देर
लो उठाओ तो अपना मुख-कमल, क्षमा कर दो मुझे —
जिह्वा तो हिल भी नहीं पायी उसकी—किन्तु कहे हों मानो
ये शब्द विदा के तरल बाष्पाकुल नयनों ने।

बिजली की गति से वह युवक आँख-ओझल हो गया
युवती को लगा जैसे महान्तर में सब अचानक अन्धकार हो गया
निशीथ के शशांक-सी वह सुमुखी साश्रु-लोचनों के कोनों को
फैला-फैलाकर राह की ओर ठगी-सी खड़ी देखती रह गयी।

चन्द्रमा को घेर लिया बादलों ने रजनी के निश्वास से
तरुओं पर नव निशान्त पुनः प्रस्फुटित हो गया—
अब क्या खड़ा हो मृत यहीं? जान गया है वह युवक
अपने धर्म को, जब नहीं लौटेगा वह प्रमाद हारकर।

धीरागने, मिपि तुटम्कु, मुकर्मु कोळ्ळु–
वा रामतुं दलपदङ्ङ्ळ पतिञ्ञ मण्णिल्
तारागणङ्ङ्ळुटे निश्चलदृष्टि निन्ने–
त्तीरात्त लज्जयिललिक्कुवयिल्लयेन्निल् !

नी नाथजीवितरथम् शरियायुत्तेळिच्चु
मानाहमाम वपियिल् विटट, कृतायथाकू ,
म्ळानाभमाक्करुतये, मुख, मिन्चरिन–
मी नाटटुवाक्कु पुळकोद्गमकारियेन्नुम् !

—१९२८

पोछ लो अपने नयन धीरवनिते !
यदि तारकदलो की एकाग्र दृष्टि
तुम्हें असीम लज्जा में डुबा नही देती तो चूम ला
उस मिट्टीको जिसे प्रेमवान प्रियने अपने पादस्पर्शसे पवित्र बनाया है।

तुमने अपने प्रियतम का जीवन रथ
ठीक प्रकार से प्रचलित किया है,
ले गयी हो उसे अभिमान-योग्य मार्ग पर
अब बनी रहो कृतार्थ मत करो अपना मुख म्लान
तुम्हारा यह चरित्त देशवासियो के लिए सदा पुलकोदगमकारी रहेगा।

—१९२८

चिळम्बरम्

वेल नाळे   जगत्तिनिनुत्सव-
वेळयेनु चिळम्बरम् चय्युक ।
विरमियाय चिलसुमृतुकुल-
चनवत्ति यस तमेपुनळिळ
चित्रवणचनाटिकळिळक्किक्करो—
पटत्र पारिप्पुळप्पु पून्पाट टचळ ।

गानम् चेयविनपदानमा वीर-
नान दत्तिटे साम्राज्यमाकवे
चाळटचेयतल्नी चनिरिमनुभत-
डुटळनाभवे यथेच्छमरुळुवान ।
वेल नाळे ,   च्चिल निमिपड्ङ्ळाल्
कालसेप्पिच्चयानकीययपक्कुक ।

लोकत्तिनिन्नापिवुदिवममा-
गाकमानम् पवमाननिडन्ने
स्वामियाम् वमनत्तिन् चिळम्बरम्
भूमि चुटिन नटनरियिक्कुम् ।
ऽ मनलिन्नवकागमाप्पमाम्
नामुणनतनुभविच्चीरक ।

घोषणा

कर दो घोषणा
कि काम सब होंगे कल,
आज तो उत्सव की बेला है!
पधारे हैं
पराक्रमी वसन्त
ऋतुओं के सम्राट्!
देखा ना,
रंग बिरंगी झण्डियाँ फहराती हुई तितलियाँ
उन्मत्त होकर मँडरा रही हैं!

गाओ उसकी विरुदावलियाँ,
वह वीर
आनन्द का साम्राज्य लूटकर
वहाँ की सारी सम्पदाएँ
जी भर बाँटने को ही आया है।
काम सब होंगे कल,
अभी तो हम
कुछ क्षण
काल को भिखारी बनाकर छोड़ देंगे!

'जगत् के लिए आज छुट्टी का दिन है"—
अपने स्वामी वसन्त की यह घोषणा
पृथ्वी में चारों ओर घूमकर
मन्द पवन सब को सुना रहा है।
इस धन पर
सब का समान अधिकार है
सब जागें और इसका उपभोग करें।

वीणक्कम्पि मुरुक्कु, मुरुक्कु मल्-
प्राणप्रेयसि, पाटू मधुरमाय,
गानत्तिन्टे लहरियिलेन्निले
ज्ञानलिञ्ञलिञ्ञिल्लातयावट्टे।
जीवितत्तिन्टे नूलिट्टालेत्तात्त
भूविलेय्क्कतिलमुङ्ङि ञानेत्तट्टे।

हा, नियतितनानयाल् निर्त्तियो—
रा निलविट्टिळक्कात्त पुनुक्कळ
कोकिलगळनाळत्तालुञ्चत्तिल्
कूकिप्पाडुम्नितेन्तिनेनिल्लात।
पारत-न्त्र्यत्तेयानन्दम् स्पर्शिक्के—
प्पारमुण्टायोरस्वाम्यमाय् वराम्।

तुळ्ळिटुन्नू वेळिच्चम् कुटिच्चल-
तळ्ळिटुन्न मदत्ताल् मलरवळ,
पुञ्चिरि तूकि निल्क्कुम् पवलिटे
कुचिताळकमाक्कुम् निपलुकळ
सचलिप्पिच्चु सीलक्कातिपूण्टिता
सचरिप्पू विलासि मन्दानिलन।

मेच्चसिलुम्पल पूवच्चु तुन्निच्च
पच्चप्पटटुटयाटयणिञ्ञिता,
कोमळागत्तिलावेयकारणम्
काळ्मयिर्मुळ पूण्टु मदाकुलम्
काननस्यलि निल्पू विहगम-
स्वानताले चिरिच्चु विलुक्किले।

मोटक्कुपल

अपनी वीणा के तार
छेड़ो उस पर मधुर-मधुर तान,
गीत की खुमारी में
विलीन हो जायें
मेरे भीतर का 'मै'!
उसके सहारे पहुँचूँ
जीवन के सीमा रहित अतल-तल तक!

नियति की आज्ञा से
अविचल विवश खड़े रहनेवाले ये टीले
कोकिल के कण्ठों में
अप्रत्याशित कूक उठते हैं,
जब परतन्त्रता को छूता है
आनन्द अपने कर-स्पर्श से
तो भारी हलचल उत्पन्न हो जाती है,
यही कारण है शायद।

प्रकाश का पान कर
उन्मत्तता की तरंगों में
नर्तन कर रहे हैं सुमन!
खड़ी है दिन-लक्ष्मी मुस्कुराती,
बह रहा है यह रसिक पवन स-सीकार
उसकी कुंचित अलक-छायाओं को
संचालित कर के!

यह वनस्थली खड़ी है,
विविध पुष्प चिह्नों से सज्जित
हरित साड़ी पहनकर
अपने श्यामल शरीर पर
अकारण अंकुरित पुलक से सिहरी
पक्षियों के कलरव में
बारम्बार कलहास करती हुई।

लोकचित्तम् समाक्रमिच्चीटुम्न
शोक्योद्धाक्कळायुधम् वयूक्कट्टे !
जीवनेट ट मुरिवुणङ्ङीटट्टे
केवलमतिन् घाटुमे काणाते !
ई वसन्ततिलारानुम् दुःखिच्चाल्
दैवकोपमवनिल् पतियुमे !

—१९३४

दुनिया के दिल पर
हमला बोलनेवाले शोक के सैनिको,
अब हथियार रख दो!
भर जायें जीवन के सारे घाव!
मिट जायें उसके सारे क्षत-चिह्न!
करेगा दुःख यदि कोई इस वसन्त में
ईश्वर-कोप की गाज उसी पर गिरेगी।

—१९३४

साक्षात्कारम्

मुकळिलेक्काळ मुकळिलाय् वर्त्तिक्कुम्
सकलगमाम सनातनाकाशमे ।
परममेयमाय शुद्धमाय् मिन्निटुम्
परमलावण्यतत्वमे, वन्दनम् ।

गिरिपरम्पर दूरमोत्तरमुत-
मरितमु मुखम् नाक्कुन्नु निन् मुखम,
मरुकमळो तणुत्त कविळत्तटम्
मेरुकयिलेट्ट कोळ्मयिर क्कोळ्ळुन्नु ।
अक्लेयेक्काळकलेयाकुन्नु नी-
यरिकिलेक्काळरिकिलाणरमुतम् ।

ओरु हिमकणम मात्रमाणयया-
मिरविन सन्ततियाय ज्ञानेन्निलुम,
मयक्कुमहसिट्टयाकस्मिक-
नवकिरणमेन्नात्माविलेत्त्वे,
हृदयिलुण्डायिरुन्न तमोमय-
पटमतिनालुटनक्कनीटवे,
क्षणिकमाक्किलेन्तेट्टयिज्जीवित-
कणिकयिल् कण्टितडञ्येत्तने ज्ञान् ।
उलकम् कण्टू ज्ञान् कालमाम् पुलक्कूम्पिन्-
तलयिल् मिन्नुम तुमन्तुतुळ्ळियाय् ।

साक्षात्कार

हे सर्वव्यापक,
सर्वोच्च विराजमान,
अति अमेय, अनुपम लावण्य-सार,
परमशुद्ध, सनातन आकाश !
नमस्कार है तुम्हें !

ये पर्वत पंक्तियाँ
तुम्हारी दूरी से स्तब्ध
आश्चर्य के साथ मुह उठाये
तुम्हें ताक रही हैं।
किन्तु दूब,
तुम्हारे शीतल कपोल का स्पर्श माथे पर अनुभव कर
पुलकित रहती है।
कितना आश्चर्य है यह कि
तुम दूर से भी दूर हो
और निकट से भी निकट !

मैं हूँ एक क्षुद्र हिमकणिका,
अंध रजनी की सन्तान
किन्तु जब तुम्हारे अनुग्रह की नवल किरण
अचानक मेरी अन्तरात्मा पर पड़ी
और शीश का तमामय आवरण हटा
तो इस अपने क्षणभंगुर जीवन की कनी में
मैंने आप ही को देखा,
और देखा इस दुनिया को
बाल-रूपी दूब के सिर पर चमकनेवाली
शबनम के रूप में।

वळरुमत्मुतहृपडङळालुत्तळ–
प्पिळक्किट्टुमेट्टे मूक्माम् जीवनिल
क्किळरुमानन्दपारवश्यम पक–
न्निळ पुळकमुळकळणिकयाय् ।
निर्मिपमामानुभतियालात्माविल्–
क्कुमियुमानन्दवेलियेट्_टत्तिनाल
करकळोक्केयुम् मुङ्ङिय जीवित–
क्कदलु कण्टु ञानेकमाय, पूर्णमाय् ।

—१६३२

विस्मय और आनन्द के मारे
मैं शिथिल-सा हो गया,
और मेरे प्राणों में तरंगित होनेवाले
आनन्द की विवश हिलोरों में घुल मिलकर
यह धरती पुलक-कण्टकित हो गयी।
तब इस पल भर की अलौकिक अनुभूति से
आत्मा के भीतर उमड़नेवाले आनन्द के ज्वार भाटे में
मैंने जीवन-सागर को
सीमा विहीन, एक, अखण्ड और परिपूर्ण देखा।

—१९३२

ओमन

ओमने, निनेप्परिचयमिल्लात–
यी महाविश्वत्तिलारुमिल्लरुतम !

रावित्ले निनेयेट्टुम्मरत्तेत्ति
मेविट्टुम नेरमा वेळिळनक्षत्रवुम्
पुचिरि तूकुन्न नीयुम् परस्परम
कण्चिम्मियेन्तो परवतु कण्टु ञान ।
पैटियाणक्कोञ्चनुजन् विळिञ्चुको–
ण्टोटिवन्नळ्युमो वण्णिन् वेळिञ्चमे !
प्रेमत्तिनेत्तने कावलाय नित्तुवेन
ओमनयेन्डने पोमत्तु काणणम् ।

२
ओमने निनेयेट्टक्कान वीतिवन्नात–
यी महाविश्वत्तिलारुमिल्लरुतम !

अम्पिळि वन्नेयुम तापत्तु वेन्चता,
कुम्पिटट्टुनिल्पू चिरिञ्चुकोण्टम्वरम् ,

मुन्ना

कितना आश्चर्य है, मुन्ना !
इस विशाल विश्व में
कोई भी तुझ से अपरिचित नहीं !

सवेरे
जब तुझे गोद में लेकर
मैं बरामदे में खड़ा था तो मैंने पाया
तू मन्द हास कर रहा है और
प्रभात का तारा आँखें भपका-भपकाकर
तुझ से वार्तालाप कर रहा है।
मुझे डर है
कहीं वह तेरा छोटा भाई
बुलाकर न ले जाय
तू जो मेरी आखों का तारा है !
मैं अपने प्रेम को ही क्या न बना दूं
तेरा पहरेदार ?
फिर देखूं कैसे मेरा मुन्ना कहां जाता है।

२
कितना आश्चर्य है मुन्ना !
इस विशाल विश्व के भीतर ऐसा कोई भी नहीं
जो तुझे गोद में उठा लेने का तरसता न हो !

यह अम्बर
चन्दा को गोद से नीचे उतार कर
सिर झुकाये मुस्कुराता खड़ा है,

चेंकुरुन्नगुलिकोष्टलिवोटिता
निन् कुळिर् नेटि्ट तलोट्टुनु पोनवेयिल ,
फुल्लपुष्पत्ताल् चिरिप्पिच्चुकोण्टिळम्–
चिल्लियाम् कै नीट्टिनिल्क्कुनु मल्लिक ।

निन्ने ममत्वम्वरट्टु मुत्तकिक ज्ञान
मने नोमिक्कयाणेंकिल् क्षमिक्कुक ।

—१९३३

यह सुनहली धूप
निज कोमल करागुलियों से
तेरा ही मृदुल ललाट सहला रही है,
यह मल्लिका खडी है
नवल शाखा करा को फैलाये तेरी ओर
ओर दिखाकर खिले हुए फूल
बहला रही है तुझे।

मुन्ना, क्षमा करना मुझे
यदि म ममता की डोरी में कसी गाठ लगाकर
तुझे व्याकुल करूँ।

—१९३३

जीवितम्

१

जीवितपतगमे
देहपञ्जरवद्धम्
नी विषादिप्पू पारम
पारत प्यतेन्चोल्लि
पेलवञ्चिरकिने
विटर्त्तान पोलुम तीरे
मेलल्लो चुपतेपुम
विधि तन्नपिमूलम् ।
कालम् निन् नेरे नीट्टि-
वलिच्चु नितीटनू
लीलयुक्काम् सुखत्तिटे
पचिपक्कतिर वकुल ।

वल्ल नेरत्तुम् कोत्ता-
नेत्तियाल् पतिरल्ला-
तिल्ल , नीयारेट टेत्र
वेदन विपूड् डील ।

द्योविनैनिकनाविनाल्
चित्रणम् चेय्तुम कोण्टु
मेविटुम निनिल्त्तावुम
कनिवालनिवायम्
मरणम् पेट्टेनेत्ति
मोचनम् नल्कुम्बेङ विल्,
परमानन्दम् पूण्टु
नन्दि चोल्लुक नल्लू ।

ओटक्कुपल

जीवन

१

हे जीवन विहग,
देह के पिंजड़े में बद्ध
अपनी परतन्त्रता के बारे में सोच-साच कर
कितना दुःख भोग रहे हो तुम!
नियति की छद्म ने
घेरा है तुम्हें चारों ओर से
तुम अपने पंख-पुटों को खोलने में
असमर्थ हो गये हो नितान्त!
यह लीलालोलुप काल
तुम्हें ललचाने के लिए
सुख की विद्रुम बालियाँ
तुम्हारी ओर बढ़ाता है।

चुग भी पाते हो यदि कभी
तो मिलती है तुम्हें निरी भूसी ही
उसकी अनी चुभ जाने का
कितना दर्द सहा है तुमने!

स्वप्नों में स्वर्ग का चित्र बनानेवाले,
मृत्यु यदि करुणा से भर कर
तुम्हारे पास आ जाये और
पिंजरा खोल कर तुम्हें मुक्त कर दे
तो तुम उसे सहर्ष धन्यवाद दोगे।

पिटयुन्नतेंतिनु
पिन्वलिप्पतेन्तिन्नी–
त्तटविल् स्वयम् पर–
डडीटवान् मोहिक्कुन्नो ।

२

जीवितम मार्गत्तिटे
मुळ्ळ्वेटियाले पञ्च
पाविय तारुण्यत्तिन
कुनिलुम् चेरुविलुम्
मेञ्ञु मेञ्ञाचारूप–
मगनण्णयिल्क्कूटि–
प्पान्नुपान्निळ सनि–
क्किरळानारभिक्के,
म्रणितम् मुखम नावाल्
नक्किक्कोण्टनुभूत–
क्षणिकसुखप्रास–
रोम थपरायणम्
तळ्ळु किटक्कयाम
तन् वयर निरञ्ञालुम्
वळन विसप्पोटे
राजमार्गत्तिन् वक्किल् ।
एवनुम् चरिक्कुवा–
नुळ्ळोरा मार्गम् दीन–
भावमाय् निरीक्षिक्के
निपलल्लातिल्लेङ्ङुम् ।

भीदमाम् चेन्नायल्ल,
पिन्पुरत्तिटय टे
पादवि यासम् केळ्पू,
भयमेन्तिनाणावो ।

ओटक्कुयल

मगर तुम क्यों इस तरह तड़पते हो ?
क्या पीछे की ओर ही मुड़ना चाहते हो ?
क्या तुम इस कारागार में ही
भयभीत दुबके रहना चाहते हो ?

२

यह जीवन चरता रहा
भोग की कँटीली झाड़ियों से लहलहाते
तारुण्य के टीलों में और तराइयों में,
लगाता रहा दौड़ आशा की मृगतृष्णाओं में,
और, जब यह धरित्री दिखाई देने लगी तमिस्रा-सी
जीभ से चाटता हुआ
अपने व्रणित मुख को
जुगालियाँ करता हुआ
भोगे हुए क्षणिक सुखों की,
प्रतिपल बढ़नेवाली भूख से तपता
भरपेट खाने पर भी,
यह राजपथ के किनारे
पड़ा हुआ है थक कर चूर।
यह पथ
है सब के प्रयाण का,
किन्तु दीन दृष्टि से देखने पर
सब जगह केवल परछाइयाँ ही दिखायी देती हैं।

क्या तुम डरते हो
पीछे सुनाई देने वाली आहट से ?
यह पगध्वनि नहीं है भयङ्कर भेड़िये की,
बल्कि है गड़रिए की।

आलयिल् निनुम निन्ने
मेयुवान् विटटू काल,–
त्तालयिल् पूक्कानन्ति–
यूक्केन्तिनु मटिक्कुन्नु ?

—१९३४

सुबह को तुम्हें थान से ला कर
छोड़ गया था चरने,
तो अब क्या संकोच करते हो शाम को
लौट चलने में ?

—१९३४

सूर्यकान्ति

मन्दमन्दमेन् तापुम्
मुग्धमाम् मुखम् पोक्कि-
स्सु दरदिवाकरन्
चोदिच्चू मधुरमाय्
"आर नीयनुजत्ती ?
निर्निमेषयाय् एन्तेन्
तेरु पोकवे नेरे
नोक्कि निल्क्कुन्नू दूरे ?
सौम्यमाय् पिन्नेप्पिन्ने
विटरुम् कण्णाल् स्नेह-
रम्यमाय् वीक्षिक्कुन्नू
तिरिञ्ञु तिरिञ्ञेन्ने ,
चल्लतुम् परयुवान्
आग्रहिक्कुन्नुण्टावाम्
इल्लयो वेट् टाणूहमेङ्किल्
ञान् चोदिच्चीला ।"

ओनुमुत्तरम् तोन्नी-
लेडने तोन्नुम् ! सम-
सन्नुतन् सवितावे-
ङ्ङेङ्ङु निग धम् पुष्पम् !
अयमाविने स्नेहि-
क्कुन्न धिक्कारतिन्नु
'सूर्यकान्ति' येन्नेन्ने-
प्पुच्छिप्पताणी लोकम् !

ओटक्कुषल

सूरजमुखी

मेरा झुका हुआ चेहरा
धीरे धीरे उन्नमित कर
मनोहर दिवाकर ने
मधुर स्वरों में पूछा
"कौन हो तुम बहन !
क्यों दूर खड़ी रहती हो,
अनिमेष नयनों से देखती
जब मेरा रथ जाता है ?
फिर देखती हो मुड़-मुड़ कर
सौम्य स्निग्ध हो,
कहना चाहती हो कुछ ?
अगर नहीं, और मेरा अनुमान ग़लत है
तो समझो मैंने पूछा ही नहीं"

मुझको कोई उत्तर नहीं सूझा,
सूझेगा भी कैसे ?
कहाँ मैं निगन्ध सुमन,
कहाँ सविता सवस्तुत !
मेरी तो धृष्टता यह है
कि मैं सूर्य से प्रेम करती हूँ
इसी से 'सूरजमुखी' नाम देकर
संसार मेरी हँसी उड़ाता है !

परनिद वीशुन
　　　　वाळिनाल् चूळिप्पोका,
परकाटियिलच्चेन
　　　　पावनदियस्नेहम् ।
घोरमामुखम तने
　　　　नोक्किनिनु ञान , गुणो-
दारनाम अविटत्ते-
　　　　य्ककेन्नु वोनियो हृत्तिल् ।

भावपारवश्यत्ते
　　　　मरय्क्कान् चिरिप्पति-
नावतुम् श्रमिच्चालुम्
　　　　चिरियाय् तीर्नीलल्लो ।
मञ्जुतुळ्ळियाणेन
　　　　भाविच्चेनान दाश्रु,
माञ्ञु पोम् वषिळत्तुटु-
　　　　प्पिळवेयुलिलेश्नातॅन् ।
वेपमुण्टायगत्तिल्
　　　　कुळिर कोटि टनाल्, लज्जा-
चापलत्तालल्लेशु
　　　　नटिच्चेनधीर ञान् ।
क्षुद्रमामिप्पुष्पत्तिन
　　　　प्रेमत्तेमणिच्चालो
भद्रनाद्देवन् नि द-
　　　　नीयमायगण्यमाय् ।
मामकप्रेमम नित्य-
　　　　मूकमायिरिक्कट्टे,
कोमळनविटत्त-
　　　　तूहिच्चालूहिक्कट्टे ।
स्नेहत्तिलुनिनिल्लल्लो
　　　　मट टोनुम् लभिच्चीटान् ,

किन्तु, पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ
पवित्र दिव्य प्रेम
पर निन्दा के खड्ग प्रहार से
क्या संकुचित हो सकता है ?
मैं उस सुधीर मुख की ओर
देखती रही—
न जाने क्या सोचा होगा
उस गुणोदार ने मन में !

मैंने अपनी भावनाओं की विवशता को
भरसक छिपाने का प्रयत्न किया,
किन्तु न दे सकी उन्हें
मन्दहास का रूप ।
अपने आनन्दाश्रुओं को
हिमकणिका बनाने का बहाना किया मैंने,
और आशा की—
कि प्रभात की धूप में घुल मिल जायेगी ,
कपोलों की अरुणिमा ।
मेरा अंग-अंग काँपा
तो मैंने बहाना किया—
काँप रही हूँ मन्द पवन के कारण,
लज्जा चापल्य से नहीं ।
कहीं वह महा पुरुष न समझ बैठे
इस क्षुद्र सुमन के प्रेम को
निन्द्य और नगण्य
इसलिए मेरा प्रेम
सदैव के लिए बना रहे मूक ।
वह सुन्दर यदि स्वयं ही
अनुमान कर पाये तो पाये ।
प्रेम का नहीं है कोई प्रतिदान,

स्नेहत्तिन् फलम् स्नेहम ,
ज्ञानत्तिन फलम ज्ञानम् ।
स्नेहमे परम् सौख्यम,
स्नेहभगमे दु खम्,
स्नेहम मे दिक्कालाति–
वर्त्तियाय ज्वलिच्चाव ।
देहमित्रत्तिन चूटिल्–
इहिच्चालइहिक्कट्टे
मोहनप्रकाशमे–
घात्मावु चुम्बिच्चल्लो ।

मामकमनोगत–
मविटत्तरिञ्जेयो ,
पोमलवद्देहत्तिन्
मुत्तुम् विवणमाय् ।
पळरेप्पणिप्पेट्टा–
गेन्ङेमेलुन्निझुम देवन
तळरुम् सुरक्तमाम
कयेट्टुत्तु मूनम ।
अक्षरम् पुरप्पेट्टी–
लन्यो यम नोक्की ग्गडळ ,
तत्क्षणम् करम्पिरा–
वेन्तिनङ्ङोट्टुम्पवेत्ति !
नन्दि काणिप्पानेन्टे
गिरस्सु कुनिञ्ञतु
मन्दितोत्साहन् पोवे–
क्कण्टिरिक्किल्ला देवन् !
निद्रयिल्लाञ्ञारक्त–
नेत्रनाय् पुलर्च्चेयक्कु
हृद्रमनेत्तुम् , नोक्कु–
मिप्पुरमुट टत्तेने ,

ज्ञान का ज्ञान ही है फल।
प्रेम ही परम सुख है
प्रेम भंग ही है परम दुःख
मेरा प्रेम, दिक्काल से परे
सदा ज्वलन्त रहे।
अगर उसकी अग्नि शिखा में
मेरा शरीर दग्ध हो जाये
खाक हो जाये।
कम से कम मेरी आत्मा ने
उस मोहन प्रकाश को चूम लिया,
यही काफी है।

क्या वे मेरे मनोरथ को भाँप गये?
लौटने की वेला में उनका भी मुख विवर्ण बन गया।
यत्न से ही तो प्रभु
मेरे कंधे पर से
अपने आरक्त शिथिल हाथ हटा पाये,
मैं भी भाँप गयी।
देखते भर रह गये दोनों,
मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला।
तभी वह कलमुँही रजनी
क्या हमारे बीच में आ गयी?
कृतज्ञता से मैंने अपना सिर झुकाया,
मगर मनोमोह प्रभु ने जाने की जल्दी में
शायद ही उसे देखा हो।
कल प्रातःकाल
इस प्रांगण में
उन्निद्र आरक्त नयन
मेरे प्रभु मुझे खोजेंगे।

विळरुम् मुखम वेगम ,
तेक्कन् काट टटिच्चट–
निळमेल किटक्कुमेन्
जीणमगक्म् काणूवे ।
क्षणमामुखम् नील–
क्कारुरुमालालोप्पि–
प्रणयाकुलन नाथ–
निड डने विपादिक्काम्
"आ विशुद्धमाम मुग्ध–
पुष्पत्तेक्कण्टिल्लेंक्किल !
आ विधम परस्परम
स्नेहिक्कातिरुन्नेंनिल !"

—१९३२

उनका मुह हो जायेगा विवण
मेरे जीण शरीर को देख कर
जिसे लुण्ठित कर दिया होगा धरा पर
दक्षिणी पवन के झकोरे ने।
तव प्रणय विह्वल मेरे प्राणेश्वर
पोछ लेंगे अपना मुख काली बदली के रुमाल से
और कहेंगे विपण्ण हो कर—
"काश, न देखा होता यह मुग्ध सुमन
न किया होता प्यार हम दोनो ने।'

—१९३२

स्तोमत्तेयेत्तियुक्कुम्न
राप्पकल्प्परावुक्ळ
वानिलेप्पोपुम् काणाम्
सचरिप्पतायिट्टु ,
ञानिवट्टयेब्वधि–
च्चोट्टुवानाशिक्कुन्नु ।

पलरेप्पाणिग्रहम्
चेयि्तरियुक्कुनू पण्टे ,
पलर्मा वरत्तिलु––
मिप्पोपुम नटक्कुनू
पतिगेहत्तिलुच्चेरान्
यात्रयाकलुम बधु–
सतितन् निरर्थाश्रु–
ब्रपवुमिटयि्क्कटे ।
कुटिक्कत्तिन् श्रेपम्
ज मगेहत्तेक्काणा–
निटयाक्कुमेकुन्नो–
लुग्रशासननेन्नो !
हा ! तिरिच्चविटेनि–
न्नागमिक्कुमिल्लाट्–
मोतिटान् ,—अन्त पुरम्
नाकमो, नरकमो ?

३

मामकहृदन्ततिल्
भाट टोलिक्कोण्टीटुन्नु–
ण्टामन्दम् समीपिक्कुम्
पतितन् पदन्यासम् ।
काल् विनायिककूटि
ञान् पिरन्नोरी वीट्टिल्
मेविटान् कपिर्ल्लक्किल् !—
इन्न येगमो यात्र ।

ओटक्कुपत्

आसमान में हर घड़ी उड़त देखती हूँ
उस क सन्देशा को पहुँचानेवाले
दिन रन रूपी कपाता का
मैं उन को पकड कर बाध रखना चाहती हूँ ।

वे कर चुक है अनेक पाणिग्रहण,
अब भी
अनक घरा में हो रहे हैं
पति गेह चलने के विदा-आयोजन,
बन्धु-बा धवा की निरयक अश्रुवर्षा ।
वह ले जाता है तो फिर
मायके आने का अवसर ही नहा देता
क्या इतना कडा है अनुशासन उसका ?
हाय
काई भी तो यहाँ से लौट नही पाती
कि सुनावे उसका अन्त पुर स्वग है या नरक !

प्रतिध्वनित हो रहा है—
मेरे अन्तरग में
मेरे पति का पदन्यास
जो आ रहा है मेरी ओर धीरे-धीरे मुस्कुराता हुआ ।
काश !
म ठहर पाती एकाध घडी और इस घर में
जहाँ मने जन्म लिया है—
क्या इतनी जल्दी यात्रा करनी पड़ेगी ?

मेनि मे विरयिक्कल्ल,
चुण्टिण चलिक्किल्ल,
म्लानि वन्नुदिक्किल्ल,
विळरिप्पोकिल्लास्यम्,
समयम् वरुन्नेरम्
सवशक्तमाक्कैयिल्
ममजीवितम् सुन्द्रम्
सस्मितम् समर्प्पियक्कुम ।

४

स्नेहपूर्णमायेते
नोक्कि वीर्प्पिट्टुम् जन्म-
गेहमे, पोङ्डनिल्ल
यात्र चोदिप्पान् शान्म्,
इन्नु निन्सौन्दयत्ते-
पूर्णमाय् ज्ञान् काणुन्नि-
तिन्नु निन् प्रेममूलम्
मन्मनम पिळरुन्नु ।
विरहत्तिलल्लाते,
लावण्यम समग्रमाय्
निरवद्यमायिट्टु
काणुवान् कयिवील ।
प्रेमत्तिन् तिळक्कम् क-
ण्टतु चेन्नेट्टुक्कायुन्न ,
भीममाम् खड्गत्तेक्काळ
मूर्च्चयेरियतत्रे ।

५
उद्रसम् निपलुव-
ळयोयम् पुल्किप्पुल्कि
निद्रचेयतीटुम् पच्च-
प्पट्टाम्न पून्तोट्टत्तिल्

आटकुपल्

नहीं, कम्पित नहीं होगा मेरा शरीर,
चंचल नहीं होंगे मेरे अधर,
ग्लानि नहीं आयेगी मुझे,
और मेरा मुख भी होगा नहीं विवर्ण,
जब मुहूर्त आयेगा
उन सशक्त हाथों में
सस्मित समर्पित कर दूंगी
मैं अपना जीवन।

४

मेरे जन्मगृह!
मेरी ओर देख कर तुम भरते हो आहें
स्नेहातिरेक के कारण!
तुमसे विदा मांगने
नहीं निकल रही है मेरी आवाज,
हाय! आज मैं देख पायी
तुम्हारे सौन्दर्य की समग्रता का,
और आज होता है मेरा मन विदीर्ण
तुम्हारे प्रेम के कारण।
केवल विरह की वेला में ही
दिखाई देता है लावण्य, समग्र और निरवद्य।
न जाओ प्रेम की इस दमक पर,
न करो उद्यम उस लेने का,
असल में वह
भयानक तलवार से भी अधिक तेज है।

५

इस रम्य उद्यान में
जहाँ हरी-हरी मखमल के ऊपर
परस्पर आलिंगनबद्ध परछाइयाँ
रंग विमुग्ध सोना रहती हैं

तावुमौत्सुक्यत्तोटे
नाळेयुम पुलर्न्नयृक्कु
पूवुकळ् जलाद्रमाम्
कण्तुरन्नय्यो ! नोक्कुम ।
अत्र वनितियक्कारु–
ण्टवयाय् ससारिप्पा–
नेत्रयुम् मेलिन्ञु नी–
ण्टुळ्ळोरु रूपम् सौम्यम् ।
अपलालव पर–
ञ्ञीटुमयोयम् नोक्कि —
"निपलायिरन्नेन्नो
स्नेहाधारमा रूपम् !"

—१९३१

वहाँ देखेंगे सुमन
अपने जलाविल नयन खोल कर
कल भी प्रातःकाल
उनसे बातें करने के लिए
यहाँ आ बैठता था
एक सौम्य कृश-दीर्घ-आकार,
और तब बड़ी विपन्नता के साथ
वे एक दूसरे को देखेंगे और कहेंगे—
"क्या यह स्नेहाधार आकार
मात्र एक प्रतिबिम्ब था ?"

—१९३१

अन्वेषणम्

कवि चोदिच्चू "कोच्चु-
तेन्नले भवानारे-
क्कवियुम् प्रेमम् मूलम
कम्पलानन्वेषिप्पू ?
इल्ल विश्रममाय-
निल्ल मट टोह चिन्त,
अल्लिलुम् पकलिलुम्
भ्रान्तनेप्पोलोटुन्नु ।
कोञ्चलर सवोमाद-
चापलम् कण्टिट्टावाम्
चञ्चलम् पकञ्चलम्
नोक्कुन्नु मेलुम् कीयुम् ।

"प्रेमत्तिन् पेरोमल्ली
सादिप्पतव्यक्तम् नी,
प्रेमत्तिन् लहरियाल
कालुरम्मकाम्कल्लल्ली ?
अन्मनु लभिक्कयि-
ल्लीदृग्गम् दिव्यस्नेह-
जयमुमादम् , सत्यम्
आनितिलसूयालु ।
तिरयू ! वेगम् तोप,
तिरयू ! मुळकाटिन्
चिरियेग्गणिक्काते ,-
इल्लतिमन्तस्सारम् ।"

अन्वेषण

कवि ने प्रश्न किया—
"हे तरुण पवन,
तुम किसे खोज रहे हो
सीमातीत प्रेम से अधीर हो कर ?
तुम्हें विश्राम ही नहीं,
न है कोई और चिन्ता
बस दिन रात दौड़ते रहते हो
उन्मत्त की भाँति।
शायद तुम्हारे उन्माद-चापल्य को देख कर ही
ये चकित, तरल नन्हें सुमन
गर्दन उठाये कभी ऊपर निहारते हैं,
कभी नीचे, विभ्रान्त।

"यह प्रेम का नाम ही है
जो तुम में मर्मरित हो रहा है,
यह प्रेम का ही नशा है
जिसके कारण तुम्हारे पाँव डगमगाते हैं,
ऐसा दिव्य प्रेम-जन्य उन्माद
और किस को मिलेगा !
सच तो यह है
कि मैं तुम से ईर्ष्या कर रहा हूँ
खोजो मेरे मित्र खोजो—
इस वनी-कन्ध्य की हँसी की परवाह न करो
अन्त सार ही कहाँ है इस मासली में।'

उदयनिश्वासत्तो–
टुञ्चरिञ्चितक्काट् टु
सदयम् मदगत्तें–
त्तटविस्सगदगदम्

"श्रीमन्, निन्ननुमानम
तेट टल्ल , चुट टुन्नू ञान्
प्रेमसवस्वत्ति टे
मुखदर्शनत्तिन्नाय् ।
चिरकालमाय् ञाडळ
वेर पिरिञ्जिट्टेन्नालूम
स्मरण नट्टुकुनि
न्नेन्नेयिट्टूलट्टन्नू ।
ञानुणमप्पोळादि
म्युलर कालत्तिप्पारुम
यानुमन्योन्यम् नोक्कि
इन्दोवमूकमाय् निल्पाम् ।
मामकवक्षस्थलम्
इू यमामृक्वण्टू , पोया
ळोमलाळम्यो ! राग
विश्वामपरीक्षायम ।
वेणियन्नोन्नो रण्टो
वेणतारम दारप्पू
वेणियिक्ल् निल्न नु
वीणिरुन्नितु पोके
कळनूपुरारवम्
केटटु ञानय्यो, पक्षि
गळनिगळनाद
मेन्नल्लो विचारिच्चु !
पुलरिन्तुटुप्पेनु
चिन्तिच्चु पोयि पाद-
मलरिन्नलक्तक
रक्तमाम् पाटन्नेरम् ।

पवन ने
मेरे अंगों को दयापूर्वक सहलाया
और उसास भर कर कहा—

"श्रीमन्
ठीक है आप का अनुमान,
मैं घूम रहा हूँ
प्रेम मूर्ति का ही मुख-दर्शन पाने के लिए।
चिरकाल से हम बिछुड़ गये हैं,
किन्तु स्मृतियाँ बीच-बीच में आ खड़ी होती हैं
और मुझे सताती हैं।
जब मैं आदिम प्रभात में जगा
तो देखा
यह जगत और भूतल
एक दूसरे की ओर निहारते
क्षोभ मूक खड़े थे।
मैंने अपना वक्षस्थल शून्य पाया
वह चली गयी थी
प्रेम की दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए।
हाँ,
एकाध तारक-मन्दार-सुमन
उसकी वेणी में से
गिरे पाये गये।
मैंने उसके नूपुरों का नाद सुना था
किन्तु हाय! मैंने समझा
उसे
पक्षियों के गले से विनिर्गलित कलरव।
पदकमलों के अलक्तक चिह्न को
मैंने समझा
प्रभात की लालिमा

कनकाङ्गुलीयक
मूरियिट्टिरुन्नत
ग्निनबिम्बमाणेतु
ञान विचारिच्चु मूढन्
वानिलोम्मयक्कायिटटु
पोय पटटुरुमालु
वारिदशकलमे
घोर्तु ञान् मूढिच्चील ।
पाटलम् पारावार-
मत्रोत्तु पादारक्त
प्याटणिच्चुळिविरि-
सलप्पिल् चुम्बिच्चील ।

अन्नु तोट्टन्वेषिप्पू
नालु दिक्किलुम तेण्टि
येन्नुटे कयमर-
न्ना रसस्वरूपते ।
कण्टवरिल्ला पारिल
कण्टुवेन्नुरप्पवर
कण्टवरल्ला , काणान्
ञान् स्वयम् यतिक्केणम् ।
आरे ञानन्वेषिप्प
ता प्रेमपुञ्जम् तते
तीरेमिल्लेन्नोतुन्न
नावेनिक्कविश्वास्यम् ।

आ मुग्धमुल्लप्पूक्कळ
मुक्तन्न नेरम ञान
आ मुग्धमनोहर
सौरभम् स्मरिक्कुन्नू ।

ओटक्कुपल

वह छोड कर गयी थी कनकांगुलीय
ताकि उसे मै पहचान सकूं
किन्तु मैने उसे समझा सौरबिम्ब।
वह अपनी निशानी के रूप में
नभ में छोड गयी थी रेशमी रूमाल,
किन्तु मैं मूढ
समझ बैठा उस को बादल का टुकडा।
हाय! वह छोड गयी थी सिकुडे हुए कालीन का अचल
अपने अलक्त चिह्नो से अंकित
समझ बैठा उसे मैं गुलाबी-सागर,
चूम भी न पाया उसे।

उसी दिन से
होकर आत्मविस्मृत
चारों दिशाओं में घूम फिर कर
उस रस स्वरूप की खोज कर रहा हूँ।
किसी ने नही देखा है इस ससार में उसे,
जो कहते है कि देखा है
नहीं देखा है उन्होंने भी,
अत देखने का यत्न मुझे स्वयं ही करना होगा।
मैं जिसे खोज रहा हूँ
उसी रसमयी प्रेममूर्ति का
नितान्त मिथ्या बतानेवाली यह रसना
मेरे लिए अविश्वास्य है।

जब मैं मुग्ध सुन्दर लिकाओं को चूमता हूँ
तो याद हो आती है
उस मनहर मुग्ध के सौरभ की

ओटक्कुषल

चोलयिल् सतप्पनाय्
चुण्टुप्पिक्वे स्निग्ध
लोलमक्वपोलत्तिन
तणुप्पु ञानोर्म्मिप्पू ।

मानसम स्मरणया
लु मत्तमाविल्लल्लो
ञानलञ्ज वेपिक्कु
मोमल मिय्ययार्णकिल् ।

वल्लि तन परिमदु
पल्लवक्कत्तण्टि मे
तुल्लसनीहारत्तू
वेणविरिसिक्टक्कमेल
इल्ल मे मनश्शान्ति –
योमलिनरिक्तु
वल्ल कालत्तुम् चेल्लाम—
ईयाशयाणेन गक्ति ।

क्षीणनाय निशीथत्तिल
वीतबोधनाय काट्टिल
वीणु पोवुम् ञान काणा
तोमलाळट्टत्तेत्तुम
शातळकरत्तिनाल
तटवुम् पिटञ्जेल्क्कुम्
प्रीतनाय क्षणत्ताल ञान—
विलपिक्कुवान् मात्रम् ।

उरङ्ङुम् वटलिने
च्चेनुर्णत्ति ञान तोपर
परञ्ञु तरणम
ग्गोमनेङ्ङेनाय चाल्ने,

जब मतृष्ण मैं परने की ओर अधर बढ़ाता हूँ
तो मुझे उस स्निग्ध मृदुल कपाल की शीतलता
याद हो आती है।

जिसकी खोज में मैं इतना विकल घूम रहा हूँ
वह मेरा प्रेम-पुंज अगर मिथ्या है
तो क्या मेरा मन
उस की स्मृतियों में इतना उन्मत्त हो जाता है ?

मुझे कहीं भी तो शान्ति नहीं मिलती—
न लतिकाओं की परिमल बाहुओं में
न कमनीय धवल-नीहार शय्या में,
किसी दिन मैं उसके समीप पहुँच जाऊँगा—
इसी आशा का आलम्बन मुझे बल दिये हुए है।

निशीथ में जब नितान्त क्लान्त हो कर
मैं वनान्तर में असहाय गिर पड़ता हूँ
तब वह लुक छिप कर—
आती है मेरे समीप,
सहलाती है शीतल करों से,
और प्रेम गद्गद मन से तब
पल भर में मैं जाग पड़ता हूँ
केवल प्रलाप करने के लिए।

जब मैं
जाकर सुप्त सागर को जगाता
और गिड़गिड़ा कर पूछता—
'मित्र, कहाँ है मेरी प्रिया ?

दीननामी ञान् श्रान्त
नाणेनु चिन्तिच्चावाम्
फेनप्पल्लिरुम्मिक्को
ण्टुरक्केगर्ज्जिक्कुनु ।

पादपत्तल पिटि-
ञ्चिटप्पवु कुलुक्किञ्ञान्
पारमुल्ककण्ठामार
मार्नेन्न चोदिच्चील ।
कम्पितागमाय् अय्यो
कण्टिल्लयेनल्लाते
वेम्पिटुम् मरम् तरुन्निल्ल
मे समाधानम ।

ध्याननिश्चलम् निल्कुम्
पवतम् चूण्टिक्काट्टि
वानिन् नेक्कडुत्तिडूल
वीणु ञान् विलपिक्के
तानरिञ्ञिल्लेन्नपोळ
सुव्यक्तमाक्की नाकम्
मौनत्ताल् , निरन्तमो
दुस्सहम विरहम् मे ।"

—१९३१

तो शायद
वह मुझे दयनीय और पागल समझ कर
फेनो के दांत भींच कर
उग्र स्वर से गरज उठता है।

तरुओं के शीश झकझोर झकझोर कर
कितनी ही बार मैंने उन से पूछा,
किन्तु विह्वल कम्पिताग तरुवरों ने
सदा केवल यही उत्तर दिया—
"आह, नहीं देखा है।"

उन की गोद में गिर कर
जब-जब मैंने विलाप किया
तब-तब ध्यानमग्न निश्चल पर्वतों ने
आकाश की ओर केवल संकेत भर कर दिया!
गगन ने अपने मौन से यह स्पष्ट किया
कि नहीं देखा उसने ।
"क्या मेरे इस दुस्सह विरह का
कहीं कोई अन्त ही न होगा?"

—१६३१

भृ गगीति

१

अगसौभगम् कणि–
काणुवानिल्लात्ताए
भृगमाणेन्नालेन्ता–
प्पूविनु ज्ञाने जीवन ।
प्रेमत्तिन चिल्लिलक्कूटि
नोक्कुम्पोळेतुम् तानुम्
कामिनीयकत्तिट्टे
कळिवीटायित्तने ।

२

नेट्टुवीर्प्पिनाल् चुट ट ुम्
नेत्त सौरभम् वीशि
च्चुट्टुमुच्चवेयलत्तुम्
चूटरिञ्ञाटातोमल्
चेवियात्तु निन्नीट्टुम्
मलसमागम् मुन्नि–
ट्टविटे प्रहिप्पिक्कु–
मेन मूळिप्पाट्टिन्नायि ।
अरिकेच्चरिक्कुम्पो–
ळटे काट टेट टालप्पोलुम्
विरियुम् मुखम् येग–
ममवम् येपम् मालुम् ।
ज्ञानट्टुत्तणञ्ञाविल्
मिण्टुविल्लटविकनवा–
प्टानफम्स्मितम, निल्कुम्
वण्ट भाववुमेये,

भृंगगीत

१

मैं हूँ भृंग
अंग-सौन्दर्य जिसे छू तक नहीं गया,
फिर भी,
उस फूल के लिये मैं ही हूँ सर्वस्व प्राण !
प्रेम के चश्मे से देखा जाय
तो सब कुछ ही प्रतीत होने लगता है, लावण्य का लीलाभवन-सा ।

२

जलती दोपहरी में,
भूल कर आतप-दाह
फैलती हुई अपनी झीनी सुरभि धारा और
लम्बी-लम्बी उसाँसों से—
खड़ी रहती है मेरी प्रिया कान लगाये,
मेरे आगमन की पूर्व-सूचना देने वाली
मेरी गुनगुनाहट के लिए ।
जब मैं उस के पास से निकल जाता हूँ
तो खिल उठता है उसका मुख
मेरे शरीर की हवा से,
काँपने लगता है उसका अंग-अंग
किन्तु जब मैं पहुँचता हूँ सन्निकट
तो बोलती कुछ भी नहीं
खड़ी रहती है चुपचाप मुस्कान रोके
मानो देखा ही नहीं उसने मुझे ।

प्रणयाधनायृत्तीनु
सौरभम् वीशुम् गात्रम्
पुणरिल्ल ञान् गाढम् ,
पूवल्ले, पतिञ्चालो !
उत्तरम् तराञ्जालु–
मोमनप्पूवेकाम्र–
चित्तमाय् वेळक्कुम् मारिल
ञ्चुम्बिञ्ञु ञान मनिक्कै ,

अरिकत्तुनिन्नेट्टान्
पाकुवान् पुरप्पेट्टाल्
तिरियै चेल्लुम याम
चाल्लान ञान् नूरावत्ति ।
कालमेन्नोनिल्लेन–
ल्लुम्र भास्कररश्मि–
ज्वालयेक्कु चूटिल्लल्पम्
मट्टळ तद्दलिल्च्चर्माल् ।

४

एतुमम्मालुम् पेट्टे–
नेतारु पूविन् कण्णुम्
पोसुवान् मटिक्कास–
निर्विवेकयाम् सन्ध्य !
हा, निलम् पतिञ्चीटुम्
तेक्कनूकाट टटिञ्चाराल्,
वानिलामलिन् नित्य–
चतयम् मरञ्जुपाम् ।

ई विचारम, म्रालुम्
चिलप्पाळ्प्पणम् पोक्कि–
क्कीविनम्पितमाक्कि–
त्तीवनुनु मत्सौख्यत्तै !

प्रणयान्ध बन कर
मैं उस सुरभिल शरीर को
प्रगाढ़ परिरम्भण में नहीं बाँधता,
कोमल कली है न? कहीं गिर गयी तो!
जब मैं उसके वक्षस्थल को चूम कर
कानों में गुनगुनगुनाता हूँ
तो वह कैसे एकाग्रचित्त सुनती है
यद्यपि जवाब नहीं देती!

विदा लेते-लेते
मैं सौ बार लौट आता हूँ
अनुमति लेने के लिए।
जब हम मिलन-आबद्ध होते हैं
तो फिर प्रचण्ड सूर्य किरणों में गर्मी नहीं रहती,
और काल का अस्तित्व ही नहीं रह जाता!

४

किन्तु आ जायेगी निर्विवेक सन्ध्या,
करेगी सभी सुमनों की आँखें बन्द
बिना सकोच और सोच विचार के।
हाय, दक्षिणी पवन का झोंका खा कर
मेरी प्रिया की नित्य-नूतन चेतना
विलीन हो जायेगी नभ में।

यह विचार
अपने फन फैला-फैला कर
मेरे परिताप-मुख को
भयकम्पित कर देता है।

कालत्तिनधीनमाम्
        नश्वरजगत्तिक-
सालम्बहीनमृतने
        शाश्वतशुद्धस्नेहम ।
अलमल्ललाल् , विश्व-
        त्तिटे नश्वरभावम्
विलयुम् सौंदर्यवुम्
        वस्तुक्कळक्कुण्टाक्कुन्नु ।

—१९३२

यह नश्वर संसार काल की चपेट में है
यहाँ निरालम्ब है, विशुद्ध प्रेम।
तब क्यों करें विषाद ?
वास्तव में विश्व की क्षणभंगुरता ही तो
वस्तुओं का मूल्य और सौन्दर्य बढ़ाती है।

—१९३२

मति

मुरके मुकरुमभ्रलस्मितन् कार्–
कुषनिर तळिटय भगियाम्न शलम् ,
नरुमणि भितरुमृविधम् चिरियृवकुम्
चेरुपुपतमुटे चेणियम्न कूलम् ,

कुल पकुति चुवन्न पच्चनेल्ला–
ललवळ निरनु परन्न वाच्चुपाटम् ,
चलक्सिसलयराजि तीलसा च्यो–
ज्वलमधुरद्युति पूण्ट पुष्पवाटम्

सुलळित हसितम् चलनु तुळ्ळुम्
मलरिनेयिक्किळियाक्किटुम्न वातम् ,
उलक्किनु सुखमूच्छ नल्किटुम्नो–
रलघुमदाकुलकोकिलाळिगीतम् ,

हरितगिरितटत्तिलाट ट्ू वक्क–
त्तरियाय दान्ति तुळुम्पीटुम् कुटीरम् ,
परिसरवनि नीर्त्तियिट्टीटुम् पुल्–
विरिपिलिरम्निटुवान् कुरच्चु नेरम् ,

कपिपुभमलरागमाम्नु चेलुनेर –
म्पिपिल् मदाम्नु पोटिञ्ञोरेटे पुण्यम्
मटियिल्, मति ! जयिच्चु ! सचमेन्वें–
प्पिटियिलोतुङ्ङि , येनियृन्नु विण्णपुण्यम् !

—१९३२

यही बहुत है

रुचिर डाल
जिस पर छितराये हैं मेघ-अलक अभ्र-लक्ष्मी ने,
खड़ा है चुपचाप गाढ़ चुम्बन-लीन,
प्यार से भरने का मनहर सून,
बिखर जाते हैं मानो जिस पर उसकी हँसी के
छोटा-सा खेत, जहाँ लहरा रही हैं हरे धान की बालियाँ,
ईषद् आरक्त सुन्दर उपवन
मनोरम सन्ध्या की द्युति में प्रोज्ज्वल
चंचल किसलय राजि द्वारा निर्मित।
मलय पवन
जो गूँदन जाती है मुस्कान-झूमते सुमन का,
मोहन वन-गान मस्त कोकिल का
जो करता है जग को सुख-मूर्छा लीन।
एक शान्त कुटिया
हरित गिरि-तट में बहते झरने के किनारे विश्राम-स्थली,
अल्प-काल आराम करने के लिए
बिछा दिया हो हरी घास के कालीन पर जिसे
उपवन लक्ष्मी ने।
और, गोद में प्रिया मेरी चिर-संचित पुण्य प्रतीक
मधुर तारुण्यमयी
जिसके रागपूर्ण नेत्रों से झरता हो रस —
यही बहुत है मेरे लिए
आ गया मेरी मुट्ठी में सब कुछ
नगण्य है फिर सुर-लोक भी।

—१९३२

पकजगीतम्

अ घमाम् तमस्सिल नि–
    ग्नयनानिरपेक्षम्
ह त, माम् प्रका ात्ते–
    प्पूकिच्च पुण्यालाव,
लोकबा घव, मव–
    त्ताव्शदयापरी–
पाकत्तिन् स्मरणयाल्
    ए मनम् तुळुम्पावु ।

परिपावनप्रेम
    तलक्कृतशतम्बस ल्प–
परिणाहमेभुळ्ळ–
    मेढिञ्ञने मतियाव ।
नीरवम् दलाधरम्
    घेरत्ते चलिप्पू निन–
सारमामपदानम्
    ानत्तिल् पक्तुवान ।

सेवनव्यग्राकम्पि
    वक्षस्सिल चक्कीम दिव्य–
तावकपदम्, म मेल
    मुक राम् नटुबीवक्कम् ।
आवते तल्लाविभ्राल ?–
    एन् अशक्नततम्र
देव ञान् तिरुमुन्पिल्
    उपहारमाय् वय्क्काम् ।

ओटक्कुषल्

पंकज गीत

हे पुण्यालोक !
अयाचित ही तुम मुझे
अन्धतम के अन्दर से निकाल कर
प्रकाश की ओर ले गये ।
हे लोकबान्धव,
तुम्हारी इस सार्थक दया की स्मृतियों से
मेरा मन सदा आप्लावित रहे ।

हे परिपूर्ण प्रेमशील,
मेरा यह लघु हृदय
कैसे वहन कर सकता है,
इस उदार कृतज्ञता के भाव को ?
मेरे नीरव अधर-दल
तुम्हारा महान् यशोगीत गाने के लिए
चंचल होते हैं,
किन्तु कहाँ गा पाते हैं ?

तुम्हारी परिचर्या के लिए उत्सुक अपने वक्षस्थल में
मैं तुम्हारे दिव्य चरणों को लगाऊँगा
और करूँगा बारम्बार अधीर चुम्बन ।
मुझ से और हो ही क्या सकता है ?
हे देव !
अपनी दुर्बलता को ही
तुम्हारे पैरों पर
भेंट चढ़ा रहा हूँ ।

२

पाप् मणिन विकारमाम
आनेडडु ? तेजोरूप-
श्रीमन्, अडङेटडी सुद्र-
पकजक्पोलत्ते
नाक्ततिळक्कुम्न
तूक्कय्याल-अय्या ! मदो-
द्रेक्ताल् ञानम्मटटु
सुळिञ्ज्ञल-सलाटुम्पाळ ।
लेखमागसञ्चारिन,
मल्वक्कविळत्तटराग-
रेख नी पोरुत्तालुम ,
स्नहृतिन चापल्यत्ताल
मुग्धमाम् मदीयात-
रगम् हा जगनगुरा
स्निग्धनाय्, अय्यो वरुम्
स्निग्धनाय गणिच्चल्ला ।

३

धीरमाम् भवद्रपम
वाणुम् ञानीन्नरान्नु-
नीरल तोरुम् , तापम
निश्वसान स्मरिप्पिप्पू ।
वापितन् वितुम्पुम्न
चुण्टिनुम विरिक्कुम्न-
वारिजट डलनन्
तुटुप्पेरिटुम् व विळिलुम्
चेणुट ट निन् चतयम्
आसुनान् आरे मटिटल्
वाणुवान् एन् व ण्णिम्
वाय च्च नीयरुळाम्निल

ओटक्कुषल्

२

मैं कहा, जड मिट्टी का विकार !
और तुम कहाँ श्रीमय तेजोमय !
मगर जब तुम,
जो स्वर्ग को भी आलोकित कर देते हो,
अपने हाथो से
इस क्षुद्र पकज कपोल को
सहलाते हो
तो उन्मत्त भाव विभोर उछल-उछल पडता हूँ मै।
हे देवमार्गचारिन् !
मेरे कपोलो पर स्फुरित राग रेखा के लिए
क्षमा कर देना मुझे।
हे जगद्गुरो,
स्नेह चापल्य से मुग्ध मेरा अन्तरग
समझ गया है
कि तुम हो केवल स्निग्ध।

३

इन नदी नन्ही लहरियो में
मैं तुम्हारे रूप का दर्शन कर रहा हूँ,
और यह आतप दिला रहा है
तुम्हारी ही याद।
अगर, तडाग के कम्पित अधरो में
मुस्कुराते उत्पलो के आरक्त कपोलो में
वही तुम्हारा मोहक चैतन्य
समान भाव से देखने की दृष्टि
आपने नहीं दी होती

निद्रयिल्प्पिरन्न ञान
निद्रयिलज्जीविच्चेने ।
निद्रयिल् अवसान–
कालत्तु लयिच्चेने ।

४

लब्धबोधमाम् जन्म–
देशत्तिन्निळक्कत्ताल
क्षुब्धमन्तरीक्षत्तिन्
दुर्निवारमाम् वीर्प्पिल्,
निन्मुखाललसस्मित–
सौन्दर्यम् नुकरुवान्
उन्मुखम् निल्क्कुम् निल्प्पिल्
निनु ञान् उलयाल्ला ।
उणराम् निन् दिव्य–
स्पर्शत्ताल अरयास्व–
प्रणयान्तरंगत्तिल्
क्षुद्रवासनयिनि ।
आनन्दसंकल्पङ्ङळ
नुकरान चायम् वेच्च
पानपात्रमायावू
क्षण भंगुरम् जन्मम् !

—१९३३

तो मैं, जो निद्रा में जनमा,
निद्रा में ही निमग्न रहता,
और अन्त में
निद्रा में ही विलीन हो जाता।

४

मुझे जन्म देनेवाली भूमि के प्रबुद्ध कम्पन में
तथा प्रक्षुब्ध अन्तरिक्ष के दुर्निवार निश्वास में
मैं तुम्हारे ही मुख का नित्य नूतन सौन्दर्य देखूं
और उसका पान करने के लिए खड़ा रहूँ,
न हटूं अपने स्थान से।
तुम्हारे दिव्य स्पर्श से
मेरे स्नेहपूरित अन्तरंग में
प्रोज्ज्वलित हो जायें विशुद्ध वासनाएँ।
मेरा यह क्षण भंगुर जीवन
बन जाये तुम्हारा रंगीन चषक
जो भर छलकने के लिए आनन्द सकल्प।

—१९३३

"इनु ञान्, नाळे नी"

"इनु ञान्, नाळे नी , इनु ञान् नाळे नी'
इन्नुम् प्रतिध्वनियुयकुम्नितञोम्मयिल् !

पातवक्कत्ते मरत्तिन् करिनिपल्
प्रेतम् कणक्के क्षणत्ताल् वळरवे,
एन्नयुम् पेटिच्चरण्ट चिल शुष्क–
पत्रङ्ङळ मोहम् कलनु पतिक्कवे,
आसन्नमत्युवाम निश्चेष्टमारतन्
श्वासमिटयिक्कटयुन्नान्नु वलियुकवे
तारक रत्नखचितमाम् पट्टिनाल्
पारमलङ्कृतमाय विण्पेट्टियिल्
चत्त पकलिन् शवम् वच्चेटुप्पति–
नात्तमौनम नालु दिक्कुकळ निल्क्कवे,
तन्पिताविन् शवप्पेट्टिमल् चम्बिच्चु
कम्पितगात्रियायन्ति मूर्च्छिक्कवे,
जीवितम्पोले रण्टट्टवुम् काणात्त–
रा वपियिकल् तनिच्चु ञान् निन्नुपोय् !
पदिकळ पाटियि, ल्लाटियिल्लालील —
यिक्षितितन्ने मरविच्चपोलेयाय !

अन्तिकत्तुळ्ळोर पळ्ळियिल् निन्नुटन
पोन्ति 'णाम्–णा" मेन्नु दीनम् मणिस्वनम्.

ओटक्कुषल

“आज मैं, कल तू”

“आज मैं, कल तू, आज मैं कल तू”
मेरी स्मृतियों में आज भी प्रतिध्वनित हो रहा है यह !

सडक के किनारे खडे पेड की काली छाया
एक क्षण में ही प्रेत की तरह बढ जाती है।
सूखे हुए पत्ते भय से निश्चल हो कर
गिर रहे हैं गिरते जा रहे हैं।
सना शून्य हवा जिसकी मृत्यु आसन्न है।
अनन्तव गहरी साँसें ले रही है।
चारों दिशाएँ चुप्पी साधे खडी हैं
उठाने के लिए दिन की अरथी,
जो सितारों जडे आकाश का
झिलमिलाता कफन ओढे पडी है।
अपने पिता की शव-पटिका चूम कर
ग़श खाती हुई गोधूलि थर-थर काँप रही है।
और, मैं खडा हूँ अकेला उस गलियारे पर
जिसके दोनों छोर अदृश्य हैं जिन्दगी की तरह,
न चिडियाँ चहकीं न बरगद की पत्तियाँ खिसकीं,
धरती जैसे जम गयी थी।

और अचानक पास के गिरजाघर की घण्टियाँ
चीख उठीं। 'णाम्!' 'णाम्!!'

ओटक्कुषल

रण्टायिरत्तोळमाण्टुकळक्कप्पुर–
त्तुण्टायोरा महात्यागत्तेयिप्पाषुम्
मूकमार्णेकिलुमुच्चत्तिन वर्णियक्कु–
मेकमुखमाम् कुरिशिने मुत्तुवान्,
आरालिरडिडवरुम चिल 'मालाख'—
मारायुवराम् वण्ट तूवेणमुकिलुक्कळ ।
पापम् हरिच्चु पारिन्नु विण्णेरुवान्
पात काणियक्कुम् कुरिशे जयियक्कुक ।

आ वपियक्कप्पाळाह दरिद्रन्टे नि–
र्ज्जीवमाम् देहमटक्किय पेट्टि पोय ।
इल्ला पेरुम्पर, शाद्धयाम् विरुत्त—
यल्लमतमुटे नेंचिटिप्पेन्निये ।
इल्ल पूवपम्, विपादम् किटन्नल–
तल्लुत पैतलिन् वण्णुनीरेन्निये ।
वन्नु तरच्चिनेन् कण्णिलाप्पेट्टिमल्
निस्तुमारस्तरम् 'इन्नु ञान् नाळे नी' ।
ओन्नु नटुंडिं ह ञा, ना नटुक्कम् तन्ने
मिन्नुमुडुक्कळिल् दुश्यमाणिप्पापुम् ।

—१९३१

आँखों के सामने बादलों की रुपहली पर्तें छा गयीं
मानो देवदूत उतर रहे हों
उस शूली का स्वागत करने
जो है साक्षी महान बलिदान की
और जो मूक हो कर भी
कह रही है कहानी उस महान् उत्सर्ग की
जो घटित हुआ था दो सहस्राब्द पूर्व ।
धन्य है शूली
जो दिलाती है मुक्ति पापों से
और दिखलाती है धरती को राह स्वर्ग की !

फिर उसी रास्ते से गयी एक अरथी
एक जीवनहीन अभावग्रस्त शरीर,
कहीं कोई बैण्ड नहीं
लेकिन है निष्कलुष आस्थामय
जीवनसंगी के दिल की धड़कन ,
फूलों की बारिश नहीं है,
लेकिन बरस रहे हैं बच्चे के आँसू
जिसकी वेदना, लहरों की तरह, एक पर एक
चढ़ रही है ।
अरथी से उभर कर अक्षर उठे
और मेरी आँखों को बेध गये
'आज मैं कल तू !'
और मैं सिहर उठा
देखा वही सिहरन अब तक
सितारों में झिलमिला रही है ।

—१९३१

शैशवम्

जीवितम् स्वयम् वेपम्
मारुन्न माट टत्ताटे
भूविनुम् वरुम् भाव-
भेदमाणसह्यम् मे ।
शैशवत्तिङ्कल कण्ट-
ञानल्ल ञानिक्कालम्
शैशवक्कण्णाल् कण्ट
पारल्ल पारुम् नूनम् !
एत्तिटुम् तोटान् कया-
लाकाशमेन् मुट टत्ते-
पुत्तिलञ्ञ्ज तन कम्पिल्
केरि निशेनालधाळ ,
गिरि पिन्नाले निमु
कै नीट्टियालुम् कळ्ळ-
ञ्चरि पूण्टोटिप्पारम्
सुप्रसन्ननाम् तिङ्कळ
पटुवृद्धनाम् माविन
वेणूर कलर्न्नोरु
जट चिकिव निरक्कारु-
प्टेन्नेयुम् विळिच्चाराल्
क्षिपवन् वात्सल्यत्ताल्
विरम्पनुम् चिल्लवर्कको-
प्टपक्लित्तलाटार-
प्टा राविन् मुमारने
भूरतारण्यम् वन्न तन्तिनन् बाल्यत्तिटे
दूरदर्शिनि तट्टि' प्परिप्पानसूयाल् ।

ओटक्कुपल

शैशव

जीवन के वेष-परिवर्तन के साथ-साथ
भाव-परिवर्तन आ जाता है भूमि में भी,
असह्य है यह मेरे लिए।
मैं अब वह नहीं हूँ
जो शैशव में दिखायी देता था,
संसार भी अब वह नहीं रहा
जिसे शैशव की आँखों में देखता था।
तब तो—
आकाश मुझे छूने को आ जाता था।
यदि मैं आँगन में खड़े मौलिश्री की डाल पर
खड़ा हो जाता था,
नटखटी चाँद दौड़ा चला आता था।
मन्द मन्द मुस्काता
यद्यपि पहाड़ खड़े रहते पीछे-पीछे
हाथ बढ़ाये, उसे उठाने के लिए,
प्रसन्नवदन चन्द्रमा
बूढ़े आम की सफेद दाढ़ी सहलाता हुआ
मुझे बुलाने के लिए खड़ा रहता था
और
बूढ़ा आम आँगन होता वात्सल्यपूर्वक
सहलाता था उस रचना-पुंज को।
सोचता हूँ
क्या आयी जगत भरी यह क्रूर तरुणाई
मेरे बचपन का दूरदान छीनने के लिए?

ओटकुरुक

२

ज्ञानमेन्तिनु कट–
निक्कटुम् कै चेय्युन्नू
ञानवयोराळायी
विश्वत्तिलेल्लात्तिनुम् ।
मन्दभाग्यनायिन्नु
मारि , लाळिक्कारुण्टु
सुन्दरप्रकृति तन्
सवभाववुमग्नाळ ।
अनुपस्सयल्वक्क–
क्कारियाणु , णनॅट टु
तम्पुटे जालिक्केड इो
सभ्रमिच्चोटुम्पोप ुम्
चेलिल् त्तन् तुटुत्त मैं
एन् नेक्क् नीट्टीटात
वेलिक्कल वन्नेत्तिच्चु
नाक्काते पाकारिल्ल ।

उमुत्तम् पनिनीप्पू
चारिवा तुरमल्प–
मेमुन्निल् निल्कुम मुट ट–
त्तान्नु ञान् मुकरवान् ।
कण्मुन्निलक्कुनिञ्ञान्नु
निन्निटुम् चिरिम्पिक्कान्
वेण्मुकिल् नरमीश
वेञ्चु वेट्टिय वानम् ।
अरिविन् वेळिच्चम,
दूरप्पो, दूरेप्पो ! नी
वेळ्ते सौदयत्ते
कन्नाणुन्न वण् पोट्टिच्चु ।

ओटक्कुयल

२

ज्ञान क्या इतनी क्रूरता करता है?
हाय,
संसार की सारी वस्तुओं के लिए
मैं अब दूर का आदमी बन गया हूँ।
अब मैं मन्दभाग्य हूँ,
कितना पुचकारता था
सुन्दर प्रकृति के विविध भावों को उन दिनों।
सुन्दरी उषा मेरी पड़ोसिन थी,
अपने काम के लिए
घबड़ाती हुई भागती थी
किन्तु मेरे बाड़े पर झाँक कर देखना
और
अपना पेलवारुण हाथ मेरी ओर बढ़ाना
नहीं भूल पाती थी।

आँगन में गुलाब के फूल
अपने नन्हें-नन्हें मुँह खोले रहते थे
ताकि मैं चूम लूँ,
सफ़ेद बादलों की नक़ली दाढ़ी बाँध कर
आकाश झुक कर खड़ा होता था
ताकि मैं हँस पड़ूँ।
ज्ञान की ज्योति,
दूर हट जा, हट जा।
फाड़ दी तूने मेरी सौन्दर्य-ग्राहक आँखें।

३

मानुष, मवद् माप–
यम्यसिन्चप्पोळ्तने
ञानय्या, मरमु पाय
विश्वसु दरमाप ।
या नल्ल मापथ्विरल्ला
स्नेहमल्लाते शास्त्रम्,
आनन्दमल्लातयम्,
रूपमल्लाते वृत्तम् ।

अन्ति बमावाशत्ति–
लक्षरम् कुरिच्चिटट्
चेन्तळिर् क्कैयाल् , देवि
मारि निन्नीटुम् मुम्पे,
अप्पोप् मिपि तुर–
मुळ्ळ पूक्कळुम ञानुम्
आप्यमायतु नाविक
वायिच्चू जातोल्लासम् ।

आलकान्तिमसोप्पा,
क्मापयिल पल मय–
मालपिक्काण्टे , ल्लाम्
सुप्रहमतिल् पिन्ने ।
मययाम्, मरङ्ङळाय्,
पूक्कळाम्, आम्यम् मूडुम्
निपलाय् ससारिच्चेन्
एल्लावरुमोरे माप ।

मरघाल् मरकाट्टे
मट टुळ्ळतेल्लाम् तन्ने
मरतु नपिन्जारा–
क्माप ववरमॅविल् ।

३

हे मानव !
जब मैंने तुम्हारी भाषा सीखी
तो भूल गया वह विश्व विमोहक भाषा
जिसमें,
स्नेह को छोड़ कर कोई शस्त्र नहीं,
आनन्द को छोड़ कर कोई अर्थ नहीं,
रूप को छोड़कर कोई छन्द नहीं।

अपने पल्लवारुण करों से
सन्ध्या आती थी
आकाश पर अक्षर अंकित करने
और
जैसे ही वह दिव्या वहां से हटती
तो उन्मीलित नयनों से पूर्व और मैं
पढ़ लेते थे उन्हें सोल्लास।

मेरी खिड़की के पास का उपवन भी
उसी भाषा में कहानियाँ सुनाता था,
बाद में
सब कुछ मेरे लिए अत्यधिक सरल हो गया
तब मैं बातें करने लगा
वर्षों से, वृक्षों से, कुसुमों से
इंगितकारी प्रतिछायाओं से।
—सब की ही तो भाषा थी समान।

कोई हर्ज नहीं, अगर मैं भूल जाऊँ सब कुछ
किन्तु करता है मन—
फिर से प्राप्त कर पाता मैं वह भाषा
जिसे मैं भूल गया।

४

सञ्चितसुकृतनाम्
पैतले, तारुण्यत्ताल
वञ्चितनाय् ञान् , निटे
नाटिनिद्दुरापम्' म ।
इत्र मेल् पापात्रात-
मित्र मेल् परतत्र-
मित्र मल् निरपेप-
मल्ल तावकलावम ।

परवाप्पत्तिनाटि्टल
नी नीन्तिक्क ळिप्पील ,
करयुनू नी कोन्नु-
तोपनाम् पू वीपुम्पोळ ,
नी मुत्तस्तुतिप्पूवा-
लारेयुम् पूजिप्पील
नी मुटि चूटीटात्त
राजावु निन् राज्यत्तिल ।
मामरम् निपल्प्पद्टु
विरिप्पू नी चेल्लुम्पाळ
तूमलर् तल कुनि-
क्काचारम परयुनु ।
वल्लिक ळिलत्ताळम्
पिटिक्कच्चेटिकळ पूम्-
चिल्लमाल् कै क्काणिच्चु
नटनम् नटत्तुन्नू ।
अयमाम् पुण्यस्यलम्
पूवुवानाणिप्पील
धन्यमाम् शिरापद-
प्पाटात्र दिक्कल्नान ।

—१९३२

ओटक्कुपल

४

हे पुण्यशाली शिशु
तारुण्य के कारण वंचित हो गया हूँ मैं
अप्राप्य हो गया है तेरा वह साम्राज्य अब !
नहीं है तेरा संसार इतना परतन्त्र इतना पापाक्रान्त
और इतना उन्मेषशून्य।

दूसरों के आँसुओं की सरिता में
नहीं करता है तू जलविहार
किन्तु
जब झर जाता है तेरा नन्हा साथी फूल
बिलख उठता है तू।
तू नहीं करता
चाटुकारी के फूलों से
किसी की अर्चना।
तू है अपने राज्य का
बिना-मुकुट राजा।
पादप
तुम्हारे मार्ग में परछाइयों के पाँवड़े बिछा देते हैं
मनोहर सुमन
सिर झुका कर अभिवादन करते हैं
वल्लरियाँ
अपने पल्लवों के मंजीर बजाती हैं
पौधे
फूलों लदी डालियों द्वारा भाव-मुद्राएँ दिखा कर नृत्य करते हैं।
मैं केवल उसी पुण्यस्थान में जाना चाहता हूँ
जहाँ शिशुओं के पगांकनों की पदमुद्राएँ अंकित हैं।

—१९३२

चन्द्रक्कल

तारकक्कूणुक्कळ ताविमिन्नुम् दिव-
नीरवशाद्वलभूमियिल्क्कूटवे
पारमड्डिडट्टु पटम्मुपिटिच्चपुय
नीरदच्छेदच्चेरमुळच्चेटिक्कळिळ
कारियन्नून निरनिलावाक्किय
नैरिय सारियपक्जिपञ्ञोटवे,
इज्जगत्तोक्के मयक्कुम निजमुखम्
लज्जयाल तानरियाते कुनिञ्जता,
ओच्चकूटातेया नग्नपादम् वच्चु-
वच्चतिमात्रमधीर चन्द्रक्कल
एकयाम् मूकयाम् सक्तेतमेत्तुवान
पोकयाम् घयनाक्कामुक्कनारवान।

नल्लकिनावुकळ कण्डु चिरियक्कुन्नु
मुल्लमलरम्, तळस तटिनियुम्।
जागरक्लिष्टनायस्वस्थचित्तनाय
मागरम मात्रम विरिमणलमेत्तयिल्
ताने तिरिञ्जुम मरिञ्जुम् किटक्कया-
णी नेरमाक्कैलुटिक्कुम करळुमाय।

कामुकनतन नेञ्चिटिप्पु केट्टेट्टन्ने-
या मुग्ध मवुमन्दमुदासानयाय्।
प्रेमभदृश्यक रत्ताल् वनियवनयान्
श्यामस्तिलनिनुमट्टुत्तट्टुत्तवे
सामकनपुटेनेक्कु चुम्बिक्कुवा-
नोमल्तिरञ्चुण्टु नीट्टिन्नू कटल्।

चन्द्रकला

गगन में चमक रहे हैं तारका के कुकरमुत्ते,
उसकी शाद्वल भूमि में इधर उधर पनपकर
फैले हैं मेघ-खण्डों के छोटे छोटे कँटीले पौद,
उन्हीं में अटककर जब खिसक खिसक पड़ती है
कमनीय कौमुदी की मृदुल साड़ी तो
सहज लज्जा से वह झुका लेती है
अपना विश्व विमोहक आनन।
कौन है इस निशिकला का सौभाग्यवान प्रेमी
जिसके अभिसार के लिए यह
चली जा रही है चुपचाप एकाकिनी
नीरव पग धरती हुई सैकत-स्थली की ओर ?

हँस रही है कुन्द-कलिका,
देख-देखकर सुमधुर स्वप्न
विश्राम कर रही है थकी हुई तटिनी ,
किन्तु, जाग रहा है केवल सागर, स्पन्दित हृदय
लोट रहा है सैकत-शय्या पर करवटें बदल-बदलकर।

सुनकर अपने इस प्रेमी के हृदय की धड़कन
कैसे रह सकती है वह मुग्धा उदासीन ?
प्रेम उसका खींच रहा है अदृश्य करों से
उतरी आ रही है वह व्योम से निकट निकटतर
ता, लो, सागर ने बढ़ा दिये अपने लहर-अधर
चन्द्रकला की ओर उसे चूमने के लिए।

स्फारदु खत्तालिरुण्ट म मानस-
नीरधियेनेटे तिङ्कळ् तिळक्कुमा !

—१९३२

तुमुल शोक तम से आच्छादित मेरे मन को
न जाने कब प्रोज्ज्वलित करेगी
मेरी शशि-कला।

—१९३२

निमिषम्

जीवितप्पूविलेत्तेन् नुकन्नङ्ङने
तांविन कोनुवाल परिप्पारि
नीरवम पावुम्न कोच्चु निमिषमे !
चोरलाम् नि‍‌‌टे चिरकुवळे
काळमयिर मोलुम् तन्वंवळिलाक्कानेन्
कोमळभावन मोहियक्कुनु ।
चुम्बिच्चुचुम्बिच्चेन् नेञ्चिलटक्कुवान्
वेम्पुमी मुग्धये वचिक्कोल्ले !
म्मालिण क्वेट्टुट्टे नेरिय वामिक्कटे
नूलिनालोमने ! नोविक्काते ।

कोचुमी मुग्धक मूक्षिच्चुनोकट्टे
पिचुचिरवि मेलश्मयाय ।
एण्णियाल्तीरात्त वण्णविशेषङ्ङळ
वण्णीरालाद्रमामीच्चिरक्किल्
मानवमानसच्चायङ्ङळाक्किन
नानाविधारङ्ङळ चेत्ततल्ली ?
मांधिकमानुमात्मावङ्ङळ कार विल्लिन्
मायुयम् पूगुमितुम्पिल्वव्राणू,
आनायाल् वचलमायेय मात्माविन
वेदालमाविय वेम्पलेल्लाम् ।

मुम्पिल् निन्नेत्तुनू, पिन्निल मरयुनू
मिन्नलुम् वेट्टुन वेगमाटे ।

निमिष

जीवन-सुमन के मकरन्द का पान कर
अत्यन्त कौतुक में पंख फहरा कर
नीरव उड़ जाने वाले हे लघु निमिष,
कैसे चोर हो तुम!
मेरी यह कोमल भावना
बन्द कर लेना चाहती है,
अपने पुलकित करों में तुम्हारे पंखों को।
मत करो निराश इस मुग्धा को
जो तुम्हें बार-बार चूम कर
अपने हृदय के सम्पुट में मूंद लेना चाहती है।
प्रिय कैसे बांध दूं तुम्हारे दोनों पंखों को
कोमल [illegible] की निष्पीड़ डोर से!

अस्फुट-वाक् यह मुग्धा देखती है अधीर
इन नन्हे-नन्हे अश्रु सिक्त पंखों को,
इन पर जो विविध रंग दीखते हैं
क्या वे ही नहीं हैं मानव मन के बहुरंगी भाव-अनुभाव
अंकित हो गये हैं जो चित्र विचित्र रूप से
वे ऐन्द्रजालिक भाव जिन पंखों के द्वारा पर
इन्द्रधनुष के माधुर्य की रागिनी रचते हैं
उन्हीं पर देख लेते हैं आशा के चांचल्य से स्पन्दित
आत्मा की समग्र कोमल उत्सुकता!

प्रत्येक पल आता है सामने से
और विलीन हो जाता है पीछे आकर कहीं
इस वेग से कि
बिजली भी विस्मित हो जाती है!

एङङु निन्नेङ्ङुनिन्नेका तवचित्र्यम
तङ्ङुमिक्काच्चुनिमिषमेल्लाम ?
एङ्ङुपोयेङ्ङुपाय मायुन्नु भावन–
यिङ्ङु पकच्चुमिपिच्चुनिल्क्वे ?
नेम्मयिल्त्तनविरलत्तुम्पि मेलोट्टियो–
राम्मतन्स्निग्धमाम रणुक्कळे
पुच्चिरि तूकियुम कण्णुनीर् वात्तुमी
वचिन्न मोमकुन्नु मारि मारि ।

एन्नमेल् क्षुद्रमल्लोरा निमिषमा–
प्पत्रमटिच्चतु पारीलेंकिल्
एण्णियालेत्तात्त जीवितस्प दङ्ङळ
मण्णिलुम विण्णिलुमुण्टाकुमो ?
कुट्टियेक्काणानुपत्नोरम्मतन्
मट्टिलुपलुम्न कम्ममल्लाम्
तन्नुटेतन्नुटेयाय फलङ्ङळे–
क्वेम्नु कण्टोम्नु पुणर्नीटुमो !
पिच्चुचिरकि–टे माटि्टनाल् पापितन्
नेञ्चिल् ज्वलियुमरट्टे भीतिनाळम् !

एन्नमेल क्षुद्रम लोरो निमिषम–
प्पत्रमटिच्चतु पारीटुम्पोळ
अण्डकटाहवुम मुल्पाटटु मुल्पोटन्–
न्चण्डमाम वेगत्ताल् नीङ्ङीटुन्नु !
ओरो चिरकटि जन्तुचित्तङ्ङळि–
लोरोविधत्तिल प्रतिध्वनियुक्वे
कम्ममस्कारत्तिन् मार्गत्तिलूटवे
जन्मम्मृतिकळ चविट्टिक्केरि,
चेन्निटुम जीवितधापयानपृक्कतु
तन्नेयाणानमध्वानवेळि ।

किस एकान्त रहस्य-लोक से आ जाते हैं
ये विचित्र लघु निमिष!
और विलीन हो जाते हैं जाकर कहाँ?
चकित है भावना, देखती है यह
विस्फारित नेत्र।
मेरी यह ठगी गयी भावना देखती है
अपनी उँगलियों के पोरों पर लगे
अत्यन्त सूक्ष्म स्मृतियों के स्निग्ध पराग को,
कभी मुस्कराते होठों
कभी बरसते नयनों!

कितना क्षुद्र है यह निमिष,
किन्तु यदि उड़े नहीं यह अपने पंख फड़फड़ा कर
तो कैसे हो इस मिट्टी में और इस विपुल व्योम में
सख्यातीत जीवों का स्पन्दन?
कैसे हो मिलन आतुर कण का अपने पंखों से
कैसे हो आलिंगन उनका
उस माँ की तरह जो व्याकुल दौड़ती है
अपने शिशु को देखने के लिए!
इन नन्हें पंखों का ममर मारुत
प्रज्वलित कर मौन-ज्वाल पापियों के मन में।

कितना लघु होता है प्रत्येक निमिष
किन्तु जब वह इन पंखों पर उड़ता है
तो आगे-आगे भागने लगता है प्रचण्ड वेग से सारा ब्रह्माण्ड!
प्रत्येक पंख की ध्वनि
प्रतिध्वनित होती है विभिन्न रूपों में
प्राणियों के मन में।
यही प्रतिध्वनि बन जाती है नगाड़े का तीव्र घोष
जब जीवन का जुलूस
कर्म-संस्कारों के मार्ग से आगे बढ़ता है
जन्म और मृत्यु को लाँघ कर।

पिन्नाले पिन्नाले तोट्टुतोट्टिङने
वन्नीटुम् मुग्धचलनङ्ङळे,
निङ्ङळ परत्तुम् चिरविन् निपलल्ली
जङ्ङळ तन्नत्मुत्तमाय वानम् ?
नित्यमाय् निश्चलमायतु काणुनू ,
सत्यमाय तोन्नुन्न मिथ्यमात्रम !
कुञ्ञिञ्चिरकटिक्काटि्टन्नाल् गाळङ्ङळ
मञ्ञिन् कणिकपोल् कम्पिक्कुनु
मानवशक्तितन् गवत्तिनसाम्राज्यम्
मारालपोले विरञ्चीटुनु !

जीवितत्तिन् पपम्पूक्कळ कोपिञ्ञाले-
न्तीविधमुळ्ळ चिरकटियाल् ?
नूरुनूरायिरमल्ला परिणाम-
भूतनभगिकळ माट्टिटुन्नू !
अम्बरमध्यम् तिळक्कुन्नोरादित्य-
बिम्बवुम् वेट्टुपामॅँविलाट्टे ,
अवकरियूतिप्पिटिप्पिञ्चु मट टोरु
तावकट्टमुण्टावनुम सगणक्ति !
चूटुम् वैळिञ्चवुम् पिन्नेयुम् पिन्नेयुम्
नेटि विर्टॉनिट्टुम् जीवितङ्ङळ ।

कोञ्चुनिमिषमे ! यात्र चोदिञ्चुवा
प्टिञ्चिन्त नित्तुम्नु पोवुक नी ।
आनटक्कोट्टुमेन् कण्णुनीतुळ्ळि वी-
णी नलञ्चिरकु कुपयुम् मुन्पे !

परम्परित हो कर आनेवाले
मुग्ध स्पन्दनो!
हमारा यह विस्मयकारी आकाश
तुम्हारे फैलाये पंखों की छाया ही तो है।
दिखाई देता है यह नित्य और निश्चल,
किन्तु है यह मात्र मिथ्या जो प्रतीत होता है सत्य-सा।
इन नन्हें पंखों की हवा से
ग्रह-समूह प्रकम्पित हो जाते हैं
ओस की बूंदों की भांति,
मानव की शक्ति और दर्प का साम्राज्य
हिल जाता है
मकड़ी के जाले की तरह।

इन पंखों के झोंकों से
झड़ जाते हैं जीवन के बासी फूल,
हुम ही क्या है भला!
सो विवाम की अगणित नूतन सुषमाएँ
मुकुलित हो रही हैं।
हो सकता है आकाश पर दिखता यह तरुण रवि बिम्ब
बुझ जाये!
यह सगशक्ति अपनी फूंक से उसे फिर
प्रज्वलित अंगारा बना देगी।
और विकसित होगा तब नवजीवन
पा कर ताप एवं निर्मल प्रकाश!

किन्तु, प्यारे लघु निमिष!
समाप्त करता हूँ मैं यह चिन्तन,
बढ़ जाओ तुम आगे,
इससे पहले कि मेरे अश्रु-कण से
तुम्हारे पंख भीग जायें।

तन्चिरप्रार्यितसौ दयमूर्त्तियक्कु
सचितकौतुकमिस्स देशम्
पूचिरक्कि मेल्क्कुरिक्कुवानुल्लकण्ठ–
तचुमेन् भावन वेम्पल्कोळवू –
"आदशम् तनुळ्ळिल सकल्पच्छाय क–
ण्टादरिच्चेत्र नाळ पोक्कणम् जान ?"

—१९४५

मैं तुम्हारे फूल-से पगों पर
सकौतुक लिखना चाहता हूँ यह संदेश,
अपने चिर प्रार्थित सौंदर्य-देवता के लिए
"आदर्श के भीतर देखता हुआ
अपने संकल्प की छाया,
करता हुआ उसका आदर
कितने दिन बिताऊँगा मैं ? '

—१९४५

धूणुकळ्

पुत्तनाम् दिनत्तिन्टे
माणिक्यमुळ, पूव–

दिक्तटत्तिल्विवळ–
मोंटमे मोटि चाशि,

कोम्पिटे तुम्पिल्ल्वेम्म–
ण्णाम्र वाळवळेत्तन्–

मुम्पिलाय् नटत्तियुम्
तप्पाळिन्चिवटयिक्वटे,

मानवसस्कारत्तिल–
प्परिवत्तनत्तिटे

गानरेखवळाद्यम्
कुरिच्च मलप्पये

तमुटे मेलिब्ज मयू–
च्चुमलालेन्तिक्कोण्टुम्

चेनु मपवन् नीण्ट
मराम्पिनुविक्किल्क्कूटि ।

नालुभागत्तुम् बीजा–
धानकौतुकमुळ्ळ–

लेलुमा वयलुव–
ळात्तग घवळायि,

आट टुवविप्पूवालि–
टूनक्वि मणप्पियुक्तुम्

काट टु वन्नवधेकी
नेत्तोराद्रमाम् सौम्यम् ।

ओटक्कुपल

कुकुरमुत्ते

नये दिवस का मणि-अंकुर
पूर्व दिशा में फूटा
और उसकी बेल पनप कर
सब जगह फैलने लगी।
खेतों की लम्बी मेड़ों के किनारे किनारे चलता हुआ
आ पहुँचा किसान
हाँकता हुआ अपने बैलों को
जिनके सींग हैं धूल धूसरित
कभी-कभी सहला देता है पीठ उनकी
अपने दुर्बल कन्धों पर उठाये हुए है वह हल
जिसने मानव-संस्कृति में परिवर्तन की
प्रथम गीत रेखाओं को अंकित किया।

उसके चारों ओर
बीजवपन कौतुक से भरी
धरती
मादक गन्ध लिये खड़ी रही।
घाँस की पूँछ का
हिला हिला कर
आनवानी हवा
उसको गुन देने लगी।

मगळम् वितयक्कुवा–
ना नरन मृगशक्ति–
तन् गळत्तिटक्ल् स्नेहाल–
त्तटवि नुक्म् वयुक्के
मुन्पिले मनितुटिळल्–
क्वलन गानम कोपु–
तुम्पुरञ्जुण्टाम् चालिल–
निधुमिदन्ने पोडिड —

"सौम्यमाम् कलप्पतन सन्देशम् आनेनेनुम्
साम्यवादिया, णेटे मून्नवेरिय नावाल्
पारिनेयिळक्कुम् आन् निरप्पाक्कुम् जान्, चता–
ह्यारियाक्कुम आन ह्प हरितरोमाञ्चत्ताल् ।
इटिञ्जु निरडिडय वाविलिन तरवळ वी–
णटिञ्जु तुटडिन्य काट्टकळ मतिलुकळ,
जीणमाम किटङ्ङुकळ, तरिशायतीर्नोरस्थि–
क्षीणमाम् मृगीयोग्र युद्धभूमिकळेल्लाम
नावुमेन् गानत्तिन्टे चालुकळाले माञ्जु–
पावुमायवे नव्य चतयम् मुळच्चावक्कुम्'

जीवितत्तिनेयुण
र्त्तीटुमाराकाशत्ति–
ली वितक्कालप्पाटटु
माट टोलिक्काम्बेमालुम्,
चेणुलाविटुम् कोट्ट–
क्कुटयुम पोक्कित्तक्कोप्टु
कूणुवळ् कुसुडङाते
निल्क्कयाणन्नेरत्तुम् ।
विण्णिलुम विलियता–
णेद्दु तानिप्पाम् पुत्तु–
मण्णिलाज्जीर्णोढत्यम्
निवसुम् वळिवाुन !

जब अपने संसार की मंगल-कामना के लिए
वृष-शक्ति को सप्रेम पुचकारकर
उसके कंधे पर जुआ रखा
तो धरती की आत्मा में सोया पड़ा गान
हल की नोक से कुरेदी गयी मिट्टी में से या फूट पड़ा
सौम्य हल का सन्देश

"मैं हूँ सनातन साम्यवादी
मैं अपनी पैनी जीभ से समूची धरा को हिला दूँगा
और लाऊँगा समता
उसे बनाऊँगा हरी भरी हर्ष-पुलकित।
ढहते महलों की नीवें
गिरते हुए दुर्ग प्राचीर
पटती हुई खन्दकें
उजड़ते हुए अस्थिकीर्ण उग्र युगीन समरांगण
सब मेरे दर्द भरे गीतों की धारा में विलीन हो जायेंगे
और नवचेतना के अंकुर फूटकर लहलहा उठेंगे।"

जीवन के जागरण का यह बुआई-गीत
धरा और अन्तरिक्ष में गूँजता ही रहा
किन्तु
कुकुरमुत्ते खड़े रहे अचल।
भूरी मिट्टी में इस क्षीण अभिमानी ने
जो छाते रोप दिये हैं
उन्हें वह समझता है
जैसे वह आसमान से भी ऊँचे और महान् हैं

मन्निनोरलकारम्,
कालत्तिनहङ्कारम्
विण्णिलेत्तारङ्ङळक्को
विस्मयमेन्त्वे तल्ल ।
नाटिनेप्पुतुक्कुम
परिवर्तनत्तिटे
नावु नक्कुपोयेय्क्की
गौरवम् मरक्काल्ने ।

—१९४५

पृथ्वी के अलकार है,
काल के अहकार है
आकाश के तारो के लिए विस्मय की वस्तु हैं
और न जाने क्या क्या है।
ओ कुकुरमुत्तो,
इस पृथ्वी को नव्य बनानेवाले परिवनन की
क्षुब्ध जिह्वा जब तुम्हें चट कर जायेगी
तब भी तुम अपने अहकार का नही भूलोगे!

—१९४५

ओरु पपय एटँ

कुम्बिल्निम्निरङिङ आ–
        नस्तमिञ्चप्पोळ , सन्ध्य
पोन्निरम्वतिक्कट ट–
        येट दुवानोरुङ्ङवे
चिम्नियोरुतिर् मणि–
        येन्नपोलाकान्तु
मिन्नियडिञ्ञ्ङायिट्टु
        तरळम् ताराजालम् ।
कट टमेल् तिरुकिय
        काञ्चियोररिवाळि——
म्रट् टमन्नेरम् काणा–
        मम्पिळिप्पाळियायि ।
प्रेमपूण्णमाम् कण्णु–
        पोलोरु विळक्कता
श्याममैतानतिटे
        यविकलैक्कुटिल्क्कुळिलल् ।
'म यपुष्प मेन्नारे
        वापि् त ज्ञान् पण्टा ग्राम–
क यतन् स्मरणयाल्
        मणिम ननञ्ञुपोय् !

मालि मेय्क्कुवानायि–
        ट्टी मलचेरुविला–
ञ्ञालिक वरुम् पोकुम् ,
        अमु कट्टायी ज्ञदङळ ।

एक पुराना पन्ना

अस्त हो गया सूर्य
और मैं उतरा टीले से नीचे,
संध्या
सुनहरी किरणों के धान का
भुट्टा ले जाने लगी,
बिखरे हुए धान्य के समान
इधर-उधर चमकने लगे तारक
ज्यों खाया गया हो भुट्टे पर
चन्द्रमा की रेखा दिखायी दे रही थी—
सान दिये हँसिए की तरह।
श्यामल मैदान के किनारे की झोपड़ी में
जल रहा है एक दीप,
प्रेमपूर्ण नयन की भाँति।
वन्यपुष्प कह कर
जिसकी पहले मैं प्रशंसा करता था
उस ग्रामीण कन्यका की याद
मेरे मन में आ गयी,
और मेरी बरौनियाँ गीली हो गयीं।

वह बाला आया करती थी
गाय को चराने के लिए इस तलहटी में,
इस तरह हम बन गये थे मित्र।

मोटवुयन

चेरुपैक्किटावानु–
पटायवळ्क्कतिनघु
करुवक्कूम्पेनु न–
ताणोरु विनादम् मे।
चोल्लियालाटुडिडल्ल,
वात्त ज्ञडडळक्क नेघा–
ललिलटय्क्कतिरिट्टुम्,
ञडञ्ळ पोम् सनिश्वासम्,

कुनु नल्पूच्चेष्टायुम्
ताप वारम् वासन्तश्री–
तनुटे मरतक–
प्पूतालमायुम् निल्क्के,
अनोरन्तियिल् चाञ्ञ
वाटटुतमाविन् कोम्पिल्–
क्वेश्रिरुन्नतिन पूवा–
लेरिञ्ञु विहरिय्क्के,
एन्नुटे नोक्कारोनु–
मा मुग्धकुमारितन
स्विन्नमाम् कविळ्पूविल्
पुळकम् मुळप्पिय्क्के,
आ मनोहरियुटे
नीननेत्रावागांति–
सामन्दम् परन्नुपाय्
म मनमतिदूरम्।

'अल्लल्ला! पूवालिप्प–
य्येडडे यु चोल्लिप्पेट्टे–
ञ्नल्लणिवकुपलपि–
ञ्ञेपुन्नेट् टवळ पोवे,

मोटक्कुयल्

उसकी एक छोटी-सी गय्या थी
जिसे दूब का अंकुर खिलाना मेरा विनोद था।
हमें कितनी ही बातें करनी होती थीं
जो कभी पूरी ही नहीं होती थीं,
तब रात्रि आकर हमारे बीच में
सीमा खींचती थी
और हम सनिश्वास चले जाते थे।

बात है
एक संध्या की—
जब कि पहाड़ी दिखायी देती थी कुसुम मंजरी-सी
और
तराई मधुलक्ष्मी की मरकत मय कुसुम थाली-सी,
घन रसाल की झुकी डाल पर बैठ कर
हम दोनों एक दूसरे पर फूल फेंक कर
क्रीड़ा कर रहे थे,
मेरी चितवन उस मुग्धा कन्या के
स्निग्ध कपोलों पर
पुलक अंकुरित करती थी,
उस सुन्दरी के नील-नयन-गगन में
मेरा मन
धीरे धीरे बहुत दूर तक उड़ गया।

'अरी मेरी धूकाली,[1] कहाँ चली गयी तू।'
कहती हुई जब वह उठी—
उसकी केश राशि खुल गयी
उसकी आँखों की बरौनियों पर

---

1 गाय के प्रति असीम वात्सल्य दिखाने के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता है।

अन्तिक्कार् वक्किल् तारम्–
पोले, कण्पीलित्तुम्पि–
लेन्तिय पोटिक्कण्णी–
रिप्पोपम् काणुनू ञान् !
इल्लवळिप्पोळ—एन्ना
ला स्मतिप्रकाशमे–
मल्ललिन् काट्टुमुटि–
त्तुम्पिनुम् तिळक्कुमु !!

—१९३४

जैसे चमक उठा हो सितारा
सन्ध्या मेघ के किनारे,
चमक उठी एक अश्रुकणिका
जिसे मैं आज तक
याद कर रहा हूँ।
आज वह नहीं रही
किन्तु उसी स्मृति की ज्योति
मेरे शोक गिरि के उच्चतम शिखर पर
आज भी चमक रही है।

—१९३४

कर्म्मक्षेत्रत्तिल्

(गद्यकविता)

प्रभातमे,
कालम् कात्तुकोण्टिरिक्कुन्न प्रभातमे,
स्वागतम्!
उन्नतशिरस्कुकळाय मलयसह्यन्मार,
उदारदर्शनयाय केरळावनियुटे
अंगरक्षकन्मार,
मरतकत्तळिककळिल् मधरोपहारमेन्ति,
अविटत्ते आगमम् प्रतीक्षिच्चु
अक्षमम् निलकोळ्ळुन्नु।
राजकीयप्रभावत्तिन्टे रामणीयकम् निरञ्ञ मुद्र,
श्याममाय भाग्यवरामनन्दिनियुटे पिरकिल्
ओळमटिच्चु अटियाळम् उलञ्ञुपयुन्न
नीलनीराळम्
चन्नवाळम् वरे परन्नु मिन्नुन्नु।

सत्यदर्शक, कर्म्मप्रेरक, वरु!
पुण्यदर्शनमरुळु!
प्रकाशत्तिन्टे कनकप्परिचकाण्टें,
अन्तरीक्षत्ते आवरणम् चयितरिक्कुन्न
मलिनमुखमाय अन्तरीक्षत्तयुम्
आत्माविने
अतिदीनम् आलिंगनम् चेय्तिरिक्कुन्न
आलस्यत्तेयुम् दूर नीक्कु! तार मायक्कु!

कर्मक्षेत्र में

हे प्रभात,
काल की प्रतीक्षा में स्थित हे प्रभात,
स्वागत !
समुन्नत शिरस्क ये शैल
मलय और सह्याद्रि,
जो हैं इस उदार-दर्शिनी केरल अवनि के अंगपाल,
अधीर खड़े हैं
मरकत की डाली में मधुर उपहार लिए।
तुम्हारे आगमन की प्रत्याशा में।
आक्षितिज फैला उद्दाम लहरें उछालता
यह नील महासागर चमचमा रहा है,
श्यामल परशुराम-नन्दिनी[1] की पीठ पर
एड़ी तक लटकता
राजसी प्रभाव का रमणीय चिह्न-सा।

आओ हे सत्यप्रकाश, कर्म प्रेरक,
दे दो अपने पुण्य दर्शन !
दूर कर दो प्रकाश का कनक-दान से
इस मलिन-मुख घोर अंधकार को
छा गया है जो अन्तरिक्ष पर।
जड़ से उखाड़ फेंक दो आलस्य को
बाँधता है जो आत्मा को
अत्यन्त दीन आलिंगन में।

---

१ पुराण प्रसिद्ध है कि परशुराम ने अपना परशु फेंक कर केरल को समुद्र से निकाला था।

सुमनम्मुकुळुटे सुभगजीवितम्
स्वतन्त्रमायि विटरट्टे ।
विस्मयमान आर्द्रहृदयम्
वेळिच्चम् नुकर्नुणरट्टे ।
निर्भयमाय सुरभिलाशयम
उयर्नुयरु वीशट्टे ।

इन्नलत्ते इरुण्ट निषलुकळिल् निन्नें
इळये विटर्त्तान् वन्न मोचक,
नवचैतन्यदायक,
प्रगतिमार्गप्रबोधक,
अविटत्ते विजयम् शाश्वतिनुदयम् ।
निणमणिञ्ञ इरुट्टें
निटे बाल्कल् किटक्कुन्नु,
निरमियन्न गगनम्
निन्ने वन्दनम् चेय्युन्नु ।
प्रकाशत्तिन्टे तकरुाक्कोलकाष्टें,
अन्धयुम् जीर्णयुमाय तमिस्रयुटे
अनन्तमाय तुरुन्नु तुरक्कू ।
अक्करट्टिच्चरिक्कुन्न दिव्यज्योतिस्सुवर्ळे मोचिप्पिच्चकु,
उदयत्तिन्टे विटर्नुवरुन्न चेंपतार उलकमावे निवरट्टे ।
कुटिलुकळिल्, वयलुकळिल्, जीवितोन्मादवु वितरट्टे ।
आलस्यम, अकले ।
भयमे अकन्ने ।
जीर्णते, विलकि निल्कू ।
एल्लाम् इन्नले ।
वर्राविन कम्पलेत्रत्तिल्
ओतचेरविन ।
विनम्बस्वप्नङ्ङळुटे
तकर्त्तिरुवळ काप्पुविन् ।

—१९४४

सु-मनों का सुभग जीवन
स्वाधीन और विकस्वर हो,
जाग उठें, प्रकाश पीकर
विस्मित आर्द्र हृदय,
फूल जायें, ऊँचे ऊँचे
निर्भीक सुरभिल भाव!

विगत रात की काली छायाओं से
वसुन्धरा की विमुक्ति के लिए आने वाले विमोचक,
हे नवचैतन्यदायक,
कर्म मार्ग सन्देश-वाहक,
तुम्हारी विजय हो जग का उदय हो!
पड़ा है तुम्हारे पैरों पर
रक्तपंकिल अन्धकार,
खड़ा है तुम्हारी वन्दना में
रंगीन गगन।
अपने प्रकाश की कनककुंजिका से
खोल दो तमिस्रा का अनन्त कारागार,
कर दो दिव्य ज्योतियों को उन्मुक्त
ताकि उन्नय की विकस्वर पताका
समस्त संसार में उल्लासित हो उठे!
कुटियों में, खेतों में
फूल जाएँ जीवन की कोमलता!
भाग जा रे आलस्य!
दूर हो जा रे भय!
हट जा सामने से, रे क्षीण भाव!
आओ भाइयो
हम मिल-जुल कर उतर जाएँ कर्म-क्षेत्र में
काट लें कनक-बालियाँ
बोये हुए सपनों की।

—१९४८

चक्रवाळम्

मानवविज्ञानमेत्र वळर्न्नालुम्
नूनम् पराधीनमाणतेन्नुम् ।
उत्पत्तिण्णुत्ववुम, सकेतलघन—
तत्परभाववुम् काणिक्कट्टे,
कैवल्यस्वातन्त्र्य, मयानपेक्षितम्
पावत्तिन्निल्लेन्न गर्विच्चालुम् ।

नालचु पेराणु तन् तुणक्कारिमा—
रालम्बमिल्ल मट्टॆ ढडायालुम् ।
भतप्रपचत्तेप्पाटि टप्पल मय
चातुयमाटवर् विस्तरिप्पक्कुम्
नेरेतु पोय्येतेन्नारामतिल्लति—
न्नारुमे सन्नयम् मन्नाल् तीर्प्पान् ।

तन् 'चक्रवाळ' मरक्कुट तन्नुळ्ळल्
सञ्चरिच्चीटेणमेन्नुमन्नुम् ।
अवनुटय्क्कुळ्ळिलोतुङ्ङुन्नु तन्लोर—
मोक्कयुम्, सन्नयम् तन्ने चुट्टुम् ।
अन्नुटवट्टत्तिन्नप्पुरत्तेय्क्कोन्नु
नोक्कुवान् धयमुण्टावुन्नु ।

क्षितिज

मानव की प्रतिभा
कितना ही विकास क्यों न पाये
फिर भी वह है सदा पराधीन,
चाहे कितना ही गर्व वह कर
प्रगतिशीलता का—
महिमावान की समता का गर्व—
किन्तु इन बेचारों के भाग्य में
स्वावलम्बिनी स्वतन्त्रता नहीं लिखा है।

इनकी चार-पाँच पहेलियाँ हैं
छोड़कर उन्हें और कोई अवलम्बन नहीं इनका,
भूत जगत् के सम्बन्ध में
कितनी ही दन्त-कथाएँ
चतुर्दिक के पास वे सुनाया करती हैं।
इनमें कौन सच है और कौन झूठ है,
इस सन्देह को दूर करनेवाला कोई नहीं।

क्षितिज-रूपी छत के नीचे-नीचे ही
इस अन्तःपुर की कामिनी की तरह
सदा चलना पड़ता है।
इस छत के छोटे-से घेरे में ही
इनका सारा संसार सीमित है।
चारों ओर केवल सन्देह ही सन्देह है।
किन्तु नहीं है साहस इन्हें
इस छत के बाहर झाँककर देखने का।

चेम्पिनकम्पेट्ट तुम्पिपाल् जिनास
तप्पित्तटञ्ञु पिटञ्ञिटुनु ।
कोम्पुम् चिरकुमोटिञ्ञारज्जोविपोल
वेम्पुमिज्जिनास वीणिल्लेंकिल्,
नाकवुम् लोकवुम् तम्मिल्प्पिरियुन
रेखावलयम् शिथिलमाक्कि
सत्यत्तिन् पूण्णमाम् दीप्तियिल्च्चेन्नतु
हत्तिप्परनु कळियक्कुमिल्ले ?

अक्षमनानवजिज्ञासतनुटे
पक्षम् विटर्त्तियुक्कानेतुमेनुम्
वेल्लुविळियाय् विवस्वरघीलमा—
युल्लसिच्चीटावु चक्रवाळम् ।

—१९४४

डिबिया में बन्दिनी बनी तितली की तरह
जिज्ञासा चारों तरफ़ तड़पती टटोलती घूमती है
यदि पर-कटे, डंक-टूटे, शलभ के समान
मानव की जिज्ञासा धराशायी न हो गयी होती
तो क्या वह क्षितिज की
उस सीमा रेखा को लाँघ
सत्य की पूर्ण दीप्ति में पहुँचकर,
फुदकती-मँडराती हुई नहीं खेलती ?

मानव की आतुर जिज्ञासा के पंखों को
खोलने के लिए
स्वयं एक चुनौती के रूप में
यह क्षितिज
अनुक्षण पनपता हुआ
सदा विराजमान रहे।

—१९४४

पूजापुष्पम्

सत्यसौदयमे । निन्प्रकाशत्तिनाल
नित्यम विटरमारावुकेन जीवितम ।
एन्करळिवल निरयुमाराक निन––
सकल्पमत्तिन् समाद्रमाम् माधुरि ।
मुट टुमितिलनिस्तुयग्ननिर्वाच्यमाय्
चुट टुम सुरभिलोमादम् परक्कुक ।
एनुमनियुक्कु निरम पिटिप्पियक्कुक
निनुज्ज्वलानुग्रहत्ति टे रश्मिकळ ।
वीणुपोयेंघिला, तच्चेवटियुक्कनु
वेणुट टोरच्चनमाकुमारावुक ।

—१९४२

पूजा-पुष्प

हे सत्य सौंदर्य
तुम्हारे प्रकाश से
सदा प्रफुल्ल हो जाये
मेरा जीवन!
मेरे हृदय में भर जाये
तुम्हारी कल्पना के सार-तत्त्व की सरस माधुरी
मेरे प्रफुल्ल जीवन से उठनेवाला
अनिर्वचनीय सुरभित मकरन्द
फैल जाये चारों ओर
तुम्हारे अनुग्रह की उज्ज्वल किरणें
सदा ही मुझको रंगीन बनाती रहें
अगर मैं झड़ जाऊँ कभी
तो तुम्हारी पद-अर्चना का सुमन बनकर गिरूँ।

—१९४२

कालम्

माळमेद्दडरिन्नोल
सचरिक्कुन्नू काल–
फाळकुण्डलि जग–
मण्डलङ्ङळेन्चुटिट ।
नेरियनाना शुक्ळ––
पटलङ्ङळिल्नि ति–
मूरियोरुरम्मळा–
णव्यक्तस्थला तत्तिल् ।
'चिरियुम् चिरियुमि –
निङ्ङने माहिन्चुम्को–
ण्टरिवत्तिरिक्कुन्नु
पावम चियल्पक्षि !
गोळमुटुक्कळतिन्–
चिरविनकीपिल्क्काणाम्
नीळवे , कालम कोत्ति–
क्कुटिञ्च ताण्टाणेल्लाम ।
पकलुम् राबुम् नाविन
रण्टुतु म्पव नीट्टि–
प्पकयोटुमानन्त–
द्विजिह्वम् नक्कीटुम्पाळ
उटलु तरियुक्कुन्न
पवतम् स्तभियुक्कुन्नू ,
कटलुम् आसावम्प–
सरबम् चुळुङ्ङुन्नू ।

इविपमिरियुक्कवे तनुक्ळिक्काप्पुम् कोण्टु
जीवितम् कळियुक्कयाणीमितिन् भागति मल !

—१९४०

काल

ना जाने
बाकी कहा है उसकी ?
काल-नाग अखिल जग-मण्डल को
अपनी कुण्डली में घेरकर रेंग रहा है
कहाँ जा रहा है वह ? क्या खोजने ?
ये जो दीख रहे हैं महीन-महीन
नहीं हैं ये नीहारिका-पटल
हैं ये उसकी केंचुलियाँ
जो अव्यक्त अपारता की श्यामाम्बरा सीमा में छूट गयी है।
काल हो आकाश-खगी
अण्डे से रही है
आशा कर रहा है कि
अण्डों से निकलेंगे बच्चे
उसके पंखों के बीच
दिखायी दे रहे हैं गोलाकार अण्डे
जो काल के चूसे खोखले-खोखले हैं।
उसकी जीभ की दो नोकें हैं दिन रैन
जिन्हें वह अनन्त द्विजिह्व,
जब अत्यन्त विद्वेष के साथ लपलपाता है
तो पर्वत स्तब्ध हो जाता है
और विशाल सागर
संकुचित हो जाता है।

किन्तु ऐसी अवस्था में भी जीवन अपना खिलौना लिये
काल भुजंग के फन पर खेलता रहता है।

—१९४०

एवरस्ट

निश्चलम् नीण्टु निवनु निन्नू दृ–
निश्चलनाय कोट्टुमुटि पिन्नेयुम् ।
'उन्नतमामेन्, मुटियिल् चविट्टुवा–
निन्नरनाग्रह मेन्न भावत्तिलो
पुचिरि तूकियिरुन्नू निजमुख–
सञ्चितमायी स्फुरियुक्कुम हिमत्तिनाल् ।

सूमञ्जुतुळिऴ निरयेत्तिळङ्ङुम
कोमळत्तामरप्पञ्चिवलपोलवे
आरुटे जिज्ञासतन् मयिल मिन्नुन्नु
घारतारामुलमाकुमपारत,
आरुटे सिद्धिपोळिञ्चुकळियक्कुन्नु
वारणमन्दिरत्तिकलशवितम्
आरुटेयिच्छ विळियक्कुम् विळिप्पुर–
त्तारालणवू जगत्तिन्टे शक्तिकळ,
आरुटे साहसिकत्वमटुक्कवे
भीरवाम् मारिक्काट्टुक्कुन्नु मृत्युवुम् ,
आरु विधितन् कटुमवेट्टुरक्कुन्नु
पौरपत्तिन्टे निश्चितमाम् वाळिनाल्
आरसाध्यत्तिन्टे साम्राज्यविस्तृति
पारम् चुरुक्कुमनन्तपराक्रमन्,
आनमिप्पियुक्क शिरस्साज्जगज्जयि–
मानवनुतनुमुनुपचलमे, सादरम् !

ओटक्कुरल

एवरेस्ट

दृढ सकल्प ठाने उन्नत शिखर
वह वैसे ही तनकर निश्चल खडा था
मुस्कुरा भी रहा था
अपने आनन पर चमकनेवाले हिम से,
मानो सोच रहा था—
"क्या मेरे अत्युच्च शीष पर
पैर रखने की अभिलाषा करता है,
यह मनुष्य ?"

हे अचल !
जिसकी जिज्ञासा के हाथ मे
यह मनोहर तारक-सकुल असीमता
श्वेत तुषार कणिकाओ से भरे
कोमल कमलपत्र की भाँति चमकती है,
जिसकी सिद्धि वरण मन्दिर में
जाकर निश्शक आख मिचौनी खेलती है,
जिसकी इच्छा के आह्वान पर
जग की शक्तियाँ समीप आकर
सविनय खडी हो जाती हे
जिसकी साहसिकता के सामने मृत्यु भी
कायर बनकर रास्ता छोड देती है
जो पौरुष की पैनी कटार से
विधि की विकट ग्रंथि को काट डालता है
और जो अदम्य पराक्रमी
असम्भव के साम्राज्य की सीमा को छोटा करता रहता है,
उस विश्वविजयी मानव के सामने सादर सिर झुका दो !

सम्पन्नकौतुकमुत्साहमूचकम्
वेणूपटटुरमाल् विटर्त्ति वीशि पक्त ।
नीलगगननयनम् विटरम–
क्कालवुम निम्नुपोय् पूरिताल्क्वण्ठमाय् ।
म दमोपुक्टिुम् वेणमुक्लिमालमल
सु दरस्वप्नत्तिल्मुङिङ नग्नागराय
स्वैरम शयियुक्कुन्न किन्नरदम्पति–
मारतिसम्भ्रममु मुखम् नाक्कवे
मानुपथप्टत वयुक्कयायी पदम्
सानुविन् गौरमाम् गौरवत्तिटेमेल ।
पोवुक, मेलोट्टुपोवुक, सिद्धि, वेण्–
पूवुटल चेर्त्तान्त्रु पूलघुनत्तुवरे
एसुरञ्चेरित्तुटङ्ङी यशस्सिनु
तमुयिर कोष्टु वळमिटुम रप्टुपेर ।

ञा मलत मेलमन्नु मयङ्ङिङ्ङुम्
व्योमपतगम्, निजस्वरजीवितम्
भञ्जनम् चेय्युमतारेनु नोक्कुमा–
नञ्जनवण्णञ्चिरकुम विरिञ्चुटन
ओतुयर्नीटुमता प्रियसाहस–
रसप्रकौतुकम् कण्टुकण्टङ्ङने
पिन्नेयुम् पिन्नेयुम् मेलाटटु मेलोटटु
तने नटप्नारवचलमानसर ।

आ युवबीरर निन नित्यरहस्यमा–
रायुवान् कन्नतिन्नेन्तु चेयूनू मवान ?
चाल्लुमो मत्य टे धीरजिनासये
वेल्लुविळियुकुम् महोद्धतम्गगमे ।

—१९३८

दिवस ने उत्साहित होकर अत्यन्त कुतूहल के साथ
अपना श्वेत रेशमी रुमाल बार-बार हिलाया।
काल अपने नील गगन के नयन विस्फारित कर
समुत्कण्ठित खड़ा रहा।
किन्नर मिथुन
जो मन्दगामी श्वेत मेघ-दला पर नग्न-देह लेटे
स्वप्नो में डूबे रहते है
ससभ्रम देखने लगे कि मानवा की धृष्टता
पर्वतसानु की गौराभ गरिमा पर पैर रख रही है।
"ऊँचे चढो, ऊँचे चढो,
जब तक कि सिद्धि के कुसुम-कोमल गात का
आलिंगन प्राप्त न हो !"
इन शब्दो के साथ कीर्ति-वल्लरी को अपने शरीर का
खाद देनेवाले दो तरुणा ने आरोहण प्रारम्भ किया।

उस पहाड के ऊपर
पख समेटकर झपकी लेनेवाला आकाश विहग
अपने विचित्र नील-पखा को फलाकर उडा
यह देखने कि उसकी
स्वच्छदता को भग करनेवाला कौन है यह !
वे अचचल हृदय तरुण
इस दृश्य को अत्यन्त कौतुक के साथ देखते हुए
बराबर आगे ही बढते रहे।

मानव की धीर जिज्ञासा को चुनौती देनेवाले,
हे परम उद्धत शृग !
बताओ तो
वे जो युवा साहसी तुम्हारे चिरन्तन रहस्य को खोजने आये थे,
उनका तुमने क्या किया ?

—१९३८

इस वर्ष दो उत्साही तरुणा ने हिमालय पर चढने का प्रयत्न किया था और उनमें से एक का पता नहीं चला था।

नक्षत्रगीतम्

एरियुम् स्नेहाद्रमा–
            मेन्टे जीवितत्तिन्टे
तिरियिल् ज्वलियक्कट्टे
            दिव्यमाम् दुःखज्वाल,
एन्किलुम्, नेट्टुवीर्प्पिन
            धूमरेखयाल् नूनम्
पङ्किलमाविल्लेंगुम
            देवभाग्यमाम् वानम्,
एन्किलुम् मदीयात्म–
            व्यापियाम् प्रेमावाक्कुम्
पङ्किटिल्लाजन्मान्तम्
            ज्ञानतिलेरिञ्ञालुम्।
एन् चितयिकल्तन्ने–
            याणु ञा, नेन्नालेतो
पुञ्चिरितिळक्कत्ते–
            प्पथिकन दर्शिक्कुन्नु।

वीणु ञानाकाशत्तिन्नत्यगाधतयिन्कल्–
त्ताणुपाथेयक्काम् मूर्च्छाधीनमा, यल्लेन्नाकिल्,
भस्ममायेक्काम्, तीरे क्षुद्रनामेन्नेप्पिन्ने
विस्मरिच्चेक्काम् कालम् एन्नालुमितु सत्यम्
जीवितमेनिक्काश्चूळ्यायिरुन्नप्पोळ–
क्कूविना वेळिच्चत्ताल् वेण्म ञानुळवाकिन।

—१९४२

नक्षत्रगीत

स्नेहार्द्र हो कर जलने वाली
मेरे जीवन की बाती में
सदा ही दुःख की स्निग्ध ज्वाला
प्रोज्ज्वलित रहे ।
किन्तु नहीं करूँगा मैं पंकिल
अपने निश्वासों की धूमरेखा से
देवताओं के गगन पथ को।
आमरण, नहीं बाटूँगा किसी को भी
अपनी आत्मा में व्याप्त ताप का
चाहे भस्म ही क्यों न हो जाऊँ!
मैं तो
दहकता रहता हूँ अपनी चिता के भीतर
किन्तु पथिक को दीखती है मुख में
मन्द हास की आभा।

हो सकता है मैं मूर्छित हो कर
गिर जाऊँ गगन की गहन गहराइयों में,
अथवा हो जाऊँ भस्मीभूत, क्षार-क्षार
और भूल जाएँ काल, मुझ क्षुद्र तारे को,
तथापि यह सत्य है—
जीवन मेरे लिए रहा धधकती भट्टी,
किन्तु उसके प्रकाश से मैंने उजियारा दिया धरा को।

—१९४२

नाळे

१

जन्मसिद्धमाम् पदम्
पुण्यलब्धमेन्नोर्त्तु
वन्मदम् भाविय्क्कुन्नो–
रुन्नतनक्षत्रमे !

वेम्पुरु ! विळरुव !
विरकोळ्ळुक ! नोक्कू,
निन्पुरोभागत्तता,
धीरतेजस्साम् 'नाळे' !

कूरिरुळ परक्कुन्नु
निड्डळतन्माग्यत्तोटे
परिटमुणरुन्नु
निड्डळतन् भयत्ताटे।

रक्तमामुट्टुप्पिन्मेल्
रक्तपुष्पवुम् कुत्ति
ध्यक्तवभवम् वन्न–
तेन्तिनाणेन्नो 'नाळे' ?

वेलतन् जयत्तिन्टे
पक्षिपक्काटिक्कूर
लीलयिल्प्परप्पिच्चु
पारिलेप्पुतुक्कुवान्,

निड्डळ धपटविन्नय
मादवुम् प्रकाशवुम
मड्डलिल्लिरटक्कुन्न
मन्निनु पकुक्कुवान्।

ओदक्कुयल

आगामी कल

१

अपने जन्म सिद्ध पद को
पुण्य-लब्ध मानकर
अत्यन्त अभिमान के साथ रहनेवाले ऊँचे तारो!
हो जाओ परिभ्रान्त,
पड़ जाओ पीले
कापने लगो भय से
देख लो तुम्हारे सामने आ पहुँचा है
वह वीर-तेजोमय 'कल'।

अन्धकार विलुप्त हो रहा है
तुम्हारे भाग्य के साथ,
विश्व जाग रहा है
तुम्हारे भय के साथ,
क्या तुम जानते हो
क्या आ गया है यह 'कल'
अपने रक्तिम कवच पर लाल पुष्प लगाये
अपने वभव को प्रकट करता हुआ?

तो सुनो—
वह आ रहा है
कम विजय की विद्रुम पताका को
लीलापूर्वक फहराकर
जग को नया बनाने के लिए,
दुनिया को बाँट देने के लिए
वे आमोद और प्रकाश
जिन पर तुमने अधिकार कर लिया है।

नालचु तारङ्ङळक्कु
पुचिरिक्कोळ्ळान् निन
कालभाक्करियिल-
लुम्पि मेल् विरय्क्कुनू।
पावमाम् कृषिक्कारन्-
त मुखमान दाचल-
पावनश्रीयाल् वेल्लु-
विळियक्कुम भवा मारे।
वेम्पुक ! विळरुक !
विरकोळ्ळुक ! नोक्कू,
निन पुरोभागत्तता
धीरकर्म्मावाम 'नाळे'

२

नेंचिटम् तुटिच्चिट्टुम्
कटलुम् रोमाचम मेल
तच्चिट्टुमवनियुम
हपमूकमाम् वानुम्
काणट्टे विचित्रमाम्
लिपियिल्क्कुरिक्कुम
कालत्तिन् विळम्बरम्
पूवषग्रवाळत्तिल।
नीलनीरदच्छेद-
रेखवळ्ळा नून-
मा लसल्प्रवाहत्तिन्--
चेम्मान पात्रत्ति मेल।
वानतु वायिय्क्कुवेन्
'मंगलम् प्रायिय्क्कुमू,
वानत्तिन् तापक्षाणुम्
सनजीविनत्तिनुम्।

वह युग
जो स्वयं को दो-एक तारकों के मन्दहास के उपयुक्त
बनाये खड़ा था
आज थर-थर काँप रहा है
सूखे पत्तों की कोरों पर।
अब भोले कृषकों के मुख
प्रस्फुटित आनन्द की पावन ज्योति लेकर
तुम लोगों को ललकारेंगे,
परिश्रान्त होओ, पीले पड़ो, काँप उठो
तुम्हारे सामने आ पहुँचा है
वह धीर-तेजोमय 'कल'।

२

देखें अब
यह समुद्र जिसका दिल धक धक कर रहा है,
और यह वसुधरा जो पुलकित हो रही है
और यह आकाश जो हृष्पमूक बन गया है,
काल की उस घोषणा को
जो पूर्व के क्षितिज पर
विचित्र लिपियों में
अंकित हो रही है।
उस मनोहर प्रभात के ताम्र-पत्र पर
ये जो दिख रही हैं
वे निश्चय ही मान-नीरद की रेखाएँ नहीं।
मैं पढ़ूँगा उस घोषणा को
'भगत हो
नील गगन के नीचे जीनेवाले
सारे जीवों को,

इल्लिनिद्द्रित–
यिप्रमातत्तिन् पोतिल्–

प्पुल्लिनुम् मरत्तिनुम्
तुल्यमाणवकाशम् ।

इल्लिनियसमत
तळिक्वर्गाम् कुरवकुत्ति–

मुल्लय्क्कुम् वानम् पुल्कुम्
मुविलिन् पर्णप्पिनुम् ।

शुद्धमाम् कुळिर्क्काट्टम्
स्वच्छमाम वेळिच्चवुम्

सिद्धमिच्छपालाक्कु ,–
मावश्रुविनाह्लादिप्पिन् ।

अ यर् तना घ्यांतिव–
लुल्लासम् कोलुम धयम–

मन्यमाम् नक्षत्रमे
निनविन्नलिनिन् स्थानम ।

वेम्पुक । विळरव ।
विरवोळ्ळुव । नाक्क

निनपुरोमागत्तता
विश्वजेतावाम नाळे' ।

३
नीतिनन् चुटुवण्णीर
तुटप्पान् वन्नू नाळे

नी तिवच्चानदिव्वु–
काण्टानुम् श्रुपीवल ।

पारिले मरतव–
पञ्चयानुटुप्पिच्च

पावम, भवानढ–
नमनमाम् वालम् पात्रा

ओटक्कुयल

आगे अब नहीं रहेगी दरिद्रता
इस प्रभात के स्वण पर
तरु और तृण दोनो का
समान अधिकार है।
आगे अब नहीं रहेगी असमता
यहाँ कुन्दलता और
गगनाश्लिष्ठ मेघा के दल
दोनो पल्लवित हो सकते हैं।
होवें आनन्दित सभी
सब को यथेष्ट मिल जायेगी
स्वच्छ हवा और विमल प्रकाश।
औरो की अधना में
आनन्दित रहनेवाले
रे धनमानी नक्षत्र
केवल तुम्हे ही इसमें स्थान नहा मिलेगा।"
घबडा उठो, हो जाओ परिश्रान्त
पड जाओ पीले
काँपने लगो भय से
देख लो तुम्हारे सामने आ पहुँचा है
वह धीर-तेजोमय 'कल'।

२

हे कृषक
तुम आनन्दित हो जाओ
आ पहुँचा है 'कल'
नीति के वेदनाश्रुओं को पोछने के लिए
तुमने वसुधरा को
मरकत हरीतिमा पहनायी
किन्तु स्वयं अद्धनग्न रहकर
अपना दिन बिताया।

नाटिन् कतिरिट्टुम्
वनवम नलकी , नाटो,
कूटिय नटत्तिन्
कुटि विट्टिरङ्डिञ्ञु ।
पुर्चिरि विटर्त्ति नी
पुल्पोटिप्पिलुम भाग्य–
वचितमपहृत–
मन्दहासम् निनवदनम ।
निन् निणञ्ञूटिल्लॅंकिल्
मरविच्चेने राज्यम् ,
निन नेटिट वोत्तिल्लॅंकिल्
मरवायेने लाक्म ।
निन् नट्टुवळञ्ञतु
नाटिन्टे भारममूलम ,
इन्नतु कुपड्ङ्तु
निन्टे भारत्तालने !
वालितन् नखक्षतम्
कोपुविन दन्तक्षतम
मेलिव पतियक्कुत
धयमेदिनियक्केन्ये
कुळिरुण्टाकुनील
कोळमयिर मुरुप्पील,
तळिरम् तारम चूटान्
कालवुम् लभिप्पीन
मीतितन् चुट्टुकणीर
तुटप्पान् वन्नू नाळे
नी तिरञ्ञानन्दिञ्ञु–
कोण्टालुम् वृपीवल !

—१६४०

तुमने देश को कनक-बालियाँ दीं
किन्तु देश ने तुम्हारी बेदखली कर दी
क्योंकि बढ गया था कर्ज का भार तुम्हारे ऊपर।
तुमने तृण-दलों के अधरों पर भी
मन्दहास खिलाया
किन्तु तुम्हारा मुख
सदा ही मुस्कान से वंचित रहा।
यदि न होती तुम्हारे रक्त में गर्मी।
तो यह देश ठिठुरकर सुन्न हो जाता,
यदि तुम्हारे ललाट पर
नहीं चमकते स्वेदकण
तो यहाँ सब बन जाता बयाबान,
तुम्हारी कमर देश के बोझ से झुकी
किन्तु आज देश तुम्हें बोझ मान
झुकता जा रहा है।
जो सहती बैलों का नखक्षत
और हल का दन्तक्षत
उस परम धन्य वसुंधरा को छोड़कर
और कहीं भी नहीं उगता पुलक
न होता भाग्य पल्लव-पुष्प धारण करने का।
आ पहुँचा है 'कल'
न्याय के तप्त आँसू पोंछने के लिए
हे कृषक
अब तुम पूर्णतया आनंदित हो जाओ।

—१९४०

विश्वहृदयम्

वन्दनम् शाश्वतविश्वहृदयमे !
सुन्दर भीकरमौलिकतत्वम !

कालम् पिरन्नतु तावकस्पन्दनम्-
मूलम् नवनवान्मेषस्वभावमे !
निर्भरानन्द विजृम्भितमाकिय
निन्टेयपारतयिङ्कलनन्तरम्
लोलम् स्फुरिच्चुपालव्यक्तसङ्कल्प-
जालमामुज्ज्वल 'गुळपटलि'कळ
दिव्यमक्तान विभक्तमाय् व्यक्तमाय्
नव्यप्रपचङ्ङळायि वळनुपोल् ।

लोकगोळङ्ङळ महासत्वमे, भव-
दैकविचारषट्पदङ्ङळल्लयो !
आवपणमेनु चालूवतायानाय-
मागङ्ङळतन नित्यसम्बन्धमायुवराम् !

निक्कुदिक्कुन्नु निल्कुन्नु मायुन्नु
सङ्कल्पमारो, भ्रवयिलाद्माय वान
सन्ततम् कोळमयिकर्णोण्पोकुन्नु निन्
चिन्तकळ कष्टकण्टाद्रनयननाय ।

विश्व-हृदय

हे शाश्वत विश्व-हृदय,
हे सुन्दर किन्तु भयकारी मौलिक तत्त्व
प्रणाम् है तुझे!

हे नवनवोन्मेषशील,
काल उत्पन्न हुआ है तुम्हारे स्पन्दन से
तदनन्तर स्फुटित हुईं ये नीहारिकाएँ
अव्यक्त कल्पनाओं की भाँति
आनन्द निर्भर होकर फैलनेवाली
तेरी अपारता के भीतर!
व्यक्त और विभक्त बन गयीं
ये ही दिव्य निहारिकाएँ
परिणत हो गयीं जगत के नाना रूपों में।

हे महासत्त्व!
ये सारे गोलात्मक विश्व
तेरे एक ही विचार के अंग हैं,
कदाचित् इन अंगों के नित्य सम्बन्ध का नाम ही है आकर्षण।

तुममें से पैदा होते हैं विविध संकल्प
तुझी में समा जाते हैं वे सब,
मैं जो उनमें से एक हूँ
तेरी चिन्तन धारा को देख-देखकर
पुलकित हो जाता हूँ
आँखें भर आती हैं मेरी।

निन्टे रक्तोष्मावुयरन्न सूयनुम्,
निन्टे सन्तोषम तिळड्डुन्न तिंकळुम्,
निन्टे विकासस्कोचड्डळोटोत्तु
नित्यम् विटनु चुरुड्डुम् समुद्रवुम्
तावक सकल्पभेदड्डळ–भावल्क–
पावनसौन्दर्यनिर्व्याजरेखकळ।

घोरदारिद्र्यवुम् घोररागड्डळुम्
घोरयुद्धड्डळुम निन्टे विनावुकळ।
नि मनोराज्यसौभाग्यमरियुन्न
जन्मने जन्मम, नमस्करिक्कुन्नु ञान!

वन्दनम् शाश्वतविश्वहृदयमे!
वन्दनम् सर्गस्थितिलयलीलमे!

—१९३८

तुम्हारे रक्त की ऊष्मलता से भरा सूर्य
और तुम्हारे आनन्द की चमक से भरा चन्द्रमा
तुम्हारे सकोच विकास के साथ
सकुचित और विकसित होनेवाला यह समुद्र
ये सभी ह तुम्हारी विभिन्न कल्पनाएँ
सभी ह तुम्हारे पावन सौन्दय की अकलक रेखाएँ।

घोर दरिद्रता,
दारुण व्याधियाँ,
भयानक सग्राम,
सभी तेरे ही तो स्वप्न ह।
जो तेरी कल्पना का सौन्दय जानता है
केवल उसीका जन्म ही जन्म है।
म प्रणाम करता हूँ तुझे!

हे शाश्वत विश्व-हृदय,
प्रणाम है तुमको!
हे सग स्थिति-लयशील,
वन्दना है तेरी!

—१९३८

सागरगीतम्

श्रान्तमम्बरम निदाघोष्मळस्वप्नाश्रान्तम
तान्तमारब्धक्लेशरोमन्यम मम स्वान्तम् ।

दृप्तसागर ! भवद्रूपदर्शनालब्ध–
सुप्तमेस्सारमावन्तल्लोंचनम् तुरक्कुन्न ।

नीयपारतयुटे नीलगभीरादार–
च्छाय , निश्राश्लेषत्तालेमनम जृम्भिक्कुन् ।

क्षुद्रमामेन् कण्णत्तालक्वेळक्कुमानाकातार
भद्रनित्यतटयुटे मोहनगानालापाल,
उद्रसम फणोल्लोलकल्लालजालम् पाकिव
रौद्रभगियिलाटिनिनिन्दुम् भुजगम !

वानम्, तनुविशालमाम् श्यामवक्षसिलक्कोत्ते–
ह टानन्दमूर्च्छाधीनमङ्ग्ने निलक्कोळवु !

तत्तुरेश्नात्माविवल् !–
क्कोत्तुवेन हृदन्तत्तिर् !
उत्तुगफणाप्रति–
सेश्नेयुम् वहिन्नातुम् !

ओटक्कु

सागर गीत

यह शान्त गगन
निदाघ के उज्ज्वल स्वप्नों से आक्रान्त है
मेरा अवसन्न हृदय
अपने बीते हुए अवसाद विषादों की
जुगाली कर रहा है।
हे दर्प-पूर्ण सागर,
तुम्हारे इस रूप को देखकर
मेरी अर्द्धसुप्त आत्मा अपने आंतरिक नयन खोल रही है।
तुम असीमता की
नीलिमापूर्ण उदार गम्भीर छाया हो,
तुम्हारा आलिंगन पाकर
मेरा मन पुलकित हो रहा है।
जिसे मैं अपने क्षुद्र कानों से सुन नहीं पाता
उस मंगलमय चिरंतन के
मोहन गानालाप की बीन सुनकर
हे भुजंग,
तुम अपने कल्लोलित उत्तुंग तरंग रूपी फनों को फैलाकर
अत्यंत आनन्द के साथ
रौद्र सुंदर नर्तन करते हो।
यह गगन अपनी छाती में तुम्हारा दर्शन पाकर
आनन्द-मूर्छना में लीन होकर खड़ा है।

तुम मेरी आत्मा में नर्तन करो
मेरे अन्तरंग में दर्शन करो
उत्तुंग फनों के ऊपर
मुझको भी वहन करो।

नीरदलतागहम् पूकयिप्पोपुतन्ति
नीरवमिरियक्कुम् रागविभ्रममेन्ति ।
हृदयम् द्रविप्पियक्कुमेतारुज्ज्वलगान-
मुदयल्लयम् मवानालपियक्कुनू स्वरम् ?
कनकनिचोळमूर्धानम्नारस्साय् मेवु-
मनवद्ययाम सन्ध्यादेवितन कपोलत्तिल,
क्षणमुण्टालिक्काराय मितुम्न तारावाष्प-
कणमाम्ननिवाच्यनव्यनिवतिविन्दु !
अडिडल्निन्नरिञ्ञ् वान पूण्णमामात्मार्विकल
तिळिङ्डुमनुभवम् पकरम कलागाली ।
निरुपगायक ! पटिप्पियक्कुकेन् हृलस्पन्दत्ते-
स्सरयजीविनाखण्डगीतत्तिन् ताळक्रमम !

जीवितम् ग नम, कालम्
ताळ मात्माविन् नाना-
भावमारारो रागम् ,
विश्वमण्डलम् लयम् !

अम्पिळिच्चयकत्तिल् नुरयुम् दिव्यानन्दम्
अम्पिलेन्तिक्कोण्टी मुक्कपचमि मन्दम् ।
आनतमुखिपुटे नीलभ्रू निपतिच्च
पानभाजनम् वेम्पुम् करतालस्वयम् वाङ्डि,
फेनमञ्जुळस्मितम मलर्नु नवमुग्
ध्यानमेन्निये पाटुम हृपजमितसत्व
मावत्ताल तरगायमाणमाम् विरिमार-
त्ता वधु तल चाच्चु निल्क्कुन्नु लज्जामूकम् ।

अनुराग विह्वला सन्ध्या
नीरद लता-कुंज में प्रवेश कर नीरव बठी हुई है।
हृदय को द्रवित करनेवाले किस गीत का आलाप
तुम तन्मय होकर कर रहे हो?
सुन्दरी सन्ध्या देवी का स्वर्णांचल खिसक गया है
किंचित् अनावृत हो गया है वक्षस्थल
कपाल पर चमक उठी है आंसू की तारल-बूंद
मानो अनिर्वचनीय नवल निवृत्ति की कणिका है यह
जो ढुलकने ही वाली है!
अपनी परिपूर्ण आत्मा के भीतर एकत्र अनुभूतियों को
अभिव्यंजित करने की शिल्प चातुरी
तुम्हीं से मने सीखी है।
हे चिरन्तन गायक!
हृदय के स्पन्दनो को सिखा दो
शुद्ध-सत्य जीवन के अखण्ड गीतो की ताल-थाप।

जीवन ही गान है,
काल ही ताल है,
मन के विविध भाव ही विभिन्न राग हं
समूचा विश्व-मण्डल ही लय है।

मृगांक चषक में फेनिल आनन्द की मदिरा भर,
मन्द चरण धरती हुई शुक्ल पंचमी आ गयी
तुमने अपने आतुर तरंग-करो से ले लिया वह चषक
जिस पर विनम्रवदना सुन्दरी की नीली आँखो की छाया अंकित है,
तुम पीते हो उसे फेना के मन्द स्मित के साथ
अन्य सारी चिन्ताएँ भूलकर गान करनेवाले
हे हर्ष-जृम्भित महासत्त्व!
तुम्हारे भाव-तरंगित विशाल वक्षस्थल पर
वह मुग्धा लज्जामूक होकर सिर टिकाये खडी है।

अल्लणिक्कुपलितन् दलयवेणियिलनिनुत–
फुल्लमामारायिरम् मुल्लमाट्टुकळिता,—
विम्बितम् ताराजालमाविल्ल ननम्—निन्टे
कम्पितस्निग्धोरस्सिल्क्कोपिन्जुल्लसिक्कुनू ।

कामुक ! मुकरक,
निन्ने मूटुक, आना–
प्पूमुटिच्चुग्ळिनु
सौभाग्यमाशसिप्पू

नि.यिल निलीनमायकरुपिन्जू पाल्म चानुम् ,
हृदम ! तनिच्चायिच्चमन्जू नीयुम आनुम्,
निश्चुटेयगाधमामाशयरहस्यत्ते–
योनु नीममात्माविन कण्णत्तिल् मनिच्चालुम् !
धीरमामोल परिवत्तनोत्साहत्तिन्टे
गौरवम विडड्ड्म् गानवीचिकळुच्चण्डारमन्,
जीवितपरिमितियेतुमे सहियक्वात्त
दैविकास्वास्थ्यम् पूण्ट निन्निल्निनतुवेलम्
स्थितिपालनम् नित्यधम्ममाय व्याख्यानिच्चतुम्
क्षितियेस्समुल्वक्कम्पयानकुमाररनू
निश्चयम्, स्वल्स्देगम् वेपमुण्डानतुनुण्ड्
निश्चलनभश्चरनम्नसाम्राज्यत्तिल् ।

क्षीणमामन्नात्मावु
तकर्नोल् तनर्नोट्टे,
वीणयावनुक भव–
दात्मम् गानम् चेयूवान् !

—१९४२

अस्त-व्यस्त-सी उसके ढीले जूड़े से खिसककर
सौ-सौ प्रस्फुटित कुन्द कलिकाएँ
तुम्हारे कम्पित स्निग्ध वक्षस्थल पर झर रही हैं
निश्चय ही वे नहीं हैं प्रतिबिम्बित तारिकाएँ!

हे कामुक चूम लो उस वेणी को,
आच्छादित कर लो उससे अपने को।
मैं उस मनोहर कबरी भार को
सौभाग्य की शुभ कामनाएँ देता हूँ!

निद्रा में विलीन हो गये हैं अवनी और आकाश!
हे द्रुम, अब जागे हुए हैं केवल हम और तुम।
तुम अपनी आत्मा के अगाध भावों का रहस्य
मेरी आत्मा के कानों में फुसफुसा तो दो
जीवन की परिमिति को किंचित भी सहन न करनेवाले
हे समुन्नत चण्ड-हृदय!
स्वर्गिक अतृप्ति से भरे हुए तुम्हारे मन से
धीर शान्ति की उत्साह भरी नयी-नयी
गौरवमय गान-वीचियाँ उत्पन्न हो रही हैं
जो प्रकम्पित कर देती हैं वसुधा के उस मन को
जो रूढ़ि संरक्षण को ही सनातन धर्म समझता है।
निस्सन्देह तुम्हारे ये सन्देश अकर्मण्य नश्वरता से भरे
नक्षत्र-साम्राज्य में कम्पन पैदा कर रहे हैं।

अगर मेरी प्रक्षीण आत्मा
खण्ड-खण्ड हो जाये तो हो जाये
तुम बना लो उसे वीणा
झंकृत हों जिसमें तुम्हारे अन्तर्भावों के गीत!

—१९४२

प्रतिकारम्

पोनुचिङङत्तिलत्तिरु-
वाणमाणिन्ने , न् नाट्टिल-
निम्नुमेन्नया वातम
दूरेयाम् आनेन्नालुम
मामवहृदन्तरम
चिरकिट्टुटिवन्नुन्नि-
ता मनोहरमाय
मलनाट्टिलेयूक्वेत्तान् ।
शान्तिये विळम्बरम्
चेय्युमारपञ्ज आ-
णेन्तिटुम चेरमार् तन
वेतुचिह्नमाम चापम्
इम्नुमा दलयायत-
मलयाचलपवित
मिम्नुमेन् नाटिन्स्प-
मोम्मयिल वरयुक्कुम् ।

अङ्ङोरु भरवत—
मवुम्नि^ तापत्ताण-
तेङ्ङुवळ मुट पिटि-
च्चीटुमेन् चेरुकुटिल् ,
लीलयिल् ग्रामत्तिटे
पच्चप्पट्टि मेल् मुतु-
मालयोन्नणियिच्चु
मुळिप्पाटटुव ळाटे

प्रतिकार

आज
स्वर्णिम 'सिंह' मास का 'तिरुवोणम्'[1] है
मैं
अपने गाँव से कितनी दूर हूँ।
मेरा मन,
पर्वतमालाओं से घिरे
अपने उस मनोहर प्रदेश पर पहुँचने के लिए
पंख फड़फड़ा रहा है।
शिथिल आयत मलयाचल पंक्तियों में
और वंकिम सागरतीरों से सुशोभित
वह मेरा देश!
आज भी
मेरी स्मृतियां
चेर सम्राटों के ध्वजचिह्न धनुष का चित्र खींचती हैं
जिसकी ढीली प्रत्यंचा
मानो शान्ति की घोषणा कर रही है!

दूर मरकत पर्वत की तलहटी में
मेरी कुटिया है
जिस पर छत्र तान रहे हैं
नारियल के पेड़,
ग्राम के हरित कौशेय को
लीलाभाव से मुक्ताहार पहनाती, गुनगुनाती

1–तिरुवोणम्—'ओणम' केरल का प्रसिद्ध त्योहार। 'तिरुवोणम्' वास्तव में *'श्रावण' का ही तद्भव रूप है। यह पर्व 'सिंह' मास में,* अगस्त सितम्बर के बीच, पड़ता है।

चिरिञ्ञु पुळञ्ञुका-
ण्टावपिक्केत्तिञ्ञुटि् ट-
त्तिरिञ्ञु पटिञ्ञाटट्टु
पाकुन्नुण्टोरु चोल ।

कोञ्चुतोट्टियिल्प्पूवुम्,
चेंचुण्टिल्प्पाट्टुम्, नेञ्चिल
वाञ्चिट्टुमाह्लादवुम्
निरञ्ञ पोनकुञ्ञुङ्ङळ
पूक्कळत्तिनुचुट् टु-
मोणमल्लयो—मूटि-
निल्कवे, मतिमर-
न्नङ्ङनम्ममार नोक्कुम् ।
अच्चु चिट्टम्मायिप्पाळ—
वण्टिट्टु आनेन कोचुम
पिच्चुपैतलिन मुखम्,
नयनम ननयुन्नू ।
मारुविन् मलकळे ।
मायुविन मटलकळे ।
नीरमेन्मनम चेन्ना
वदनम् मुकरट्टे ।

अच्चु पोन्नाणम् पायी,
विळक्कुम्, स्मितत्तिनाल्-
ञ्चोटित्तळिर वक्तुम्,
तेळियिच्चुकोण्टोराळ
लोलमामोरु वळ
मिन्नुपालित्तळङ्ङुम्न
पेलवकरमुवोण्टु
विळम्पुम् चोरुण्णाते ।

मोटक्कूपस्

किलकारती, बल खाती हुई
वह रही है छोटी सरिता
जो उस प्रदेश में पहुँचकर
पश्चिम की ओर लौट पड़ती है।

छोटी-छोटी टोकरियों में फूल लिये।
मृदुल अरुण अधरों में गीत लिये
और मन में अमित उमंग लिये
जब छोटे-छोटे प्यारे-प्यारे बच्चे
फूलों की रंगवल्ली के चारों ओर
इकट्ठे होते हैं—
क्योंकि आज 'ओणम' है न ?—
तो माता पिता सुध-बुध भूलकर
मुग्ध खड़े देखते हैं।
अपने तुतलाते बच्चे का मुख देखे
आज पाँच सुनहले 'ओणम्' बीत गये !
हाय मेरी आँखें गीली हो जाती हैं !
हट जा पहाड़,
पट जा सागर
मेरे कसकते हुए मन को
वहाँ पहुँचकर वह नन्हा-सा मुँह चूमने दे।

अपने कोमल हाथ से दीप को
और मन्दहास की दीप्ति-से मनोहर अधर को
प्रकाशित करती हुई
बिजली-से कौंधनेवाले कंकण से सुशोभित
मृदुल कर से
वह जो खाना परोसती थी
उसे खाये
आज पाँच सुनहले 'ओणम्' बीत गये।

कुम्पिटुमाफिक्कतन्
मुटियिल्च्चविटटुवान
वेम्पुनयूरोप्पिन्टे—
युद्धपादम् पोले
भूपटत्तिलेयुक्कोग्नु
नोविक्यालक्काणा मद्ध—
द्वीप' मोन्नतिलोरु
कुन्निलाणिवनिप्पोळ।

मुग्धवेण्परवक—
ळिटयिल्प्पारम नील—
स्निग्ध नीरदमाल—
यल्लेटें मेल भागत्तिल्,
तीमप पोयिच्चुग्र—
दशनम् पिहरिक्कुम्
व्योमयानौघम् चपुम्
पीरक्पिप्पुक्यत्रे।
धुत्तनामोरादायाल्—
प्पुळक्कम कलर्न्नीप—
द्रुक्तमायुत्तीरुम् नाटिन्
निम्मलकपालमुपोल्
चेन्नेल्लाल् चेम्मेरुम
पाटङ्ङ्ळल्लत चुट्टुम्,
चेन्निणम् नुरकुसुम्
युद्धभूमिक्ळत्रे।

वीरकीर्त्तियाम् मूटल्—
मञ्जुपाटङ्ङवानल्ल,
घोरयाल् साम्राज्य श्री—
तन् कपल् पूग्गानल्ल,

ओटक्कुषल

मं इस अद्ध-द्वीप के एक टीले पर
पडा हुआ हूँ
जो नक्शे में दिखाई देता है
योरोप के उद्धत चरण-सा
अफ्रीका के सिर पर
पाँव रखने के लिए आतुर झुका हुआ-सा।

मुग्ध सारस पक्तिया से अलकृत
स्निग्ध नीरदमाला अब मेरे ऊपर नही चलती
अग्नि-वर्षा करते हुए विहार करनेवाले
उग्रदर्शन व्योमयानो से घिरी धरा पर
तोपो की गरज ही चारो ओर सुनाई पड रही है।
नवीन आशा के जागरण से पुलकित होकर
कपोलो पर हल्की-हल्की लालिमा धारण करनेवाले
जन्मभूमि के निमल आनन-से न दिखाई देनेवाले
पके धान की अरुणिमा-से शोभित केदार यहा नही है
किन्तु फेनिल रक्त से भरी
युद्धभूमियाँ चारो ओर फली ह।

मुझे लालसा नही कि
वीरकीर्ति की नीहारिका मेरे चारा ओर फैले,
म नही चाहता कि
रक्त से साम्राज्य-लक्ष्मी के परो का तपण करूँ,

वल कोय्वत्तिन् कनि
　　वाडिडञ्चेन् कुट्टुम्बत्तिन
निलयोनुयत्तुवा–
　　नल्ल मामकमोहम्—
मामकमोहम्, मट टु
　　खण्डऊडळ्क्केल्लाम् वंनळ–
क्वाममेकिय महा–
　　सत्त्वयाम यूरोप्पिने,
निजवम्मत्तिन् केट्टिल–
　　निम्नु, चऊडल वन्न
भुजत्तालपिक्कुमान—
　　इ त्यतन प्रतिकारम् !
एकिलुम् विळरिय
　　कविळिल्कोलुम कण्णीर
फॅकतिर विळविरले
　　प्रभयाल् प्रकाशिक्के,
मगळाचारत्तिनु
　　'पत्तुग्नू' पालुम् चूटा–
तगलामण्यम् मात्रम्
　　मेलिञ्ज मेष्पिलञ्चार्त्ति
उरळयुरुट्टिय–
　　तुण्णानुम् मरन्निल–
यूक्करिकत्तिरियुक्नुमा–
　　हीनदानरपम्
मामकहृदन्तत्ते–
　　यद्डोटट् वलिक्कुग्नू,
माधविन् मलनळे !
　　मायुविन् पटलवळे !

—१९५४

मुझे मोह नहीं कि
गला काटने की मजरी लेकर
अपने परिवार की दशा सुधारूँ,
मेरी लालसा तो बस यही है कि
मुक्त कर दू पाप-कर्म के बंधन से
इस महासत्व यूरोप को
जिसने अन्य भू भागो को बेडी पहनायी है,
अपने शृखलाबद्ध हाथो से ही।
किन्तु
अपने पाण्डुर कपालो पर अश्रुकण ढुलकाती
जो दीपक की अरुण रश्मि म और भी चमक उठे हैं,
जिसने मगलाचरण के लिए अपनी वेणी में
'दशपुष्प'[1] तक नहा लगाये
जिसने अपने कृश शरीर पर
केवल अग-लावण्य की भषा ही पहनी है,
जो केले की पत्तल के सामने
हाथ का कौर हाथ ही में धर
दीन मूर्ति बनी बठी है—
वह मुझे खीचे ले जा रही है अपनी ओर—
हट जा पहाड,
पट जा सागर!

—१९४४

१—मगलाचरण के लिए स्त्रिया दशपुष्प वेणी में लगाती हैं।

रक्तबिन्दु

ई निणक्कणम नोक्कु,
गौरवण्णताल्द्ध य–
मानियाय् मुखम कन–
प्पिच्चें पुम् मुग्घात्मावे ।

सगरम् मोहिक्कुम्मो–
लॅंकिलुम लोकत्तिन्टे
मगळम् वळत्तुवान्
धम्मत्तिन् विळि केळक्के,
गीतत्तन राज्यत्तिक्कल्–
निम्नुमी विदूरत्ते–
क्मूतल नटुक्कटल्–
क्करयिल स्वयमेत्ति,
जीवितयनम् चेय्युम्
योद्धाविन् हृदन्तमा–
णी विगिष्टमाणिक्यम्
विळ्युम् दिव्याकरम् ।

ईयकृत्रिममाय
चुवप्पिल्क्मीदत्वत्तिन्
छाययो नरास्यत्तिन्
रेखयो काण्मीलॅंक्किल,
इनियुमितिम्नोप्पम्
लोत्रपोय्पत्ति ॸ
हनियिलित्तरञ्ञिटट्टु
मट्टोमु नेटीलॅंक्किल

ओटक्

रक्त-बिन्दु

अपने गौर-वर्ण पर
अपने को धन्य माननेवाले
सदा मुह चमकाये फिरनेवाले
रे मूढ़ हृदय,
देख तो इस रक्त-वर्ण को!

जो चाहता नहीं था युद्ध
किन्तु सुनकर धर्म की पुकार
जा पहुँचा
गीता की इस पुण्यभूमि से दूर
भू-मध्य सागर के तट पर
जग के मगल की अभिवृद्धि के लिए,
जीवन का यज्ञ करनेवाले
उसी वीर योद्धा का हृदय है
वह दिव्य सागर
जहा से उपजा है यह विशिष्ट माणिक्य।

यदि नही दिखायी देती है
इसकी अकृत्रिम अरुणिमा में
भीरुता की छाया, या
नैराश्य की रेखा,
यदि नही मिलती है खोजने पर भी
विश्व-पौरुष की खानो में
इसकी दूसरी जोडी
तो—

कान्तिमलुक्कोटीरत्तिल्–
ज्वात्तट्टे जयलक्ष्मि ,
शान्ति–लोकत्तिन शान्ति––
याणितिन विल पक्षे ।

—१९४३

धारण कर ला विजय-लक्ष्मी
इसे अपने कान्तिमय किरीट में
किन्तु इसका मूल्य है–
शान्ति, विश्वशान्ति !

—१६४३

आरामत्तिल्

चेन्नु आनारामत्तिल्
नव्यमाम प्रभातत्तिन्
पोन्नुवाग्दानम् कोण्टु
दिव्यसुखम् तुटुत्तण्पोळ् ।
चिन्नमाम् चिलंतेतन्
वलयोलानाशत्ति–
लेत्रयुम विशालमा–
युल्लमियक्कुन् तोप्पिल् ।
स्वीयमाम साम्राज्यत्तिन
यलवुम् वपुल्यवु–
मायतगवम् नायिक–
क्केटुपाटेल्लाम् नोक्कि,
वलयिल्क्कुटुङ्डित्तन–
थिरक्कोतनक्कुवान्
वलयुम् पूप्पाट टतन्
धिक्कारम सहियुक्काते,
'चालुक ळिक्कटयिला–
णेन्टु दिक्कुवळ , नाथ–
मेलुक्कित्नाप नाळु –
मन्नभावनयोटे,
अन्तरीक्षत्तिन् वण्णार —
कोण्टु मुतुवळ चातुम्
तन्तलस्थानत्तिल —
लेकदासनमायि,
वानिमे मरञ्चुनाण्टङने वाणू वीर–
मानियाम् तन्निर्म्मातावुमल्पमाम् कीटम् ।

उद्यान में

नव्य प्रभात के स्वर्णिम वाग्दान से
दिशाओं के कपोलों पर अरुणिमा छा गयी,
तभी मैं आ पहुँचा उद्यान में
जहाँ फूलों की क्यारी में
एक विचित्र-सा मकड़ी का जाला
फैला हुआ था अन्तरिक्ष में
खूब चौड़ा।
वहीं बैठा था मकड़ा
करता था अपने इस साम्राज्य के
बल और वपुल्य का निरीक्षण
अत्यन्त गर्व के साथ—
कहीं भी नहीं थी कमी
उसकी सुरक्षा और दृढ़ता में।
जाले में फँसी तितली
आतुर थी अपने पंख फड़फड़ाने के लिए-
उसकी यह धृष्टता ? कैसी असह्य!
मेरे पाँवों के नीचे हैं आठों दिशाएँ
मेरा साम्राज्य है सतत और अक्षय
इस अहम्मन्य भाव को मन में लिये
बैठा था आकाश को आवृत किये
जाले का साम्राज्य निर्माता
एकाधिपति दर्पी उग्र कीड़ा
अपनी उस राजधानी में
जिसे सजाया था उसने अन्तरिक्ष की अश्रु-कणिकाओं से
मोतियों की पच्चीकारी की तरह।

ओननङ्डियालप्पो—
ळरियाम् , वचिच्चीटा–
वृम्रतो निरालस्य–
न्नूरमाम् कण्णाक्कानुम् ।
निद्रये त्यजिच्चीटु–
मन्तरीक्षत्तिम्रधा
क्षुद्रजीवितन् दप्पम्
सहिप्पान् साधियक्कातायू ।
केवलमतिन् नेटु–
वीर्प्पिनाल् नूराम् चीन्ती
पाप यल, चिलन्तित–
न्नभिमानत्तोटोप्पम ।
ञाननुस्मरिच्चुपोय
कालत्तिनुपर्यप्पकल्
मानवन् विरचिच्च
साम्राज्यमोरोन्नप्पोळ ।

—१९४३

कही हुई यदि थोडी-सी भी आहट
तो जान लेता था वह
कौन कर सकता था छल
उसकी निरलस क्रूर दृष्टि से ?
त्याग कर निद्रा जब उठा अन्तरिक्ष
तो सह न सका उस क्षुद्र प्राणी के दप को—
उसके एक निश्वास मात्र से
छिन्न भिन्न हो गया वह अनमोल जाला
और उस मकड का दप !
उभर आयी मेरी स्मृतियो मे
उस प्रत्येक साम्राज्य की कथा
जिसे मानव ने रचा
काल के वितान में।

—१९४३

कोच्चम्म

उम्मर्त्तिळममणि–
            त्तिण्णमल मेल्लेक्कोचि–
च्चम्मवेच्चोम् चेरु–
            पूच्चयेक्कळिप्पिच्चुम
मिनिट्टुम् वेळ्ळिक्किरण–
            त्तिक्लेप्पालेतानुम्
तन्निटम करम्कण्टु
            तट्टविक्कुटिप्पिच्चुम,
मेविनाळोरु मक,
            पिन्निलेज्जनालव्वि–
ल्ला विलासिनी रूपम
            भगियिलेपुतवे ।

उच्चयामवरत्तुळ्ळि–
            वन्न्निवेळळवुम्कूटि–
प्पिच्चविट्टाते, वाटि–
            प्पोयकुम्पिळुमायि,
तेल्लु दूरत्ताय निल्पू
            दुभिम्मम् मासम कास्ति–
ट्टेल्लुमान्नमायत्तीन्न
            यावक्कुमारवन ।

नाविनाल् नुपयुग्रू
            पाल नुकर्निट्टुम् धय–
जीविये क्षुधाजड–
            दृप्टियाल् वीक्षिक्कुम्नु

कोचम्मा[1]

वह बठी थी विलासिनी वनिता,
बरामदे के चमचमाते फर्श पर
अपनी छोटी-सी बिल्ली को
पुचकारती, चूमती
चादी की चमकीली कटोरी में
दूध पिलाती
बायें हाथ से उसकी पीठ सहलाती।
पीछे की खिडकी का वह शीशा
उस विलासिनी के रूप का
और भी सुदर आलेखन कर रहा था।

थोडी दूर पर आगन में
खडा था एक याचक बालक
दुर्भिक्ष ने उसके मांस को कुतर-कुतरकर
हड्डियाँ शेष छोड दी थी
दोपहर तक घूमा था बेचारा
किन्तु नही हुई थी नसीब
माँडी की बूद तक उसे
मुरझा गया था उसके हाथ का दोना भी।

दूध पीनेवाले सौभाग्यवान जीव पर
वह क्षुधा से जड बनी अपनी दृष्टि दौडाता
और अपने मुह में
खाली जीभ को घुमाता–

---

1 रईस घराने की विलासिनी नारी।

मानवकुलत्तिल् व–
भेन्तिनु पिरन्नेनु–
तानवन् विचारियक्क–
नकण्णुकळ नलङ्डुनु
कम्मसाक्षियाम कालम्
वञ्चित्रम् वेळिञ्चत्तिन्–
नेम्मयेर ोट्टुम् तूवेण–
पटत्तिल्पकत्तवे,
आञ्व वेळक्कयालेन्तो
तमुत्तम् तिरिञ्चाळा–
क्कोञ्चम्म काटि टल्त्तण्टो–
मुलयुम् तण्टार पोले।

पुरिचम् चुळिञ्चुम्रम्
गज्जिञ्चाळ "वटमुपा
करिमोन्तयुम्कोण्टे न्—
मल्लियक्कु' कोति पट ट म।
मोळिलेयक्कवनोपु
नोविकना ना नोट्टतिन
काळिट्टुम् चूटिलद्दवम्
पारिञ्जुपोयीलल्ली ?
ओम्नवन नट्टुतायि
वीप्पिट्टान् , धर्मतिन्टे–
मुन्नतमणिध्वजम्
कुलुद्दिङ्प्पोयीलल्ली ?
माञ्जुपोयवन मन्दम्
मु' टत्तुनिन्नुम , वञ्चि
पाञ्ञु तनूवसालमेल
मयङ्डानूवक्कीलल्ली ?

—१९४४

क्या लिया है मने ज म मानव वश में ?"
सोच-साचकर उसकी आँखें कलुषित हो रही ह
काल ने, जो साक्षी है कम का,
उस बालक का चित्र
प्रकाश के सूक्ष्म धवल पट पर अंकित कर दिया।
शायद कानो में कोई पडी हो आवाज
हिल गयी विलासिनी
देखने लगी मुह घुमाकर
जसे डाल गयी हो कमल की डाल
हवा के झाँके स।

भौंहो को तानकर
चिल्ला उठी वह उग्र स्वर म
"निकल जा कलमुहे
मेरी 'विल्ली' को तरी नजर लग जायेगी!"
बालक ने एक बार आकाश की ओर ताका
क्या उसकी दृष्टि की धधकती आग में
ईश्वर स्वय जल तो नही गया?
उसने एक बार लम्बी सास छोडी
क्या इससे धम का ऊँचा मणिध्वज काप तो नहा गया?
बालक धीरे धीरे आगन से हट गया,
नारी ने आराम-कुरसी पर अपनी पीठ टिका दी—
झपकी लेने में देर हो रही है न!

—१९४४

आ चोद्यचिह्नम्

पोनु ञान पाटत्तेयक्कु नगराराभत्तिक्ल—
निन्नु मीस्सायाह्नत्तिन ओण्णमाम् प्रकाशत्तिल् ।
शान्तमाय्, विशालमाय एन्नालुम वरण्टरे
क्लान्तमायुक्काण्म् पाटम ग्रामीणचित्तम पोल ।

स्नेहपूर्णमाम् नाट्टिन—
पुरत्तिन् नट्टुवीर्प्पेन्—
देहत्तिलेट्ट वेन—
लन्तितन् चुट्टु काटि टल्
चूपवे वयलिट्ट
मक्कतु मावुम प्लावुम्
वापधुमुमूलम मर—
क्कातुङ्ङम कुटिलुक्ळ
ओमु दीनमाय नोक्कि—
प्पुचिरिक्कोण्टुमक्को
निन्नु पण्टेप्पो तेच्च
कुम्मायम मुक्कालुम पोय ।
पक्लोन पटिञ्ञाटट्टु
चान्ञप्पोल वरिक्कोलम
नुक्वुम् घुमघुवा—
ट्टेत्तिय कृपिक्कारन्,
चालुक्ळेट्टक्कुघु—
ट्टप्पापुम् चटञ्चेल्लुम्
नोलुमामेरनिन—
ञ्चुक्किच्च वय्यालुति ।

यह प्रश्न-चिह्न

सन्ध्या के ढलते प्रकाश में
पार कर नगर के उद्यान को
मैं बढ चला खेत की ओर
दिखायी दिया खेत
ग्रामीण हृदय की तरह
शान्त विशाल, किन्तु ऊजड और उदास।

निदाघ की सन्ध्या का गरम-नरम झोंका
मेरी पीठ पर पडा
जैसे स्नेहिल ग्राम का निश्वास।
खेत के किनारे चारों ओर
आम, कटहल और केले के पेडों में
छिपी सिमटी झोंपडियाँ—
जिन पर पुता गारा झड चुका था—
दीन दृष्टि से देखकर मुस्कुराती खडी रहीं।

दिवाकर पश्चिम की ओर ढल चुका था
लेकिन यह किसान
आया था खेत पर हल का जुआ कन्धे पर उठाये
अब भी जोत रहा है हल
अपने दुबले हाथों से
धकेले जा रहा है बैलों को
जो क्षीण होकर रह गये हैं मात्र हाड-चाम के ढाँचे।

वेलये, द्दयितय—

प्पोलिन्नुम स्नेहिक्कुन
शीलमुळ्ळोरास्साधु—

तन वळन्ओर निपल्,
ईविधम् निजाह्लादम

वट्टतारेनारायुम
जीवितम् कुरियक्कुन्न

चोद्यचिह्नमल्लल्ली ?
तळरुम क्रूपीवलन्

तन्टे मुम्पिलान्चिह्नम्
वळरुनतायुत्तान्नो

वरम्पुम कूट्टाक्कात ।
एन्तिनाणिरुट्टिनाल्

मायक्कुवान् भावियुक्कुन्न—
तन्तीरीम्मम ? कण्टु—

कपिञ्ञ क्रूपीवल्न् ।

—१९४४

जिसके लिए काम पत्नी की तरह प्यारा है,
उस किसान की परछाइं
पड रही है खेत पर।
यह परछाइं
कहीं वह प्रश्न चिह्न तो नहीं है
जिसका उत्तर वह अपने जीवन द्वारा खोज रहा है
—'कौन है मेरे सुखों को चुरानेवाला?'
मुझे लगा कि
श्रमश्रान्त कृषक के सामने
बढ़ता ही रहता है यह प्रश्न चिह्न
सारी मेडों की सीमाएँ लाँघकर,
हे अन्तरिक्ष
क्या करना चाहते हो अदृश्य इस प्रश्न को
अन्धकार की चादर डालकर?
निश्चय ही
किसान ने उसको देख लिया है।

—१९४४

मुत्तुकळ्

जीवितसमुद्रत्तिल्—
　　　　कण्णुनारिनालुप्पु
ताविन पल महा—
　　　　सम्भवमिरम्पवे,
धीरमाय् प्रवर्त्तियक्कुम्
　　　　चित्तङ्ङळ तान वाक्कुम
घोरतन पणवळांल
　　　　पविपम रचियक्कुन्नु
कोञ्चुराप्द्रत्तेत्तिन्नु
　　　　वीक्कुम वन्राप्न्त्ति—
नुञ्चललक्कोट्टिुम्पाम
　　　　चितम्पल् तिळङ्ङडुन्नू ।
कालत्तिनुळ्ळमवयिल—
　　　　कक्कोळवताकिलुम तीरम्
काणात्ताक्कटलिन्ने
　　　　निम्नमामारिटत्तिल् ।
चिप्पियाय चरिक्कयाम्
　　　　नित्यगान्तिमङ्ङेन्नु
तप्पियुम तटवियुम्
　　　　व्यानुलम कविचित्तम् ।
जीवितमतिनिटमक्केत्तनाणतिलावा
पाविम्नतीक्कूत्त सत्यत्तिन् तरिकळ ?
एत्रमेलिप्पटञ्ञालु मन्नुपाकुन्निल्लेन—
त्लत्रमेलिव नटन्नवम नावियक्कुन्नु ।
मूटुक हृदयम मुग्धभावनकाण्टी
मूकवेदनकळे मुप्पु वन—मुत्ताक्कू ।

—१९४५

मोटक्कुरल

मोती

जीवन-सागर में
जब खारे आमुओं से निर्मित महान् घटनाएं
उमडती-गरजती ह
तो धीर-साहसी कम निरत हृदय
अपना रक्त स्वय बहाते ह
और उससे प्रवाल का निमाण करते ह।
छोटे राष्ट्रों को निगल निगल कर
जो मोटे बन गये हैं बडे राष्ट्र
उनकी चचल ध्वजाओं में चोइण्टे
चमक रहे ह।
जीवन-सागर सीमातीत है सब के लिए
किन्तु काल के लिए है वह मात्र चुल्ल भर,
इस सागर की गहराइयों के किसी कोने में
शाश्वत शान्ति की खोज में
टटोलता चला रहा है कवि हृदय
स्वय सीपी बनकर।

जाने क्या जीवन बीच-बीच में चुभो रहा है
सत्य के नुकीले कण छुप जाते ह जो गहरे
जितना ही छटपटाते ह उन्हें निकालने को बाहर
घुसते जाते ह उतने ही अधिक अन्दर बढाते ह द ।
हे मेरे हृदय
इन मूक वेदनाओं को लपेट दो अपनी मुग्ध भावनाओं से
ताकि बन जायें वे सब की सब मोती।

—१९४५

मूनुकाल्लत्तिन् मुन्पा–
ण गस्टिनारभत्तिल
तन्नुटे सताय्यनाम
प्रियदशनन इदु',
पूनिलावोळि वोलुम
पूवेळ्ळक्सदरज्जुब्व
मेनियिल्च्चात्तिक्कोण्टु
यात्र चादिप्पान वनु ।
भा मुट टत्तत मुल्ल–
तरमल वबुतिक्को–
ण्टा, मट्टिलन्तित्तारम्
भाण्वयेक्नाय निम्नु ।

अम्नु तानिळम चुण्टिल्–
प्पतरम् स्नेहम वण्णिल्
निम्नु निर्गळिनवे
हृत्तिनाल् पुणन्नलुम्
तन् बरदन्ळे, बेम्पुम्
चुण्टिने, प्पल मुग्ध–
सवल्पम् कुतिप्पिक्कुम्
मारिन, ब्वलाल निर्त्ति
मुलल तन्निल तेर–
प्पिटिच्चु सनिश्वासम्
तैल्लवभाद्रस्निग्ध–
भावयाय् निलक्कोण्टु ।
आ मनाहरमाय
रगवुम् पानदन्ळुम्
ओमलाळ्टे मन–
स्सिप्पोपुम् वरयुन्नुम् ,

तीन वरस पहले
अगस्त के आरम्भ में ही
आया था, सहपाठी इन्दु,
प्रियदर्शन।
चादनी सा शुभ्र धवल
खद्दर का कुरता पहनकर
आया था वह
विदा लेने के लिए।
हा इसी आगन में
इसी जूही के चबूतरे पर
हाथ टिकाये खडा था
देख रहा था उसे
यही सन्ध्या-तारा।

उस दिन
कोमल अधरो पर आतुर रहनेवाला प्यार
आँखो से प्रकट हो रहा था,
मन से तो उसे आलिंगन में कसती
किन्तु रोकती थी बरबस
अपने कमल-करो को
अपने आतुर-अक्षम अधर-पुटो को
विविध कल्पनाओ से उद्वेलित उर को
जूही की पत्तियो को मसलती
वह सनिश्वास खडी थी थोडा दूर पर
आर्द्र स्निग्ध भावो से पुलकित,
आज भी उस सुन्दरी का मन
चित्रित कर रहा है
वह सुदर दृश्य
और वे सुन्दर क्षण-मात्र,

पाणु वान्, स्वतन्त्रमाम
अन्तरीक्षत्तिल्, पसे
नाणु'मिन्दु'व', ई वात्सि-
प्यापूम मुपड्डुन,
मुल्ल तन परिमळम
पुणननडडो पोय
नल्ल काट्टि शुम वनु
कोळमयिर वितक्कुनू।
एड्डने तट्टक्कुमा-
क्कण्णुनीरोपुक्ककवळ ?
एड्डने तुटक्कुमा-
क्कविळिन तुडुप्पवळ ?
कम्पिक्कळ मुरिञ्ञु पाल्,
वण्टिक्कळ मरिञ्ञु पोल्,
तन् पिताविनुम् कूटि-
यतिनाल् मृति पटि ट।
'इन्दु विश्वतिल् पक्कु
काणिल्ल कळक्कतिन-
बि दुना स्वमावत्ति-
लवळिललारोपिक्कान्।

जेलिलेक्कवाटत्तिल चेम्पटिक्कयाम् भ्रम-
शालिनिपुट लुटिक्कुम्न मानसमिन्नुम्,
चिरवद्धमामिण तन्नपिक्कूट्टिन् मीते
चिरविट्टुटिक्कुम्न कोञ्चुतत्तयप्पाल।
एड्डन अटक्कुमानेङ्वीप्पुक्कळ अवळ
एड्ड्नयमत्तुमाकरळिन् तुटिप्पवळ ?

—१९४३

'म जा रहा हूँ,
शायद देश के स्वातन्त्र्य-वातावरण में
देख सकोगी अपने 'इन्दु' को—
गूंज रहे हैं आज भी ये शब्द
जूही के परिमल का आश्लेष कर
कहीं दूर चला गया तरुण पवन फिर लौट आया है
और वही पुलक दे रहा है—
कैसे रोक पावेगी
वह अपने आंसू
कैसे मिटा पावेगी
अपने कपोलों की अरुणिमा!
सुनती है
कट गये हैं तार
उलट गयी हैं रेलगाड़ियां
बन गये हैं पिता जी भी मृत्यु के शिकार
इस आन्दोलन में।
नहीं, उसमें हाथ नहीं होगा
अपने 'इन्दु' का!
नहीं, उसके चरित्र पर
कलम के छींटे वह नहीं डाल सकती।

चिर-बद्ध सगी के पिंजरे पर
चिर विकल हो पंख फड़फड़ानेवाली सारिका की भांति
उस प्रेमशालिनी का धड़कता हुआ हृदय
कारागार के द्वारों से जा टकराया है—
कैसे वह रोक पावेगी आहें,
कैसे वह रोक पावेगी दिल की धड़कन!

—१९४३

अगस्त १९४२ के आन्दोलन पर आधारित कविता।

अपिमुरत्तु

वचि यिलपिमुखत्तेत्ति ञान समुद्रत्तिन
नॅचिल् वानमत्तुन कट्टारिप्पिटिपोल

चारयिलप्पटिन्ञारे चक्रवाळत्तिलक्काणाम
सूर्यविवत्तिन्नटटम । नटुङ्ङिडत्तोरिक्कुनु ।

सागरम पिटयवे, विनुम्पि विनुम्पिक्का—
ण्टागमिच्चोट्टुम नीलवणि चूण्णिये स्हाल

चालवे तटुक्कुवान वलप्पण नीटटम कय्यु–
पालता विलडङने निळरम् मणलूक्कर ।

तनवरोधत्तिलरूपयम् जलरेख–
येनु मत्तटिञ्चिद्र नियताधिकारत्ते

पिन्नयुम परत्तुवान् जनतारक्षकरायि–
निन्न नीनियत्तट्विक्कटक्का नारभिक्के,

शूरनामोर परमाळ मुम्पी नाटिट्टे
धीरमाम् सिरारक्तम् तिळक्कुमना हस्तम्

कुतिय कयियल वीरमभवम कोण्टु
तीत्त नाटकम् नटिप्पिक्कयल्लल्ली विरवम् ?

हा ! सहिञ्चिरुनील पूवकरळम स्वेच्छा–
दासमाम् चक्रालिट दूप्तमाम निपन पोनुम ।

नदी-समुद्र सगम पर

म पहुँचा
दूर पश्चिमी क्षितिज पर स्थित वचि[1] के
नदी-समुद्र सगम पर।
सूय बिम्ब की नोक
समुद्र की छाती मे भोकी गयी कटार की मूठ सी लग रही थी,
लहू में लथ-पथ भय-स्तब्ध तडप रहा था समुद्र।
और रोती-कलपता आ रहा थी नील-वेणी चर्णी[2]
जिसे स्नेहपूवक रोकने के लिए
बढ आयी उसकी सखी सागर-तट रखा
अपना तिरछा पाडुर सकत-कर फनाये।

जिसने अपने अभिषेक के समय की प्रतिज्ञा को
जाना मात्र जल धारा और जिसने उन्मत्त हो कर
अपने अधिकार की सीमा रेखा को करना चाहा विस्तृत,
जिसने चाहा जनता की रक्षाथ निर्मित नीति को नष्ट करना,
उस सूरमा पेरमालु[3] की छाती म कटार भोकने के लिए
बढ आया था एक हाथ जिसम उबल रहा था
मेरे केरल का पौरुषमय रक्त।
क्या यह सन्ध्या उन वीरतापूण घटनाओ पर आधारित
नाटक का अभिनय तो नहीं कर रही है?
हाय, प्राचीन केरल जो
स्वेच्छाचारी शासन की दप-पूण छाया तक
नही सह सकता था

---

१ वचि—अथात तिरुवचिक्कुलम्—प्राचीन केरल के शासक चेर सम्राटो की राजधानी जिसका सक्षिप्त नाम 'वचि' है।
२ चूर्णी—केरल की प्रसिद्ध नदी जिसका दूसरा नाम है पेरियार।
३ पेरुमालु—चेर राजवंश का अतिम राजा।

रगमङ्गन मारि ? जनतातन्नतिन्टे
मगळ मणित्ताट्टिलिन्नतिन शवक्कट्टिल ।

मिनिट्टुम मुत्तिन पट्टुम नेन्टिमलणिञ्ञन्नि-
प्पोनिळम तुट्टुप्पुटप्पार्नोपुम् निरवळे,

सागरराजाविन्टयपहारवुम् चुम-
न्नागमिच्चिरन्नवराय माहिनिक्ळे,

वेट्टिनिलक्कुमतेन्नु पण्टत्ते महादय—
पट्टण' मिताम मुखम कुनिप्पिन् विलपिप्पिन ।

पायि वरळम् मूनु मुरियायाटिञ्ञ वि-
ल्लायि सस्कारत्तिन आणपञ्ञु किटक्कुन्नु ।

एतु कव्यिनियितिन् मुग्नि कूट्टोट्टुम ? आणिन्
मदुर मधुरमाम स्वमन्निनिक्केळ्क्कुम् ?

आरितिलिनि महाजनशासिनतन्निच्छा-
कारियाम् समुज्वल कमततोट्टक्कुवान् ?

पावुन्नवय विनाविन्टे पोन्नसविट्ट
पावु नेयुतालिन्नत्ते नम्नत मरयन्नामा ?

तैल्लु दूरत्ताय नीलप्पट्टि मेलारो पन्न-
कल्लुपाल्तुरत्तुवट वायलिलन्नाणानुन्नु ।

अळियुम् चविरियिल् निन्नु कावनक्कम्पि
विळयिन्चीटम नित्य निस्वराणनिलाक्क ।

अवर तन् वरम्पिल मज्जयुम् कूटिक्कान्नु
शवमावतुन्नु दीन वग्ळश्रीये क्षामम् ।

उसका दृश्य आज कितना बदल गया है!
जन-तंत्र के लिए जो मंगल-मणिमय पालना था
आज वही उसका शव-मंच बन गया है!
संध्या के सुनहरी सिंदूरी रंग में डूबी
डाल कर माथे पर उज्ज्वल मोतियों की लड़ी
हे मनमोहिनी लहरियो
तुम पहले यहाँ आया करती थी
सागर-राजा के लिए उपहार ले कर
आज इस तरह ठिठक कर क्या खड़ी हो?
यही है प्राचीन महोदय नगर
शीश नवाओ, आँसू बहाओ।

वह केरल तो नष्ट हो गया
उस चाप के तीन टुकड़े हो गये
धनुष की प्रत्यंचा ढीली पड़ गयी
अब, हाय, कौन इसे अक्षत रखेगा
किस दिन सुनायी पड़ेगी इसकी प्रत्यंचा की मन्द्र मधुर टंकार?
कौन इस पर संधानेगा
मानव शान्ति का उज्ज्वल अमोघ क्रम?
जाने दें, वह कहानी
यदि मैं बुनूँ सपनों के सुनहले ताने-बाने
तो क्या ढँक सकूँगा आज की नग्नता को?
थोड़ी ही दूर पर जल वितान पर
दिखायी देते हैं कई छोटे-छोटे द्वीप—
नीली मखमल पर रखे हरित मरकत-से सुन्दर
उनमें रहते हैं निपट अकिंचन जन
जो नारियल के सड़े हुए छिलकों के रेशों से
बनाते हैं सोने के तार
किन्तु स्वयं उनकी शिराओं की मज्जा तक को
कुतर-कुतर कर खा जाता है अकाल
बनाता है केरल-श्री का केवल शव।

काट्टिनाल वेळ्ळप्पायप्पळ्ळ वीर्तत्तारलासम
नीटि टलाञ्जुलञ्जाटिनक्ळिक्कुम पल कप्पल,
मुन्पु सागरजात वाणिज्यश्रीतन वळ्ळ–
क्कोम्पनानक्ळ पोल कत्ताट्टुमिटङ्ळिल,
नालचु मीनिनायि मुङ्ङियुम पलप्पापुम
आलस्यत्तोटे वेरम वयराय पोङ्ङिप्पानुम
अङ्ङिङ्ङटाय चिल चीनवल तन कालम मात्रम्
मङ्ङि निरपतु काणाम् परुत्तिन मलनोट्टत्तिल ।
वोन्चु ताणियिल प्पटि ट च्चूण्टलिल मानम कण्णु
वेच्चु काण्टनदम्ते चट्टित्ताप्पियुमायि
मवुमिक्किदात्त मार तन पूवरी नान्टि्टे
भावुकम पुलत्तिय नाविक्तलव मार ।
लीलयिल मातावि्ट मटियिल कुमार मार
पोललक्कटलिलुम कायलिन नटविलुम्
तिर तन चवि पिटिच्चाटिच्चु दुस्सामथ्यम्
तिरळुम कोटक्काटुकाट टु वननिर्तलुम्
ओटिय मरिक्कुमेन्नार्तलुम वचिप्पाट्टु
पाटियुम् कुलुङ्ङात चिरिच्चुम रसिच्चवर ।
अवरिल् कोण्टुकाटि टन साहसम समुदत्ति–
नवसानमिल्लात्त गाभीयम रण्टुम् मण्टु
चेरळत्तिनु मरभीटुवान् वम्याद्धार–
धीररेत्तिरक्काधम् कटिञ्ञाणरिञ्जारे ।

पनिल जलधिये नारिर ना —नेनिन् पाय
जीनियुम कटिञ्ञाणु मत्रु नामिनि नटुम् ?
एन्नु नम्मुटयाणन्नभिमानत्तान जमि–

पहले जहाँ जल विहार मग्न थे
वायु-पूरे श्वेत-पालों से अनन्त यान—
समुद्र से उत्पन्न वाणिज्य-लक्ष्मी के सुंदर गजराज जैसे—
वहाँ आज दिखायी देते हैं केवल कुछ फीके जाल
खाली पेट जो आलसपूर्वक डुबकी लगाते हैं और ले आते हैं
दो-चार मछलियाँ जालों की निगरानी में।
चपटी टोपी पहने बैठे हैं निश्चल छोटी-छोटी नावों में
कुछ बालक अपने काँटों पर नजर गड़ाये
इनके पूर्वज ही थे नाविक नेता
इस देश के सौभाग्य विधाता।
वे समुद्रों और पृष्ठभूमि के जल वितानों पर
उठती तरंगों के कान पकड़ कर
उन्हें नचाते थे।
चाहे कैसा ही उग्र बरसाती तूफान आ कर लटे
और उनकी नावों को उलट देने की चुनौती दे
तब भी इस सागर की गोद में
वे रहते थे अचञ्चल
गाते थे नौका-गीत करते थे हास-परिहास
जैसे माँ की गोद में खेलता है लीला-लोलुप बालक!
उनमें मन रमा था
आँधी का साहस और सागर का अनन्त गाम्भीर्य।
कैसे भूल पायेगा केरल उन वीरों को
जिन्होंने पहले-पहल उद्धत तरंग-तुरंगों को
लगाम लगायी।

मैंने दौड़ायी दृष्टि फेनिल सागर की ओर
उसकी खोई हुई लगाम और जाने
हम पायेंगे किस दिन?
यह हमारा है—
इस स्वतन्त्रता-वार के यौवन में पुनर्मिलन

वनुनोरी वितानत्तिल वेरठ वाणिज्यश्री
तनुटे युरवक्कळेयिच्छपाल मयान विटट्ु–
निनु निभयम नुरप्पूविरत्तादिप्पाट्ुम ?

एन्नु नम्मुटयाय नाट्ु कावनुवान् दूरे–
च्चेनिरम्पीट्ुम ताक्किन् कुरयाल पर मार

ओनु वेट्टिच्चुम् कोष्टु नम्मुटे पटक्कप्पल–
तन निर कुतिच्चोटिक्कटनिल चुर मान्तुम ?

हा, वरम् वरम ननमाहिन मन नाटिन्टे–
पावन पताक्कळ कटलिल तत्तिप्पारम ,

हा वरम वरम नून माहिन मेन नाटिन्टे
नावनड्डियाल लोकम् थद्धिक्कुम कालम वरम ।

ई विचारत्तिन मात विरियान निजोप्मळ–
भावन कुरुविरक्कोण्टेन मनमिरिक्करवे,

अन्तियिल् महादव क्षेत्रत्तिल् निन्नुम् काटि टल्
नीन्ति वनीट्ुम क्षीणक्षीणमाम शरारायम

चेरयुमेलिक्कळुम तह्रडळिलवरलहिन्तुम्
चेरमान् परम्पिन्टे नीण्ट रोन्नम पोले

अम्पलम् पल पळ्ळि तह्निन्नुताप्पुक्कळ, कायल–
तन् परप्पिक्कळेयाक्क विह्वलमाविन

विलयिक्कयाय वानिलटे यात्माविल गान्त—
निलयेस्महिक्कातारन्तिनममुद्दत्तिल ।

केरल की वाणिज्य-लक्ष्मी
किस दिन छोड़ेगी अपनी नौकाओं को
जल वितान पर स्वच्छंद विचरण के लिए
और किस दिन निर्मम हो कर तोड़ेगी
पना के कुसुम ?
गा-गा कर नाचेगी किस दिन ?
कब हमारे लड़ाकू जहाज
देश की रक्षा के लिए तनात,
विदूर देश म जाकर अपनी तोपो की गरज म
दुश्मनो को चौंकाते हुए
उछलते-कूदते दिखायी देंगे और
जल वितान को चीरते हुए आगे बढ़ेंगे ?

हा, आयेगा अवश्य आयेगा वह दिन
जब मेरे देश की पावन-पताका
फहरेगी सातो समुद्रो के ऊपर ,
हा, आयेगा, अवश्य आयेगा वह दिन
जब मेरे देश की वाणी ससार आदर से सुनेगा।
अपनी भावनाओ को समेट कर,
इस विचार पर सेंक-सेंक कर
म उन्हें ऊष्मल कर रहा था, तभी
महादेव के मन्दिर से, हवा पर तरता
आने लगा सन्ध्याकालीन प्रक्षीण गखनाद—
यह था मानो केर राजधानी का स्पन्दन-स्वर
जहाँ आज साँप चहा-सी लड़ाई भिडाई चलती है ,
मन्दिर-मस्जिद गिरजे और
नारियल क बगीचो को विह्वल करता हुआ
वह स्वर विलीन हो गया—
गगन में मेरी आत्मा में
और समीपवर्ती उदात्त सागर में।

तल पोक्कि वान नात्त्रियाराणा गीलच्चीन—
वल नेट्टि निल्कुनतीयपारतयिक्कल ?

मुकळिलत्तिळङ्ङुनु वपुतित्तत्तिप्पाय
पक्लिन चितम्पलिन वेणनुरुक्कङ्ङिन्ङ्ङायि ।

दूरयाक्किपक्कपूम कुनिटे मेलट टत्तु
नारेतिर निरक्तिरा नोरम्पिळि मिनी

तुगमाम निर पर वेच्चतिन् मलक्भागत्तु
मगळम वळत्तुन्न तेङ्ङिङन् पूक्कुलपाले ।

—१९४२

सिर उठा कर
देखा मने ऊपर—
कौन खडा है यह इस अपारता म
अपना नीला जाल फलाये ?
ऊपर चमकते दिखायी दे रहे थे,
श्वेत-खण्ड छोटे छोटे
दिवस के चोइटे से
जो खिसक बच निकले थे !
दूर,
पूव की पहाडी के ऊपर
धवल रम्य किरणोज्ज्वल चद्रमा
चमक रहा था,
जसे धान के मापक भाड पर धरी हो
नारियल की मागलिक मजरी !

—१९४२

शवप्पेट्टि

कोच्चुतारकङ्ङळे !
नल्कुविन इरट्टिटै
मच्चिलाविलुम निद्र्ग
आत्मीयप्रकागत्ते !
नेरियारिपक्ळाल्
नेययुविन् स्तमिप्पिच्चु
पारिटम् वाप वारल्लि—
न्नन्तिमावरणत्ते !
मन्निने अेरक्कीटुम
इरुळिन गळम् कोययान
उन्निय मास्वच्चनम
इळ्कुम करम पोकिन,
तन्चिरविराधि तन्
नन्चिलूटवे तुळ्ळुम्
कुन्चिरोममार्गोरा
चुवप्पन कुनिरये
वम्पिट्टुमनिन् रश्मि
वन्टिच्चु किन्टुमृताप्टु
मुम्पिल वन्नेत्तिप्पावि
विस्वजतावाम नाळ !

पूवुक्ळ वितरविन् आत्मजावितताला—
भावुकप्रनतावु वस्मा मागदन्ळिन !
पिच्चुमान्टुवळ्िना भूम्मामिरटू नन्चिल्
तन्चुवटमत्ति निनानिनुमुणन्नन्ला !

शव-पेटिका

नन्हे-नन्हे तारा!
कातते रहो सूत आत्मीय प्रकाश का,
भले ही रहो तुम
अन्धकार की छत पर!
कातने जाओ महीन धागा से
अन्तिम आवरण, कफ़न, अन्धकार का
जिसने किया है स्तब्ध जग को
करता है उस पर शासन।
सम्मुख पहुँचा है जग-जयी नूतन प्रभात
भास्वर रश्मियों का चक्र हाथ में उठाये
विश्व को दबोचनेवाले अन्धकार का
गला काटने के लिए
चंचल अयाला वाले लाल घोड़ों की
रास को ढीला कर
अपने चिरन्तन विरोधी की छाती पर से
सरपट दौड़ता हुआ।

बिखेर दो फूल
उस भगनदाघी के भाल पर!
जाग उठी हैं नन्हीं कलिकाएँ
यद्यपि क्रूर अन्धकार खड़ा है उनकी छाती पर पाँव जमाये।

पातिरप्पूक्कन् कक्कम—
वलियिल, तनिक्केलुम
एतिलुम् वलियताम
शक्तिये ग्रहिक्काते
वनूक्टल् विरिमारिल्
वाणमुक्कीट्म् अललु
वन् क्पलेतिक्कति
चुम्बिच्चु विटम्नालुम
नवमाम स्वातन्त्र्यत्तिन
स्वच्छ दगानम् मूल्युम्
पवमाननेकुम्नो—
रुल्वकटावेशतोटे
पोन्तिटुम् तिरक्ळे—
च्चुरट्टियार्त्तार्हप्प—
मेन्तिन मलिननाम्
रिपुवोटेतित्तल्लो ।
मृतनामिरुट्टिने
मूटुवान शवप्पेटिट—
वसुतवुम् नीलप्पटटु
पुल्लुकळ निवत्तटटे ।
इरुळिन् पुराहित—
रलयुम करुप्पुट्टु—
प्पियलुम् ववूवालुकळ
चेययन्टे शववमम् ।
जातकौतुकम ताप त्ति
मूटणम इरुळिने
मतवुम् कूटिप्पुर—
त्तलयानणयाते ।
नूरुनूरिळुकळ वाणाताविलुमन्ता
नूरुनूरिरुळिनुम पाराट टरुतवप्पट्टि ।

—१९४५

बसा है यह सागर
आधी रात की बेला में खुर्राटे भर कर सोनेवाला—
बिसार कर अपनी अप्रमेय शक्ति
चूम रहा था उस अंधकार के चरण
जो चढ़ा बैठा था इसकी छाती पर।
किन्तु सागर जब उद्यत हो गया है
अपने दर्प पूर्ण शत्रु से जूझने के लिए,
उत्तुंग तरंगों की मुट्ठी बांधकर
तब स्वातंत्र्य गीतों को
गुनगुनानेवाले पवन की ओर से
उत्कट उत्तेजना पाई है उसने।
तणदलो,
बिछा दो काला रेशमी कफन
मृत अंधकार की शव-पेटिका को
समुचित ढँकने के लिए।
लहराता हुआ काला चोगा पहननेवाले
ये चमगादड़ पुरोहित
सम्पन्न कर दें अंत्येष्टि कर्म,
दफना दें इसे इतने गहरे
कि उसका प्रेत भी
फिर कहीं मंडराने न पाये।

राज किया है सौ-सौ अंधकारों ने इस धरा पर
पर सौ-सौ अंधकारों के लिए यह धरती है
एक ही शव-पेटिका।

—१९४५

भारतसन्देशम्

आवु ! सोदरि, चीने
    नी स्वतन्त्रयायल्ला,
भावुकमाशसिप्पू
    निन्टे तोपियामिन्त्य ।
चेतन वेरतेया–
    यिल्ल तिमता तीव्र—
यातन नुक्म तट्टि
    नीक्कुवान कपिञ्ञरलो ।

घोरयिलूक्कुळिञ्चालुम्
    कण्णुनीर कुटिच्चालुम्,
घोरमाम् एट्टाप्टेट्टु
    युगमायक्कपिञ्चालुम्
सारमिल्लवयोन्नुम्
    नम्मुन्यात्माविन्नु
पारतन्त्र्यतिन् बाघ
    भीतिन्नवुदमत्र ।
चीञ्ञुपोम् चिन्ताशक्ति—
    यळियुम् स्वसस्कारम्
मान्नुपामात्मारोग्यम्—
    मृत्युवाणतिल् भन्मृ ।
नीप्टारा शस्त्रिय
    नी सहिच्चीलेन्नाक्किल्
वीप्टुमीयात्मीयमाम्
    सौभाग्यम् लभिप्पतुमो ?

ओटक्कुपल

भारत सन्देश !

हाय ! बहन, चीन !
तुम तो स्वतन्त्र हो गयी
मैं तुम्हारी सखी
मंगल कामना करती हूँ !
जिस तीव्र यातना को
तुम्हारी चेतना पी गयी, वह व्यर्थ नहीं हुई,
तुम अपने गले का
जुआ हटाने में समर्थ हुई।

लहू में नहा उठी,
आँसू पी गयी
आठ भयानक वर्षों का
तुमने एक पूरे युग की तरह बिताया
कोई चिन्ता नहीं—
हमारी अन्तश्चेतना को पराभूत करनेवाली
परतन्त्रता ही भयानक अर्बुद-व्याधि है !
इसके कारण
चिन्तन की शक्ति हत होती है
संस्कृति सड़ जाती है
आत्मा का चैतन्य नष्ट हो जाता है,
इससे तो मृत्यु कहीं स्पृहणीय है।
अगर तू
न सहती यह लम्बा शल्य प्रयोग
तो क्या कर पाती यह आत्मीय सौभाग्य प्राप्त ?

पद्दलयपिञ्जप्पाळ
निनात्मावाकारातिल्
एङ्डनेयेल्लाम् चेय्ो—
लान दनत्तम् ताप ो ?
एङ्डनेयेल्लाम् दि य—
स्वातन्याह ळादम् पाद्दिङ—
यङ्म्लक्कटलिलम
कुनिलुम मुपड्डील ?

नीळुवान् विरोधमि—
ल्लात्ताराक्कयाल स्नह—
माळुमीस्सहजये—
योनु पुलकुक गाढम् ।
कोळमयिक्कोंप्टीट्ट
निनस्वतन्नागस्पर्शलि्
मामकागकमटि—
ताट्टये । मुटियोळम ।
हिमवल्प्पास्वत्तिक्ल
मान्नु नी चेवियात्तलि्
मम मानसम तुटि—
क्कुमतु वेळ्क्काम् भद्रे ।

मट ट्ठ राज्यतिन् स्मशा—
नत्ति मलान दाग्नु
बिट ट्ठ वीपिप्पोरल्ल
नम्मळञ्जिरूमालुम्,
नामरिञ्ञीलाज्जप्पा—
नात्महत्यक्काय् प्पूजि—
यामयिलुक्वेरम् मन्—
कामुक मारेप्पाले,

जब तुम्हारी जञ्जीरें खुली,
तो हे सखि,
तुम्हारी आत्मा किस उल्लास से
आकाश पर नृत्य करने लगी !
स्वतन्त्रता का दिव्य आह्लाद
सागर में, शैल में
कहाँ कहाँ न गूँज उठा ?

जब तुम अपने स्वतन्त्र करो से
करो गाढ आलिंगन
अपनी इस बहन का !
तुम्हारे स्वाधीन शरीर के स्पर्श से
पुलकित हो जाये मेरा शरीर
नख शिख पर्यन्त !
भद्रे !
अगर तुम हिमालय के पार्श्व में जाकर
कान लगाओगी
तो अवश्य मेरे मानस का स्पन्दन
सुन सकोगी।

हम दोनो
अन्य राज्यो की चिता पर
आनन्द के आँसू नहीं बहाती,
मगर, हमने नही सोचा था
कि यह जापान
आत्महत्या के लिए
'फ्यूजियामा' पर चढनेवाले
मूढ प्रेमियो की भाँति

तामसस्वभावयाय
मुनपिले पोमृ साम्राज्य—
कामनयोटे दुरा—
रोहमाम् पन्म पूकि
ई विघम्, ओरु गति
वरेयिल्लाते स्वीय—
जीवितम् लावाद्वार—
त्तिकल् वीप त्तिटमेन्नाय !

प्राचि तन रसम्क्कायि—
मनुलञ्च विल्लाणन्नु
हा ! चिरम् भाविञ्चोरा—
वनविन्नमन्नरन्
पपुते मेय्यिल् प्पट टुम्
रक्तदाहियाम विल्लन्—
पुपुवाय सहोदरि
निन्टे मेलन्काणप्पेटटु !
चोरये, कण्णीरिने
वष्पिनन्कूटि स्वीया—
हारमाक्किया नीय—
मिपञ्च पाटोरोन्नुम्
दूरेयुमटिक्केयु—
मात्र मोदरिमार तन
दूनदशनसापु—
चरितत्ति मेल्नकाण्मे
एव्वड्ने मिपि कल—
हुन्नाते नोक्कुन्नू नम्मळ
एव्वड्ने शापोक्तिये—
च्चुण्टिल् वच्चरयुक्कुन्नु ?

अपने जीवन को
ज्वालामुखी के मुह में झोंक देगा
तामसी साम्राज्य कामना के
कन्धे पर चढ़,
गतिहीन बनकर।

प्राची की रक्षा के लिए
सज्जित धनुष का
स्वांग रचनेवाला
वह क्रूर कुटिल विभ्रम
दिखाई पड़ता था
हाय, बहन,
तुम्हारे शरीर पर
धनुषाकार रक्तमोही कीड़े-सा।
शोणित आंसू और पसीना
सबका
अपना आहार बना डालनेवाले
इस कीड़े के रेंगने का निशान
दूर समीपवर्ती सभी सहेलियों की
दु:ख भरी
पावन गाथा पर दिखाई देता है,
तब हम कैसे
देख सकते हैं अकलुषित नयनों से ?
और कैसे दबा सकते हैं
शाप वचनों को होंठों में ?

नोवुमकाय सखि,
निन्टे हृत्तटम् विट्टु
पोवुक, रिपुविनुम
न म नेरुक नम्मळ ।

पावनसुदिनमा—
णिन्नेनि, क्वेन सम्पत्तुम
जीवनुमोरवना
णेन्टे मोहनगासन ।
इम, तज्जमपत्तिल्
शान्ति । शाश्वतशान्ति' ।
एनु मानवत्तिप्पू
पारिमु मलस्सन्दशम् ।

सगरमणितमाम्
सवराज्यतिन्टेयु—
मगतिल् स्नेहम् पुर—
ट्टीट्टुवान कपिञ्ञॆंकिल
मानवन यन्नतिन्टे
निर्मातावाम् , यन्न—
मावरतवन्, स्वयम्
तीत्त यान्त्रिकशक्ति
इन मानवात्माविन
मारिल् निश्चलशक्ति —
तोन्नुयत्तुवान् कपि—
ञ्ञिडिक्ला मनप्यत्वम् ।
पुरदाहकमाय
रौद्रनग्रमाणोरा
परमाणुवुम् आरर—
ण्णेन्नालुम् तुरवाते

हे सखि,
जाने दो वह वेदना भरी कहानी
करें हम
शत्रुओं की भी मंगलकामना।

आज का यह दिन
मेरे लिए पुण्यमय है,
मेरा धन है और मेरा प्राण है—
मोहनदास
आज उसके जन्मदिन पर
मैं दुहरा-दुहराकर संसार को
अपना यह सन्देश दे रही हूँ
'शान्ति! शाश्वत शान्ति!'

काश!
मैं लड़ाई के घावों से भरे
सारे देशों के शरीर पर
प्यार का मरहम लगा पाती!
मानव जो बना था यन्त्रों का निर्माता,
वही अब बन गया है स्वयं यन्त्र।
आज वह यन्त्र शक्ति
जिसका निर्माण मानव ने किया
मानव की ही छाती पर
खड़ी होकर गरज रही है।
काश!
उस अस्वस्थ मनुजता को
मैं उठा पाती!
प्रत्येक परमाणु है
पुरदाहक रुद्र नयन
मगर उस नयन को खोलने नहीं देती

मुप्पियाल् वाण
विश्वशान्ति तन्मुन्पिल
मनुजन् कुनियुक्कात्त
तन्तल कुनिच्चीटिल ।
भूविलेड्डुमे विट—
र्नीटिल् निमलात्मीय—
जीवितम् स्वातन्त्र्यत्ति—
नुज्वलप्रकाशत्तिल ।
मल्ल, मत्सरमल्ल
जीवितम् यन्मृतान—
मुल्लसिच्चखिलरम्
समाचरिच्चीडिक्ल ।
इल्ल मट टोरु चिन्त—
यी महान्निनत्तिक्ल्
नल्लतु पराचर—
क्कडव्रुकेल्लाम् भवियक्कट्टे ।
मन्तियुम् जयन्ति यिल्—
प्पकुकोळ्ळमु मयिल
एन्तिय वेळ्ळित्तार—
त्तनिळमल् वणनूर चुटि ट
मामकस्वातन्त्र्यत्ते—
ज्जीवितचशतिमेल्
आमन्दम् नूट टुम मोण्टु
मवुमेन् मकन् शाप क ।
सोन्दरि । पराधीन
त्तिम, जान् दवसियकुन्न
मोदवुम् स्वातन्त्र्यवम्
माहनन् दवसियकुन्पाळ ।

—१९४४

करुणामयी विश्वशक्ति,
काश ! मानव उसके सामने
अपना उद्धत शीश नवा देता !
काश !
स्वतन्त्रता के उज्ज्वल प्रकाश मे
निर्मल आत्मीय जीवन
सारे ससार में
विवस्वर हो पाता !
जीवन निरी स्पर्धा नही,
यह है पावन यज्ञ।
इसी भावना के साथ
सभी लोग कर्माचरण करते
कितना अच्छा होता !
आज के मगलमय दिन
अन्य कोई भावना नही—
मगल हो सारे चराचरा का।"

लो,
रजत तारे की तकली पर
सूत कातती हुई सन्ध्या भी
इस जयन्ती में भाग ले रही है।
मेरी स्वतन्त्रता के सूत को
अपने जीवन के चरखे पर
निरलस होकर कातनेवाले
मेरे बटे की जय हो !
हे बहन,
म पराधीन हूँ खिन्न हूँ
लेकिन
मेरा मोहन जब साँस लेता है तो
म भी स्वतन्त्रता और आनन्द की साँसें लेती हूँ।

—१९४४

कल्क्करियुटे काव्यम्

मदपरिपाटलम् लालसियुक्कुम
सुदतितन् गण्डतलमुरम्मि
ओर वेळिच्चत्तिन्टे वट्टपोले—
युरळुमा सोलाक्किन् वरमोति
अपलेक्किटक्कुम्म कल्करिय—
प्पुनयुटे कुञ्जिनेप्पोलक्कान्ति

'चिरि वरम, दास्यपरजननाय
परिहसियक्कट्टे सहिच्चुकोळ्ळाम ।
इरुळिन्टे वट्टयिक्कल्ककरि जा—
नरिय वेळिच्चत्तिन् पुचिरियुम् ।
उलयिल्निन्टनु ती तिप्पु चावा—
नुलकिल्पिरन्नारी कुमगनुम
चिल मकुटक्कूळ दप्पमायि
विलसुवा॰ पोनारुमानुपोलम् ।
विमलयाम वण्णाटितन् करळिन्—
दामवुम् मरविञ्च धीरतयुम्
चिरिपुरण्मोरेन्टे चुण्टु कोण्टाल्—
तरियातु मेऽ सौमा यमोर्प्पू ।"

कोयले का आदि-काव्य

सुन्दरी के
मदारुण मनहर कपोल से सट कर
झूलनेवाला झुमके का चमकदार हीरा प्रकाश-कण-सा,
दूर पड़े हुए कोयले को
धुएँ का बच्चा समझ कर
बोला

"हँसी आती है मुझे
हो सकता है कदाचित् मुझे आप समझें,
मेरा उपहास करें
मैं उसे सहने को तैयार हूँ,
लेकिन, सत्य तो यही है कि
यह है कोयला--
अन्धकार का टुकड़ा--
और मैं हूँ प्रकाश की मधुर मुस्कान।
यह दुर्भग,
पड़ा हुआ है चूल्हे की चिता में
जल जल कर मरने के लिए,
और हम जन्मे हैं दुर्लभ राज-मुकुटों को सजाने के लिए!
कैसे सत्य हो सकता है यह
कि हम दोनों एक हैं?
विमल दर्पण के अन्तरंग की
निष्प्राण शान्ति और जड़वती धीरता
चूर चूर हो जाती है मेरे सुस्मित अधरों का स्पर्श पाते ही,
सोचता हूँ
मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ।'

'मति परिहासम्! तुटुमुक विळिन—
द्युति मुकर्नाट्टिन भाग्यवाने।

तुनुकुन्तळत्तिन् निपलु पटिट,
ननुननप्पोडड्डुम् वियार्प्पिल् मुडिङ

वरळुमडड्डुनायवनित ट —
योरु वेरुम वेप्पिनुकणिकमात्रम्।

धरणितन् गभत्तिन् चूटरिञ्ञे,—
नरचनुभूटियिलिरियक्कानल्न,

सलनमार तन् कविळोटुरम्मि—
यलसमाय् मळिप्पतिनुमल्ल।

पेरिय मणुपुटि टसकत्तिल्नु
चिरतपम् चेयत किरातनिल्ले,

वरकवि वाल्मीकि ?—या महानी—
भ्भरतराज्यत्तिट जीवितत्ते,

निरुपमदीप्तियुम चूटुमेकि—
स्सुरुचिरमाविननान त महस्मात्।

ओर वाटनायिप्पिरन्नवन आ —
नोरुपाटु मणिलतपिच्चवन आन्—

अनवधि लाहमलिञ्ञलिञ्ञि—
ट्टनघमायुम् मपि आनोरुविक,

अनलन्टे नाळमाम् तूवलाले
जनततनाह्लादनविकळक्काय्

नरनवसस्वारवीरकाव्यम्
करुणरौद्रादिरसम् कलत्ति

विवियय त्तिन् वटित्रयुम्न,
विपान्लिपिकळिन् आन् पर्कति।

अनुकरियुकवुन्नु जानामहाने —
यनुकम्प्यनाणु नी भाग्यवाने।'

'व द करा यह परिहास,
अरुण कपोलो की मनोहारिता को
चूम चूम कर झमनवाले हे भाग्यवान !
तुम हो मिट्टी के पसीने की बूद
तरल अलका की छाया मे
रह कर पलकनेवाले
किन्तु म हूँ वह जिसने जानी है धरती के गभ की गर्मी
इसलिए नही कि राजाओ के सिर पर विराजू
या ललनाओ के कपोला का स्पश करूँ
अलस विलास भाव से।
याद है वह किरात,
जिसने ऊँची बाबी के भीतर बठ
तपस्या की थी—
कविवर वाल्मीकि—?
उस महात्मा ने ही दिया था
इस भरतराज्य के जीवन का
अपनी तपस्या का अतुल तेज और उष्मा
बनाया था उसे अत्यन्त सुदर।
म जगली हूँ वन में जन्मा हूँ
जगली धरती के भीतर बहुत दिना तक तपा हूँ
अनेक धातुओ के घोल से
मने यह अमल मसि तयार की है,
म अकित कर रहा हू अग्नि-ज्वाला की कूची से
विविध मन्त्रा की विनाद लिपियो में
मानव की नव्य सस्कृति का
वीर काव्य—
करुण रौद्रादि रसमय
जनता के आनन्द
और उसके अन्तरग का बल बनाने के लिए।
इस तरह म अनुकरण करता हूँ
उस महात्मा कवि का।
हे भाग्यशाली तुम मेरे लिए अनुकम्पा के पात्र हो

वरियुटे मौनत्तिनयमायि—
क्कवि विचारिच्चतितायिरनु ।

'नरनुटेयात्मावु तननिपलाय—
क्करतेण्ट धार्म्मिक सौम्यतये
वनिवुक्टतिनिक्काटु नंट टान
त्तुनियुमो ? काव्यम दुरन्तमामो ?'
करितनुमुखत्तिलक्कालिमयिल—
क्कविकण्टतीदशोकमायिरनु ।

—१९४३

कोयला रह गया था मौन, किन्तु
उसके मौन में कवि ने पढा यह भाव।

'मेरी कामना है कि
धार्मिक सौम्यता
बनी रहे मानव की आत्मा का प्रतिबिंब,
क्या उसे भी भेज दिया जायेगा
निष्ठुरता के साथ वनवास में?
और काव्य हो जायेगा शोकान्त?
कोयले के मुख की वलौंस में
कवि ने इसी शोक का
दर्शन किया!

—१९४३

नायकन्

चूरलालन्चिट्ट नगरितन
चोर वार्न्निपुकीट्न पाट्पोल
मारि कोण्ट कुपञ्ञु चवप्पान्न
चोरिमण्ण पुतञ्ञेपुम पातयिल
पोवुक्याण ञान तनिच्चेन्तिनो
नोवुमस्वस्थमाय मनस्सुमाय ।

माळिकक्ळिलनिन्नु कळकराम चिरि-
क्कोळिक्कडन्नळ रप्टु पाश्वत्तिलुम
नागरिकमाक्वोंलुमनुराग-
रागमालपिप्पू स्वनग्राहि कळ ।

पिन्निलनिनुमोर चुम कळकराया-
लोम्निटयक्कु तिरिञ्ञु ञान् नोक्कवे
तन चुमलिलाए कुर तूम्पय-
प्पिचुञुञ्जिनेप्पालेन्तिटुमाराळ
चालिल पाल्रजमानने काणुमो
वल्लतुम पणि ? नायकन् वलञ्ञुपोयि ।

आ विठि कटटु लज्जिच्चु पोयि ञान् ,
पावमप्पणक्कारनप्रणिण ।
पलुमाभ्रमुण्डाताया मुख-
तलुम तोलुमाय नीण्ट कयत्तण्डुकळ ।
कान्टिटनाटुम् परमपयोट्ुमा-
शैन्टटानाए कीरयुण्डीरनायि ।

नाय्कन्

मै सड़क पर से चला जा रहा था,
जो थी वर्षा-जल से गीली लाल मिट्टी से लथपथ
जस नगर के मुह पर बेंत मारने से रक्त रिस आया हो,
मन अस्वस्थ था अवसाद से भरा था।

बगल की अट्टालिकाओं से
हास-कोलाहल की लहरें आ रही थीं
आलाप रहे थे कई ग्रामोफोन
नागरिक वनिताओं के वासना चपल गीत।

किसी का खाँसना सुन कर
मै पीछे की तरफ मुड़ा—
देखा कन्धे पर छोटा सा फावड़ा धरे
मानो अपने छोटे से बच्चे को सम्हाल रखा हो,
एक नर पूछ रहा था
'कोई काम मिलेगा बड़े सरकार
नाय्कन' बड़ी मुसीबत में है।

उसका सबोधन सुन कर मै लज्जित हुआ,
बेचारे ने मुझे धनी समझ लिया है।
उसके चेहरे पर केवल दांत है जो पिचके नहीं
लम्बी-लम्बी भुजाएँ हड्डी चमड़ी मात्र बन गयी ह
एक फटा पुराना भीगा चिथड़ा है तन पर
भीषण हवा का और
मूसलाधार वर्षा का सामना करने के लिए।

---

१ नाय्कन—फावड़ा लेकर चलनेवाले मजदूरों का एक वर्ग जो मिट्टी खोदकर तालाब कूप आदि साफ करके अपना निर्वाह करते हैं।

आर्द्र हृत्तिलुम तेजस्सु कण्णिलुम,
लेनमिल्लातुपलुकयाणयाळ ।
ईविधत्तिलप्परस्परप्पानिट्टुम
जीवितत्तिन पुरत्तुरन्नीटिलुम्
मालुरत्तिप्पिटिच्चु नीस्सार--
मकोलु कत्तिज्वलिक्कात्ततमृतम ।

मेलतन्निलत्तणुत्तुरङ्ङुम् महा--
ज्वाल पट्टमु अट्टियुणरविल
आणुकाग्नयगाळङ्ङळलवालु--
माळिट्टुम् महस्सानुळवायुवरम्
वीशुमाहान्ति दिङ्मुखत्तावन्नेयुम्
पूनुमारक्तमाविन नुकुमम ।
हा नट्टुङ्ङुविन सौत्यजडङ्ङळ ।
वानम चुम्बियवरुमप्रयसौधङ्ङळे ।

चालि वम्पुन्न चुण्डिनाल् मान पणि--
यिल्लिविन्यारेटवुम नायकरे ।
चालि नोवुन्न हृत्तिनाल् मान करि
ङ्ङलिनक्काळ्क्कदुत्त निलवळ
निनकुरत्तुम्पवोन्दु नी कोरक,
चकु वटळमायुपावनित् पोमट्ट
नूननभार जीवितम् पोट्टिन्यी--
भूतलत्तिलुस्समत नट्टुम् वरे ।

—१९८३

न मन में आशा रच मात्र
न नयनों में तेज
सब कहीं चक्कर काट कर लाचार हो रहा है बेचारा !
अचरज है,
इस तरह के खुरदुरे जीवन के निरंतर रगड़ खाने पर भी
तप्त पीड़ा से भरी यह धुधुआती तीली
जल क्यों नहीं उठती ?

यदि यह श्रमक्लान्त सुप्त महाज्वाल
अकस्मात जाग उठे
तो उदय होगी एक महान ज्योति
आणव आग्नेय गोलों से भी
अधिक उग्रता से जलनेवाली,
वह ज्योति फल फैल कर
सारी दिशाओं के मुख पर
आरक्त कुंकुम लगा देगी।
हे गगनचुंबी अट्टालिकाओ
हे सौख्य-जड़-जनो,
काँप उठो।

कम्पित होठों से मैं बोला,
"यहाँ काम नहीं है कहीं, नाम्खन !"
फिर कसकते कलेजे से मैं मन ही मन बोला—
हे नाम्खन
पत्थरों-सी कठोर धरती को
तुम अपने छोटे फावड़े से खोद हटाओ
जब तक कि
एक नवीन जीवन का सोता नहीं फटता है
और भूतल में ममता का सृजन नहीं करता
अगर, तुम्हारा कलेजा ही
पानी हो जाये तो हो जाये !

—१९४३

तूप्पुकारि

हारियल्लिवळुट रुप मेन्नालीतूप्पु—
कारितन मलिनमाम् करतिन विशुद्धत ।

इप्परीमुखत्तिट वल—
च्चितरिक्काणाकुम
वप्पुकळ चवरक्कळ,
अळिञ्ञ शवङ्ङळुम्
नतनदिनत्तिट्टे
चक्तिर चुम्बियक्कुम
पूतमाम पुरिकत्तिल्
वप्पुकळ पाटियवे
तन् करत्तिनाल् वाभु—
वेट्टिय चूलान पात—
यिन्नल्निन्नकट टुम
तन्विक्किळिक्काल्व ।
नम्मयि सहादरि
नम्मु निन्पुरिकत्तिल्
मिन्नुमी मुत्तिल् नरुम
पान्किळक्कनुम् वान्ति
माळिनप्पुरत्तपुम्
काञ्चम्ममार तन् हार—
पाळिकळ कोनिपृक्करणम्
जनसवनव्यग्रे ।
तूलिकतुम्पाल म्ळान—
चित्रत्त मनाधम्म—
मानियामोर वला—
वारियननुणोन

झाड़ूवाली

उसके गठन में कोई खास आकर्षण नहीं,
फिर भी उस भंगिन के गन्दे हाथों में
कितनी पवित्रता है!

पलकों पर उभर आयी हैं पसीने की बूँदें
जिनका स्पर्श कर रही हैं
प्रभात की
नवल स्वर्ण रश्मियाँ,
वह बुहारती फिरती है सड़कें
अपनी झाड़ू से
जिसे उसने
अपने हाथों काटा-बनाया है
बुहारती फिर रही है कूड़े के ढेर
गलित अवशेष
जो महानगर के चेहरे पर
धब्बों की तरह चिपके हैं।
धन्य बहन, धन्य!
तू दबी है आ प्राण जन-सेवा में
तेरी सेवा पर दमकते
स्वेद बिन्दुओं की आभा के सामने
फीकी पड़ जाती है आब
शाही महलों की महिलाओं के हीरक-हारों की।
तूलिका की नोक से
एक नाजुक तस्वीर को सँवारते हुए
प्रतिभावान कलाकार की तरह

पुतुक्कि मिनुक्कि नी
पट्टणम्, पुरीमुख—
मतुलारोग्य श्रीतन्
कयक्कोरु वाल्क्कण्णाटि !

वनु नी पिरन्नेड्डिरल—
क्कवितन हृदन्तत्ति—
लेनुमुत्तमस्निग्ध—
भावनारूपम् नेटि !
वर्न्निनिञ्जनिच्चेड्डिरल
माञ्जनि नवियुटे—
युनतादर्शम् कोरुम
तूवलाय मत्यम तेटि !
जीवितम् विपमय—
माधुमारेन्तेन्तेल्लाम
आविलविकारङ्ङळ,
जीर्ण्णञ्च विश्वासङ्ङळ
जनमद्नत्तिटे
करयम कण्णीरिटे
ननवुम् मीते कालु—
मिरम्पनचेंरोलुवळ,
तद्दङ्ळिलत्तल्लिकीरि—
या व्यत्तिन् चेगल् नारि
मद्दन्लानींटुम् जीण्ण—
मतत्तिन् कुप्पामङ्ङ्ळ
नीतितन् चालिन वक्विल्
स्वार्थत्तिन पुट्टण्टाम्मि
भीतियिलक्कुराष्टेपु—
मिरण्मात्मयङ्ङ्ळ—
ई वस्येल्लाम् पम्मे
नी मळञ्ञेने निटे
तूवालालुत्तळिञ्जेन
जीवितत्तुवर !

तू शहर को नयी दमक से सँवार रही है,
यह नगर का चेहरा
अनुपम स्वास्थ्य-श्री के हाथों में
एक आईने-सा है।

काश,
तू उत्पन्न हुई होती कवि के हृदय में
अत्युत्तम स्निग्ध भावना का रूप लेकर,
काश,
तेरी झाड़ू जन्म लेती
कवि की आदर्शमयी कलम के रूप में,
तब तूने झाड़-बुहारकर
कूड़े की तरह फेंक दिया होता
इस विषम जीवन को,
ढहते हुए विश्वासों को
घुटती हुई भावनाओं को
पीड़ित जनों के
आँसुओं की नमी को,
संघर्ष की थाप पर बजती हुई
लौह-कड़ियों को,
एक-दूसरे पर उछाले जानेवाली
अंधी कीचड़ को,
हासोन्मुख धर्म के
कमजोर और धुँधलाये
लिबास को,
न्याय की धारा के कगार पर निर्मित—
स्वार्थपरता के दड़बों में
दुबकी प्रसन्न मुख
अंध ईर्ष्याओं को
और तब, तुम्हारी लेखनी से
स्वच्छ और स्पष्ट हो गया होता
जीवन-पथ!

मलिनविचारङ्ङळ
गानत्तिनूक्केरीटु—
मालिविन्न्कटिच्चुट टुम्
चालुक्ळ निवन्नेने ।

चोरतन् निरम् तिम्र
धूळि पोङ्ङाते स्नेह—
पूरत्ताल् ननञ्ञु—
प्पिच्च चालत्तिलक्कटि,

चक्रवाळत्तेत्तनव—
विरलालञ्ञुटि टञ्चमको—
ण्टग्रमङ्ङ्ळ दूर—
मुनयाल नोवेल्क्काते

मानवन् समुन्नत—
शिरस्साय पाटिप्पोकु
मानम्माणानन्दम्
पारतु नुकर्न्नेने ।

ह्रारियल्लिवळुटे रूप, मेन्नालीतूणु—
कारितन् मननमाम् करत्तिन विन्धुत्त ।

—१९४४

छितरा जाते वासना की गन्दी धारा के भँवर,
और प्रवाहित हो उठती गीतों की सुन्दर
स्वर-लहरियाँ।

तब न उठती धूल
जो सोख गयी रक्त की लाली को
क्योंकि सींच दिया गया होता काल-पथ स्नेह-जल से
और बना दिया गया होता वह सुदृढ़।
चल सकता तब मानव
हिंसा के क्रूर अपराधों से बचकर
सीना ताने, सिर ऊँचा किये
उँगलियों पर क्षितिज घुमाता हुआ।
आनन्द तो वही है परमानन्द,
काश, धरती उसे चख पाती!

उसके गठन में कोई खास आकर्षण नहीं,
फिर भी उस भगिनि के हाथों में
कितनी पवित्रता है!

—१९४४

कल्‌विळक्कॅ

१

पेरियार् चालक्कुटि–
    यारुमायिणचेन्नु
पुरुपुल्कवारत्तोटे
    पुळञ्ञुमरियुन्नु ।
कोटक्कार् ञ्चिरकुवळ
    विर्टात्तक्काटुकाट टु
नाटोन्वेक्कुलुत्तिक्को–
    ण्टरयुगम् परक्कुन्नू ।
अरयोळवुम वेळ्ळ–
    त्तिलाण्टोर तङ्ङिडन–
निरयात्तुगत्तिवल्–
    प्पेटिञ्ञु विरयक्कुन्नु',
वा पिळन्नपिमुख–
    त्तिङ्कस् वन्नार्तींट्टुन्नू
नोपियुक्कुम् वर्पोन्दृप्त–
    भीवरपारावारम्
चायलाम् नेट्टुन्तुट्टु–
    नावुनीट्टियास्मत्स्वम्
वायिलाक्कुन्नू नीळे–
    यापुवुम् नवङ्ङ्ळे ।
ञङ्ङ्नेयोर वेळ्ळ–
    प्पाक्कमुण्टायिट्टिल्ल
ञङ्ङ्ळन् स्मरणयिल् ,
    मरविञ्ञुपामोर्त्ताल् ।

ओटक्कुयल

पत्थर की दीपदानी

१

पेरियार[1] चालक्कुटियार[2] से मिल कर,
लिपट लिपटकर
उग्र प्रकार के साथ
मदोन्मत्त लीला कर रही है।
काले बरसाती बादलों के
पंख फैलाकर
सारे देश को झकझोरता हुआ
भयानक तूफान मँडरा रहा है।
नदी-तीर के छोटे टीले पर
कमर तक डूबे हुए
नारियल के पेड़
भय से काँप रहे है।
वर्षा-काल का क्षुभित डरावना सागर क्रुद्ध होकर
मुह बाये नदी-मुख पर आकर
उन्मुक्त अट्टहास कर रहा है
लपलपा कर
कायल[3] की लम्बी-लम्बी लाल-लाल जीभ
निगल रही है चारो ओर बहनेवाली
लाशों को।
ऐसी भयानक बाढ़ हमारी स्मृति में
आज तक कभी नहीं उमड़ी
उसकी याद आते ही
प्राण सुन्न हो जाते है।

१ २ केरल की दो नदियाँ
३ समुद्र का वह भाग जो किनारे से अन्दर चला आया हो।

कुम्पळक्कुरुपोले
वेण्मयेरीटुम् पल्लिन्
तुम्पु काणुमारुळळ
नरुप्चिरियाटे
कायलिन् वक्कत्तन्ति-
युक्वेतिरेल्क्कुवान् करि-
ञ्चायलाळ वरारुळळ-
ताक्कुम्पोळक्करळ वीडङ्म्
पाय कीरियुम् क्मर
पोट्टियुम तुपयिल्ला-
ताय वचियायुप्पोय् जा-
नेन्नवन् विचारियुक्कुम् ।

श्रोमलिन् समागमत्तिल्-
क्कलविळक्कोम्नुण्टाक्कि
प्रेमविह्वलन् तिरि-
ययुक्कुमारुण्टमाळुम् ।
अन्तियिल् विरियुम्न
रागत्तिन्मोट्टेम्नोणम्
षान्तिमत्तामा नाळम्
मिन्नुमारुण्टेमाळुम् ।
कूरमाम् वेळळक्कुतिल्-
क्करुणम्नेल्नादि टलुम्
धारमामतुवूटि
यापुक्किद्दूरेप्पोयी ।
याटिय मुखत्तोटा-
क्कल्विळक्केड्डाणेन्नु
तेटिक्कोण्टवन् चेन्नू
कायलिन् करिञ्चुण्टिल् ।

कुम्हड़े के बीज की तरह वह मनोरम धवल
दन्त-पंक्ति की मधुर मुस्कान के साथ
सन्ध्या समय 'कायल' के किनारे
स्वागत करने के लिए
वह सुकेशिनी आया करती थी।
उसकी याद आते ही
कलेजा फट-सा जाता है।
वह सोचा करता है
कि मैं भी एक नाव हूँ
जिसका पाल फट गया है,
पतवार टूट गयी है,
डांड कट गयी है।

प्रिया की समाधि पर
पत्थर की दीपदानी बना कर
वह प्रेम विह्वल
हर दिन बत्ती जला देता था।
सन्ध्या में खिलनेवाली
अनुराग-कलिका की भाँति
वह कान्तिमय दीप शिखा
हर दिन वहाँ चमका करती थी।
जो 'करुणन' के लिए
सब से सारपूर्ण वस्तु थी,
बह गयी थी
'कायल' के काले अधरों में
वह खोजने लगा म्लान-मुख,
अपने पत्थर की दीपदानी।

अक्करेत्तुर्रतिलनि–
मनोरम् वेळक्काम् काथि
"वाक्करक्का" वेन्नात्त–
स्वरत्तिलुक्कुम् शब्दम् ।

चीटि्टट्टुम् मलवेळ्ळम्
मुक्कालुम् विपुडि्न्य
चेट टप्पाप मवुटिलिटे
विरयनुम् मोल्लायत्तिल्
मरणम् मारिल्क्वेरि–
नक्कुवानारभियुक्कु–
मिरपोल् विळरिय
क्षोनमायोरम्मृम्म
इनियुम् तनियुक्कुळळ
मुतलामप्पूवने–
पननिवाल् विटातेक–
च्वेयाय् निनीट्टुनु ,
ओच्च मोट्टुतीलोम्
मरयाना वृद्धयुक्कु,
वाच्च वनुनणुम्पिनाल्
मरविच्चुपोय् नावुम् ।

मरणत् चुटटुम् नोक्की,
मृत्युविन मिपिपोले–
मुल्लुम् चुपिक्ळे
समुन्पिल् माण्मानुळ्ळु ,
मुन्नुवळ नृत्तम् चवनु
मोवुम्पिपोले पोळिक्
थमुकोण्टलरीट्–
माळमे माण्मानुळ्ळु ,

सुनायी दी तभी
टीले के उस पार
दीन स्वर में एक मुर्गे की कुक्डूकू ।

एक गरीब बुढ़िया, पीतवर्ण
बैठी हुई थी, दुबकी,
छाती पर चढ़ आयी मौत के शिकार-सी
पानी में हिलोरें खाती हुई
अपनी झोपड़ी की छत पर
जो फुफकारती पहाड़ी नदी की
धारा के मुंह में समाने से
बाल-बाल बची हुई थी ,
उसने स्नेह से चिपटा रखा था
अपना एकमात्र सम्पदा,
अपने मुर्गे का ।
वह बुढ़िया रोने के लिए भी
आवाज नहीं निकाल सकती थी,
तेज सरदी के कारण
उसकी जीभ जड़ बन गयी थी ।

करुणन् ने चारों तरफ देखा
मौत का आवा-जम
चक्करदार भँवर ही
सामने दिखाई दे रहे थे
नाच-नाच कर आगे बढ़नेवाले पहाड़ों-जैसी
बड़ी-बड़ी लहरें
जोर-शोर से उछलती
सामने दिखाई दे रही थी

वानिटे कूटारत्ते
मरुनरायिन्वीन्तुम्
वात्यतन् भयकरा–
रावमे वेळ्क्कानुळ्ळु,
चेन्नुटन् तन्कोलायिल–
च्चरिञ्ञु किटक्कुम्न
तन्नुटे चेरवचि–
योटवन् तिरिच्चेत्ति।

कुरपकायम् तोळिल्
वन्नु तन्मुष्टोम्नान्नु
मुत्किरक्कुत्ति क्षणम
तोणियिलवन मेरि।
'ओन्नुविल् नाम् रण्टाळुम्
मटलि ललल्लेङ्किल–
लिन्नु रक्षियक्कामाक–
मिल्लात्तक्कि पवियें'
तोपर तन् पलपल
साहसम् यन्दुम् मण्ट
तोणियत्तिरपळ्ळिल्–
किरटनु तलयाट्टि।
कतिटुम् कोटुकाटि टल–
प्पोतुम्पिन्नोप्पम् पाळि–
प्पातिद्दूरवुम् वचि–
याळलेक्कूट्टाक्काते,
कायलिन्नु मादत्ते
मुन्पेड्डुम मानियूक्कात्त
मायकन् तनिप्पकुण्टे–
मुळ्ळारा नाटयत्तोरे,
कटन्नेविलुम, नाल–
ञ्चाळङ्ङळान्निञ्चत्ति–

आसमान के तम्बू को
सौ-सौ टुकडा में फाड डालनेवाली
आंधी की भीषण गर्जना ही
सुनाई दे रही थी।
वह जल्दी-जल्दी चल पडा
और बरामदे में तिरछी पडी
अपनी नन्ही-सी नैय्या को ले कर
लौट आया।

छोटा-सा डण्डा कंधे पर रखकर
लुंगी कसकर बाँधे
वह तुरन्त नाव में बैठ गया।
'या तो हम दोनो विलीन होंगे समुद्र में
या हम बचा लेंगे उस असहाय दुनिया को!'
जानती थी नैया पहले से ही
अपने साथी के साहस को,
अतः उसने लहरा में
सिर हिलाकर हामी भरी।
फुत्कार करनेवाले तूफान में
लहरों की परवाह न करके
झट से वह नया आगे बढ़ी।
जानती थी वह
'कायल' के उन्माद का
जिसने
कभी परवाह न की
वह नायक मेरे साथ है।
नाव आधी राह ही पार कर पायी थी
कि
चार-पाँच लहरें एक साथ आगे बढ़ी

त्तटञ्ञु मरियुक्कयाय्
तुपयेम्मोनियुक्काते ।
नेंचुरप्पोटापत्तिल्
नीन्तुमा युवाविने
वञ्चुपियोपुकिन्टे
वालिनाल वरिञ्ञुटन
वलिच्चु वलिच्चु तन्
वायिलाक्कुम्पोळव–
नलियानम्मूम्मयक्कु
भाग्यमिल्लेने चाल्ली ।

इरड्डी मलवेळ्ळम
कण्णुनीराटिवराप् च
परवाना मुत्तदिश
पिस्रेयुम चिरम् वाणाळ ।
कायलिन् ववरत्तेरे–
कवालमा युवाविने–
कवात्तुतान् पिटसिता–
कवलविळक्कनायमाय ।

—१९४६

और बाढ की परवाह किये बिना
उसको उलट दिया।
इस विपत्ति की घडी में
धय के साथ तरनेवाले उस नौजवान का
भयानक भँवर जब
लहरों की पूछ में लपटकर
खींच-खींचकर अपने मुह में निगलने लगा
तो दयार्द्र होकर वह केवल यही बोला—
'नानी का भाग्य खोटा है!

बाढ उतर गयी,
और नानी जीती रही, नयनों में आँसू लिये
यह कहानी सुनाने के लिए।
'कायल' के किनारे
पत्थर की वह दीपदानी
बहुत दिनों तक पडी रही
उस युवक की प्रतीक्षा में।

—१९४६

आ सन्ध्य

आरेयो विचारियक्के,—
        त्तुटुक्कुम् कविळुमाय्
दूरेयाद्दिविक्न यक्क—
        त्तिरियक्कुम् सन्ध्यालक्ष्मि
तुनुषान नेरिञ्ञिट्ट
        नीलमाम् दुकूलमपाल्
मिनुन्न तिरवाळाल—
        न्चुळियुम् पारावारम्,
चेलुत्ताविटुम् नेरि—
        युवक्कमेक्टिप्पटटु—
नूलक्ळोटियुक्कुमपोल
        रश्मिकळ तिळड्ङुनु।

पाञ्ञितेन् परळुटन्
        पतुकोल्लतिनुमुन्नु
माञ्ञुपोयोर रग—
        त्तिक्लेयुक्करियाते।
अनु हा! तुळुम्पुन्नो—
        रनुरागितन् पात्र—
मेघुटेयात्माविटे
        चुण्टुप्पियक्कुम् कालम्,
चिन्तयिललोकिर—
        मगीनमुग्धमारे—
मन्तरगत्तिल् स्वप्नम्
        वीण वायियक्कुम् कालम्,

वह सन्ध्या

दूर
पश्चिमी दिशा के किनारे पर
किसी की प्रतीक्षा में
सन्ध्या-लक्ष्मी बैठी थी,
स्नेहार्द्र विचारों के कारण
उसके कपोल आरक्त हो रहे थे,
जैसे उसने फैला दिया हो लाल दुकूल
कशीदाकारी के लिए,
इस तरह झलमला रहा था सागर
लहरों की सलवटों भरा।
हिलोरें लेती हुई तरंगों के भीतर
किरणें इस तरह चमक रही थीं
मानो तह किये हुए कपड़े के भीतर से
रेशम का धागा काता जा रहा हो।

अकस्मात् मेरा मन
दस वर्ष पहले घटी
विस्मृत घटना की तरफ दौड़ पड़ा—
कैसे थे वे दिन
जब मैं अनुराग का लबालब भरा प्याला लगा रहा था
अपनी आत्मा के अधरों से!
वे दिन
जब मेरे अन्तरंग में सपनों की बीन
इस तरह बजती थी
कि चिन्तन में अलौकिक संगीत की
धारा फूट निकलती थी!

ओमलिन् कुनुचिल्लि—
विल्लि मेल् स्वगति टे—

या मनोहरनील
गोपुरम् काणुम वालम् ।

मनु वानितुपाले—
युळ्ळोर सायाह्नत्तिल्—

च्चेनु मद्रतन वीट्टिल—
प्पतरम वालवेप्पाटे ।

लोलमामोरीविन्त्रळि—
क्करमुण्टाणेनामल

मेलणिन्जिरत्न, ता
क्कर वानार्म्मक्कुनु ।

चम्पकागितन् नेंटि ट—
सटत्तिन प्रकाशिच्च

कुम्पळक्कुरपोले
च दनच्चेरुगापि ।

पातियुमेन्पेर तुन्नि—
त्तीन्न पटटरमालु

पार्यायिलिक्कटक्कुव—
हेटुक्कान् कुनियवे

आतियेयिनन् निटु—
वर्त्तिनाल् नीलवर्वरिम्—

चायल् वेट्टुपिच्चूनि—
ट्टापुरी तोळिलवक्कूटि ।

पूचिकुरत्तेक्कयाल—
प्पिन्निलेयकरावरिच्चुण्टिल्

णुचिरियमत्तित्ता—
णिटळ्ळुम् मिपियाटे

ओमलाव निवगप्पान
निद्दयमदाचार—

भीमगासनमन्टे
मयुत्रळ मरन्नुपोयु ।

वे दिन
जब मैं प्रिया के भ्रू चाप में
स्वर्ग के रम्य नील-गोपुर का दर्शन करता था!
हां उस दिन
ऐसी ही एक सन्ध्या में
'भद्रा' के घर
मैं पहुँच गया आकुल पग धरता।
मेरा मन
अब भी याद करता है
उस परिधान की काली पतली किनारी को
जिसे मेरी प्रियतमा
उस दिन पहने थी।
उस चम्पकांगी के मनोरम भाल पर
कुम्हड़े के बीज-सा
मनोहर चन्दन तिलक सुशोभित था।
जब वह झुकी
चटाई पर पड़ा
रेशमी रूमाल उठाने के लिए
जिस पर
अंकित हो चुका था मेरा आधा नाम
तो उस सकपकायी आतिथेया की
कजरारी वेणी खुलकर
कन्धे पर से खिसक गयी।
सुरभित मनोहर केश-गुच्छ को
पीछे की ओर समेटती
खिल आनेवाली मुसकान को दबाती
चंचल चितवनवाली
प्रिया खड़ी हो गयी
तो
हृदयहीन सदाचार का शासन भूल गये
मेरे दोनों हाथ,

'चापलम्' विटु' वरम्
वत्लोरम, हाय !' एन्नोतुम्
कोपनयुटे चुण्टेन
चुण्टिनालमर्नुपोय्।
भावु निल्कुन्न मुट ट—
त्तटितोट्टट्टत्तोळम्
पूवुमाय् तारम्पट्टे—
यावनापियेप्पोले।
फूंकियो कुयिल्? इळम—
तेन्नल् वीशियो? कण्टो
थोबिलेट्टडानुम् निन्न
तारकळ?—अरिञ्जील!

पक्लो पायुम् वेळ्ळ—
करुतिरप्पुरत्तेरि—
मक्कुमूनेरम् वेळिळ—
प्परिच ताळिलृत्तिर,
सागरस्नानम् चेयृतु
रागमुग्धयायोट ट—
मुक्तागमिच्चीटुम् सौम्य—
सन्ध्ययेप्पुलिप्पोयि।
पुरीवन्तुप्पाले ट
चित्तते वीण्टुम् वीण्टुम्
वरिमेम्बी चिन्चिटटु
वण्णिनालेयुताळोमल्।
एटन्ने मारम्? नीटडुम्?
अनटडुम? धुळरम् पू—
म्पटडने कुरच्चिट
निम्नुपोय् रण्टात्मावकळ।

"क्या चापल्य है, आ जायेगा कोई
छोडिये मुझे!' —कुपित भ्रूभंगिमा से
बरजनेवाली के अधर
मेरे अधरों से जुड गये!
आंगन में खडा था
नख शिख मंजरी विभूषित
आम्र काम-तूणीर-सा।
क्या कोयल कूक उठी?
मन्द बयार चल पडी?
गगन के तारों ने देख लिया?
नहीं जानता!

दिन चला गया—
त्वरितगामी धवल तुरंग पर चढकर
रजतमय ढाल को पीठ पर लटकाकर
सागर-स्नान करके
एकाकी चली आनेवाली
सौम्य संध्या का परिरम्भण करके।
प्रिया ने मुझे
भ्रू-लताओं से कसकर बाँधा
और कनखियों से
निपट वेधा।
कैसे हटूँ?
कैसे चलूँ?
कैसे हिलूँ?
वैसी ही खडी रह गयीं
दो आत्माएँ थोडी देर,
पुलकित होकर।

अन्नु ञान् मटट्टुम्पोळ
मावि ट्टे पिन्ने नाक्कि
निन्नु पुचिरि तूका
साकूतम् दानिलेख।

'आतिर' निलावुच—
ळेन्न ञान् कण्टू पिन्ने,
प्रीतिदड्डळाणेल्लाम्,
एक्लिलुमनु वेरे।
स्नेहत्तिन्नधीनाधि—
कारत्ते लघियुक्ताते
गेहत्तिलारम्भमु—
मच्छनुमा, यिक्कालम्
क्लेशवुम् विपादवुम्,
वपक्तुम् वीण्डुम् प्रेम—
पेशलस्वराश्लेप—
सन्तापड्ड्ळुमायि
मेवुमनत्यानन्दम्—
तन्ने, येन्नालन्नेम्रिर्—
त्तायिन हर्षोन्मादम्
पायि। पायास्स्यमुम्।

—१९४६

उस दिन
म जब लौटा
तो आम्र शाखाओ की आड में खडी शशिलेखा
भेद भरी मुस्कुरा रही थी।

उसके बाद
कितनी बार देखी है मने
आर्द्रा की चादनी
निश्चय ही आनन्द-दायिनी है,
किन्तु उस दिन की चांदनी
कुछ और ही थी।
आज
हम माता पिता बने ह,
नही करते है प्रेम के एकान्त शासन का उल्लघन
व्यतीत होते ह दिन
कलेश, विषाद और कहा सुनी में,
अनुराग डबे मनचाहे आलिगन के उल्लास में।
यह भी निश्चय ही अत्यन्त आनन्ददायक है!
किन्तु
चली गयी है वह सन्ध्या
चला गया है वह हर्षोन्माद!

—१९४६

वन्दनम् परयुक।

वदनम् परयुक, भारताविके दवम—
तन् दयवकहिसतन् असिधारयिलक्कूटि,

दूरदुष्कर यात्र निवहिच्चिता, दीना—
धारयायालुम रक्तम् मेय्यिल् निनोलिच्चालुम

इनले प्पुच्छम् पूण्ट राज्य लिंमक्ळ वनि—
सुभतारभुतस्नेहमधुरम् पुणरवे

मगळस्वातन्त्यत्तिन उज्ज्वलोज्ज्वलमाय
मजुळप्रभाततिलविटुनेत्तिच्चेमू

प्राचियुम् प्रतीचियुम् जयारवम्
वीचियायुमर्न्नेत्ति भुवन्नु हिमवाने,

पौरर तन हृनीडत्तिल् निमुयर्न्नानिदङ्ङळ
सौरमागत्तिल् चेल्वू काटितन् चिरनिभेल्।

रक्तदाहमार्न्नोर साम्राज्यसिहत्तिटे
धान्तवुम् कुटिलवुमायिन्धताम दप्ट्र

धाणुक शापिन्जना निटप्पू निरम् मङ्ङि—
त्ताणुपाम् चन्द्रवल पारोयीपुलरियिल्

इरळिर् त्तिळङ्ङिय कण्णुकळ, चरित्रत्ति—
नरनिल् धाणाम् मायुम् रण्टु तारकळ पाले।

शतश: धन्यवाद !

करुणामय की करुणा को शतश: धन्यवाद !
हे जननि ! अहिंसा की असिधारा पर पग धर
दुष्कर यात्रा कर पूर्ण, श्रमित-पद, क्षाम, क्षीण,
क्षतत रक्त-पंकिल गात्रे ! तू पहुँच गयी
उस पार जहाँ मुस्काता है
उज्ज्वल स्वतन्त्रता का मंजुल मंगल प्रभात !
सारी वसुधा आनन्दलीन
हैं गूंज रहे स्वागत में हर्ष विकल कल-कल
उल्लसित पूर्व-पश्चिम के ये गोलार्द्ध युगल
दाएँ-बाएँ उठ रही जयध्वनि की तरंग,
उन्नत हिमाद्रि का भाल भीगता जाता है।
उठ रहा तिरंगा आच्छादित कर सौर-भाग
जागृत जन-मन में ऊर्ध्वगमन की अभिलाषा
जनता के हृदय पिण्ड से कढ़ आनन्द विहग
ऊपर झण्डे के पास पहुँच मँडराते हैं।
वह उधर क्षितिज के पास अधोमुख कान्तिहीन
जो डूब रही है मन्द प्रभा,
वह नहीं चन्द्र की कला,
कुटिल शोणित पिपासु साम्राज्यवाद की दंष्ट्रा है।
ये दो तारे जो दीख रहे हैं अस्तमान,
आँखें वे उसी दनुज की हैं अँधियारे में डूबी प्रकाश की कणिकाएँ
इतिहास-गर्त में पड़े हुए अंगारों-सी।
कल तक जो हँसी उड़ाती थीं तुझको पीड़ा पहुँचाती थीं,
वे राजरश्मियाँ आज चकित, विस्मित, विभोर
घर घर से बाँह बढ़ाती हैं,
तुझको अपनी अग्रज मान फूलों के हार पिन्हाती हैं।

निन् मुग्धमाकुम् कालिल्, सटयाल् परुषमाम्
तमुखमुर्हम्मिक्कोण्टा वद्ध सिहम् निल्पू ।

वय नीतिकळ्तु केवलम मरक्कुमो ?
धर्ममाम्निन् सौहार्द्धमेन्नेनुम् पुलत्तुमो ?

वन्दनम् परयुक, धर्मपालिके, दैवम्—
तन् दयक्कानदाश्रुगदगदगदस्वरम् ।

पावने, पौरस्त्यमाम् दिङ्मुखम् तुटुक्कुन्नू
तावकस्वातन्त्र्यत्तिन् स्वच्छमामुदयसिल् ।

एन्तितिङ्ङने शोणशोणमाकुवान ? ओर्त्ताल्
निन्तिरुवटियुटे हृदयम् तकर्न्नुपोम् ।

इन्नलेत्तिरुटल् परियेन्नुटिटच्चुन्टि,
अनेदुमुक्पुमरत्तिवल नावुकळाट्टि

आयिरम् परितुररयिलक्कूटिस्टे
वायिटक्किनटेक्काट्टिप्पुळ्पुम् स्वेच्छानत्रम्

विपुडिन् क्षेरिच्च निन् प्रिय पुत्रर तन् रक्त—
मापुक्कि नुरक्कयाणिप्पापुमतिन् पिन्प

ग्रामवुम् नगरवुम् वयलुम् काटुम् मटु—
मा महाधीरन्मार तन विटरुम स्मृतिकळाल्,

अवतन्निनळुकळ वीणिटुम वण्णङ्ङळान्,
अवपिल्त्तिङ्ङुम् त्यागामाद सौरभङ्ङळाल

इन्नु काळमपिर मक्कळ्वू निन् कणिणल् निन्नुम् रण्टु—
मून्नु निम्मलस्नेहानुग्रहकणिकन्ळ

पूनमाम् स्वानन्यत्ते स्वमिक्कान् जीवितान—
भातराय् वाणानारपुनरिन पापिञ्जानू

वन्दनम् परयुक, धारमानवे, दवम्—
तन् दयकराभिमानन्पिन्नमामात्मानाट !

माँ ! देख, मुग्ध यह जीर्ण सिंह
कैसे चरणों से सटा खड़ा
तेरे पद को निज जिह्वा से सहलाता है।
पर हाय कहीं यह वन्य जीव
रक्ताक्त जिघांसा को तजकर
करता भारत का शील ग्रहण
बन पाता तेरा अमिट मित्र !
करुणामय की करुणा को शतशः धन्यवाद !
हे धर्मपालिके परम पावनी मां ! तेरे
सौभाग्य-उदय से यह कैसी लाली छिटकी,
संपूर्ण पूर्व-जग का आनन जगमगा उठा,
है कहाँ आज वह स्वेच्छाचारी कुटिल तन्त्र
अंध काल-कक्षों में भीतर जीभें खोल,
अथवा फाँसी के तख्ता पर फण फुला फुला,
तेरे निरीह पुत्रों का शोणित पीता था ?
हो गये तिरोहित काल नाग
हो गये तिरोहित माँ, तेरे वे वीर तनय
जिनके शोणित से भाग्य देश भर का जागा,
पर हाय,
जिन्होंने स्वाधीनता नहीं देखी।
उन वीर हुतात्माओं की स्मृति के रुचिर फूल
उन धीर शहीदों की पंखुड़ियों की लाली,
उन अजय योगियों के जीवन की त्याग-सुरभि
ये मिटे नहीं, ये सभी अभी भी जीवित हैं।
उनसे ही तो सुरभित है अपने ग्राम-नगर,
उनसे ही तो शोभित है ये वन विपिन-खेत,
भुज उठा खड़े है उनकी पूजा में पहाड़,
नदियाँ गुण गाती हुई सरकती जाती है।
माँ, आज पुण्य का पर्व, शहीदों की स्मृति में
अपने क्रन्दन दो अश्रु बिन्दु ढल जाने दो
करुणामय की करुणा का शतशः धन्यवाद !

चङ्डल विधिक्तमनु वन्चा दास्यत्तिन्
तोङ्ङ्ल्लुतान् तनिक्कलक्कारमाय् वारित्तूनिन्,
भीरुवाय्—स्वातन्त्र्यमेनुच्चरिक्कुवान् पोलुम्
भीरुवाय्–तळन्न निन् जीविनम् मयङ्ङुम्पोळ,
निम्मा यपुत्रन् वीरतिलकन स्वातन्त्र्यम् तन्—
ज मावकाशम् तानेन्नाद्यमाय् प्रख्यापिक्के
नदुङ्ङी निन्नारमावु 'यूनियन् जाक्का' टुन्न
नैदुतामत्युनत्त ध्वजत्तिन् तरयाटे।
एक्किलुमतिन् पट पुपङ्ङीलनिन्निरळ
तक्किट्ठुम्निपल् नीण्टू निन्चरित्रत्तिलनरूटी।
नूरमामतिन्नटिपुतिरान् न्वरक्तम ना
धारधारयामने पनर्नीलतिलृप्पिन्ने।
एन्नयो निरीटत्तिन् वल्लटिच्चुर ण्पिच्चो—
रत्तरक्तुमेलेन्न साहसम् तवन्नील
घमत्तिन् नयामुघनालयिल् निन्नुम पिन्ने—

वह भी था मात एक समय
जब हम जड़ता में पड़े हुए अवसाद-ग्रस्त,
दासत्व-पाश को विधि का वह अचल विधान मान,
सोये थे हो निश्चेष्ट
मुक्ति के हित आयास न करते थे।
ऐसी कदर्यता थी मुख से
'स्वातंत्र्य' शब्द कहने में भी हम डरते थे।
तब फटी भीरुता की बदली,
उच्चरित हुआ गंगाधर के गंभीर कंठ से महा-सत्य
केसरी तिलक की वाणी में
जागृत स्वदेश का कंठीरव
प्लुत में चिंघार पुकार उठा
'स्वातंत्र्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार!
उसे जैसे भी हो हम पाएँगे,
मस्तक का दे बलिदान
मुक्ति की मणि का मोल चुकाएँगे!'
फट गयी भीरुता की बदली
फट गया गहनतम हिमाकार
नदियों का जल खलबला उठा,
करवट लेकर जागे पहाड़।
'यूनियन जैक' तिलमिला उठा
ध्वज काँपा नीचे नाव हिली
सत्ता का आनन म्लान हुआ
जनता को नूतन ज्योति मिली।
तब से तू ने जाने कितने पावक सायक संधान किये
जन्मे होंगे कितने सपूत
कितने किशोर बलिदान किये।
यूनियन जैक का उन्नमन पर हो न सका
सोने-चाँदी से पिटा हुआ ध्वज पिंड मूल में था दृढ़तर,
थे किये हुए उसको अजय,
चरणों को कसकर गहे हुए निर्लज्ज किरीटों के पत्थर।

क्कमकोविदन् सत्यसगरन् शुचिव्रतन

वाळिनाल् मुरियाते, तीयिनाल् दहिक्कात
वाच्चिट्टुमोरायुधम् एति गाधिजियेत्ति,

विनयम पठिच्चपोलक्कादियता, धीर—
सुनये, निन्पादत्तिल तलताप्त्तिनिन्नल्लो ।

वदनमपरसुख, विश्ववन्दिते, दैवम्—
तन् दयक्काशाफुल्ल स्वच्छमानसत्तोटे ।

मालम् लिन् धर्म्मार्जित स्वातन्त्र्यमुदयोपिप्पान
नीलनिम्मल शब्द गुणमामावाशत्ते
नोनकुव, महायदयाक्कि वात्तुतु, नालु
दिक्कुव ळिरळत्तुणियतिल्निनूर्त्तीट्टुनु ।

श्रीलमामणियता आलुनु महा विश्व—
घालतन् मध्यत्तिवल् प्रिय दशनावारम् ।

मुन्परिञ्ञिट्टिल्लात्त मान्कस्वातन्त्र्यत्तिन
सम्पन्नपानत्ताले मूत्ताट्टुमारो काट टुम्

घलिक्वेच्चलिवकेनिनूपूणमगळत्तिट्टे—
योलितान् तुळुम्पुनु चक्रवाळत्तिन् वक्तिल् ।

धीरमहळमुम्वनिगळलकळारावो—
दारमावतुम् मूम्नु सागरमिस्सदमम्

शारददिनादयश्रीनिवसुभ स्वच्छ—
गौरमाम् वेळिच्चत्तिन धेण्काटटक्कुट मन्दम् ।

उन्ननस्वातन्त्र्यत्तिन रत्न पीठत्तेदेवि,
वत्सलरर्क्कियालुम् ! निन् नाममुपडङ्ङ्टे,

नूरमायमिल् नूरूनूरु गानत्तिल नूर—
नूरु नूरन्नाराष्ट्रमहलङ्ङळि, लम्म !

इतने में सत्यव्रती योगी, नम्रता के पुण्यावतार
गांधी आये, खुल गया
जग के शस्त्रालय का नया द्वार।
यह नव शस्त्र जो नहीं आग में जलता है,
जिसको न काट सकती शाहों की तलवारें,
जो सत्य और संयम दोनों पर ही सम-गति से चलता है।
है धन्य वीर, जो यह धर्मास्त्र उठाता है
सौ बार धन्य वह पुरुष अहिंसा के सम्मुख
जो खड्ग फेंक लज्जित हो शीश झुकाता है।
वह उसी पुण्यमय महास्त्र का फल सुन्दर
जो ध्वजा शूलवत कभी हृदय में चुभती थी
लहराती है वह विजयोन्नतता में भरकर।

करुणामय की करुणा को शत-शत धन्यवाद!
हे जगतपूजिते! विश्वधाम के मध्यस्थित
घटावत सगुणमय व्यापक यह महाव्योम,
तेरी महिमा नित गाता है,
त्रिभुवन को तेरा धर्मार्जित पावन स्वतन्त्रता का सन्देश सुनाता है।
बह रहा क्षितिज को छू उद्वेलित मुक्त पवन
वनराजि मुक्त हो सजती है,
द्रुम के पत्तों में अनिल नहीं सीत्कार रहा
हरियाली में मांगलिक तान यह बजता है।
तीनों समुद्र हुंकार रहे गम्भीर नाद।
गर्जन में भेरी की गत है।
इस मन्दिर के ये मान भव्य जिसका किरीट
इस अवनीतल का सर्वोच्च शृंग हिम-पर्वत है।
प्रस्तुत स्वतन्त्रता का यह मणिमय सिंहासन
बैठो माँ, हम मिलकर आरती सजाएँगे।
नाना भाषाओं में लिखेंगे एक नाम,
नाना छन्दों में एक गान हम गाएँगे।

वदनम परयुव, रंजितविश्वे, दैवम—
तन् दयवकुल घरसु दराननयाचि!
अव, निन्स्वातन्त्र्यत्तिन् चिह्नत्तेष्पारिक्कुन्नि—
तवरम नीलच्छायमाय तन् ववचत्तिल।
उ मुखम् हिमवानुम विंध्यनुम मलयनुम्
नम्मुटे पताकयुत्पुळकम दर्शिक्कट्टे।
एडडुमिन्नविटत्तेयभिमानत्ताटोप्पम्
पोङ्ङमी त्रिवणङ्ङ्ळ चत्राक्मनोनङ्ङ्ळ
नीलयिलपूर्वाभिमानत्तिल पाटुम मल—
षोलकळ पोलुम मारिल ओरिमेल् कुत्तीटुनु।
नाळेयिस्वातन्त्र्यत्तिन् चिरविन काटटेटि टटटु
नीळेयेपलयापि हपत्ताल् विजम्भिक्कुम्।
नाळेयिस्समायान वाग्दानम कण्टिट्टेरे
नाटुकळाशापिछम् विकत्ति नत्तम चेम्पुम्।
ई अजय्यतयुटे निपल् नाणुम्पाळ तोंकिन्
वाय तमत्तान् पोत्ति निलुकुमन्नमिराज्यम
मयमे, दूरे! ददूरेयागवे! नवयुगा—
दयमाय्, नवरश्मि पूगुमिक्कादिकण्टा?
मेटुकळ वयलुकळ काटुकळ वटलुकळ,
नाटुकळ नगरङ्ङ्ळानन्तम मले मेले,
ई अनुग्रहम् तूकुम् पाटितनमोष्यास्निग्ध—
च्छायमयिन् प्राणिक्कट्टे नागियुम वननुम!
वदनम् परयुव राष्ट्रनायिने दवम्—
तन् दय वनभगुर मगळे, जयिच्चालुम्!

—१९४७

करुणामय की करुणा का शतशः धन्यवाद!
माते तेरे चमकीले केतु का व्योम-स्व
सादर सुनील निज कंचुक पर लहराते हैं।
मस्तक उन्नत कर मलय, हिमालय, विन्ध्याचल,
झंडे की छवि को देख छके रह जाते हैं।
स्वातन्त्र्य-मुकुट का पट तीन रंगोंवाला,
इसके नीचे सर्वत्र सौख्य बरसाएँगे।
यह शान्ति-सुन्दरी के हाथों का इन्द्रधनुष
बन इसे देख आशा के रंजित पिच्छ तान,
नाचेंगे राष्ट्रों के मयूर, उत्सव होगा।
इस दुर्विजेयता की छाया को देख मात
अत्याचारी झुक जाएँगे।
बन्दूकों के मुख अनायास ही मुद्रित होंगे,
मुस्काएगा संसार शान्ति की छाँह-तले,
निश्चय, त्रिभुवन युद्ध के भय से मुक्त होगा।
हो दूर भविष्यत् की चिन्ते! मानस के भय
री आशंके! अब और नहीं आतंक जगा।
हो चुका उदित प्राची के तट पर युग नवीन
यह केतु उसी की किरणों में लहराता है।
इस महाकेतु के नीचे सारे ग्राम नगर,
सागर, उपसागर, शैल शृंग वन-उपवन, खेत
युग-युग भोगें सुख-शान्ति-स्नेह में बँधे हुए।
करुणामय की करुणा का शतशः धन्यवाद!
भारत का मन सारी वसुधा से एक रहे।
अयि राष्ट्रनायिके मंगलमयि, तेरी जय हो!

अनुवाद—कविवर दिनकरजी द्वारा,
रेडियो कवि सम्मेलन में पठित

—१९४७

चरित्रत्तिन्टे किनावुकळ्

क्षीणमाम् चन्द्रक्क न
पिन्नेयुम् पटिञ्ञारे-
क्कोणिलेक्किवतरिन
मुकिलिन् वक्किल्क्कूटि
निजमाम् प्रकाशत्तिन्
राज्यत्तेयीपद्रक्कन-
निरमामतिरिट्टु
नीळने तिरियुक्कुमु-
उलकत्तिलेक्कित्ति-
मोरत्तेयुम तवपत्तुवा-
नुणरम् कोट्टुकाटि टन्
सन्देशम् श्रवियुक्काने-
उलकत्तेयोक्कायि-
क्कण्टुकाण्टाकाशत्ति-
लुदयम् कोळ्ळुम् ज्योति-
स्मयरे श्रद्धिक्कान ।

आश्रयिल् चरित्रत्ति-
श्राधानाल तन्न त-
श्राग्रहङ्ङ्ळाल् चूप-
प्पेन्टेगुम् महानवरर्
नट्टुङ्ङित्तोरिच्चात्रु
नारिप्पायारामत्तिन
नट्टुविल् प्पन नूट टा-
प्पाटियादरकारील् ।

ओटक्कुपल्

इतिहास के सपने

इस प्रक्षीण चन्द्रकला ने
आकाश के पश्चिमी कोने पर बिखरे
बादलों के किनारे पर
अपने प्रकाश के साम्राज्य को समेट कर
अलग हटा लिया है
और
लाल रेखा की एक बारीक मामा बना ली है।
वह नहीं सुनती है
आँधी की आवाज़
जो जाग उठी है
संसार के समस्त भय को
दूर करने के लिए
वह नहीं देखती है
आकाश पर उदित होनेवाले
ज्योति पुरुषों को जो हैं
समस्त विश्व की अखण्डता के साक्षी।

अपनी साधों को मन में सजाये
महान अकबर
इतिहास के थाथाना से भग्नाश,
अकस्मात जाग उठा
शताब्दियों की लम्बी नींद से
और
उसने देखा चारों तरफ
आगरा के उद्यानों में।

'काटु वेरिय मन–
　　　　आतिनु वेदत्तिटे–
येट्टुक्ळतोरम कांट्टि–
　　　　क्कोट्टुत्तु दैवक्यम् ञान् ,
चोरतन् चुवप्पिलुम्
　　　　कण्णीरिन् पुळिप्पिलुम्
सारमाम मर्त्यैक्यत्ते–
　　　　क्करष्टेत्तिक्काणिच्चील !"

अटन्ञू तळर्नोरा–
　　　　क्कणपोळ यावङ्ङ्णिन्मे–
लटर्नू नेट्टुवीप्पाल
　　　　रष्टु चेम्पनीरितळ ,
मुटि टय सहोदर–
　　　　कलहत्तिनल्वर्त्ति
नैटि टमलेट टोरिस्य–
　　　　तन्त्वारकम्णम् पोले ।

अम्पलम्, पल्लपळ्ळि,
　　　　हिन्दुवुम् मुसल्मानुम्
सम्पन्नमाक्कित्तीत
　　　　नगरम नाट्टिनुपुरम्,
मनवरत्तिन् ज्वल–
　　　　ज्वालयाल मस्कारत्तिन्
चिनयाश्रनात्तीत्तु
　　　　विनुम्पुम यमुनया

चुपियिन् च्चुपियिल्तन–
　　　　नारत्ते विर्पुङ्ङिक्कारो–
प्टापुरी दनथनोन–
　　　　यणियापुपानत्तिल् ।

"बबर धर्मान्धता को मैने दिखाया
कुरान के प्रत्येक पन्ने में
ईश्वर की एकता का साक्ष्य,
मगर हाय,
मैंने नही देखा न दिखाया
मानव की एकता को
खून की लाली मे
और आसुओ के क्षार मे।'

मुद गयो थकी हुई वे पलकें
झर कर गिर गइ
गुलाब के फूलो की दो पखुरिया
उन आँखो पर
निश्वास के कारण,
माना
भाइयो के ग्रह कलह म
भारत के ललाट पर
लगा हो कटार का घाव,
टपक पडे हो रक्त के कण।

समीप से बहती रही
नीलाचल फलाये यमुना
भवर भँवर म
शोक का घूट पीती हुई
सुबकती हुई यह देखकर
कि हिन्दू और मुसलमानो ने मिलकर
बनाया था सम्पन्न जिन
मन्दिर, मस्जिद और ग्राम-नगर को
वे जल रहे ह
धर्मान्धता की प्रचण्ड आग मे
बना दी गयी है सस्कृति की चिता।

दिल्लियिलारु शव–
प्पटिटियिलर गसी–
यल्ललालुणने तो
तट्टेयोमयिलत्तप्पि ।

वार्त्तिक नक्षत्रङ्ङळ
जपमालयाय कयिल–
च्चार्त्तिय रावङ्ङाटट्
नोवङ्ङवे विळरिप्पोय ।

आरत्तु ?—शवक्कुटी–
रत्तिनेप्पश्चात्ताप–
धारयाल ननयक्कुमा–
क्कणिणलेन्तार माट टम् !

जपमालये राज्य–
लक्ष्मनन् गळत्तिक्कल्–
ज्जयियामर गसो–
यिरक्कुम वरेच्चुन्टि ट ,

धारदानमायी
पवित्रम् जपमाल
चोरयाल्कण्णीरिनाल ,
चेंकालुम् जेरिन्जलो !

विरलिन्नट टत्तोळम्
थीग्नु मगाधमाम्
मरळिन्नटिन्नरे–
क्मक्कनुमाणा महान् ।

एन्निलुम् चरित्रत्तिन्
प्रोन्माम स्वप्नम् पाने
तन्नुरण्णान् काणक्कत्तने
तरत्न नन् माग्रान्यम् ।

जब पड़ा औरंगज़ेब
किसी की एक कब्र में
जो शाह महल टपकने लगा
कानी स्तुति
देखा कि
इतिहास-ग्रन्थों की तसबीह का
उसने हाथों में लटके हुए भी पात
पड़ गई थी बिल्कुल पीली।

यह कौन है?
कैसा परिवर्तन आ गया है
इन आँखों में
जो झर रही है मकबरे का
पश्चात्ताप के आँसुओं में।

विजेता औरंगज़ेब ने
बाँट दी या बदल कर अपना तसबीह
राजसत्ता के गले में
दिखाई देने लगा
वह पवित्र जपमाला
अत्यन्त वामय
खून और आँसुओं से तर
चूर-चूर हो गया शासन-दण्ड।

कैसा था वह महान
नख शिख तक
वीरत्व से विभूषित
अगाध भक्तिभावना से परिपूरित

किन्तु
इतिहास के शानदार सपने की तरह
टुकड़े-टुकड़े हो गयी था सल्तनत
उसी की आँखों के सामने।

इरविनयटय्क्कयाय्
चन्नवर्त्ति तनवण्णि–
निमकळ पाटिच्चिवल्लु–
पालेपुम वण्णीराटे।
अन्तरीक्षत्तिन् मुख–
त्तियलुम् परिहास–
मन्दहासम् पोलोरु
वोठिळमीनुदन्मिन्नी।

पूर्नयिवलेप्पुरा–
तनमाम चितयिलुम
दीनदशनम् रण्टु
नयनम मद्दिरिक्ककण्डु।
"इनियुम् ज्वलिक्कयो
हिन्दुराज्यत्तिन् स्वप्न–
मनिवार्यमाम चरि–
त्रत्तिनेगणिक्कवाते!
मुसल्मान् समुन्नत–
माय तनगिरिस्सिवल
मुटि चूटियतनु
ञान् सहिच्चिरला, पक्षे,
हिन्दुराज्यत्तिन्नटि–
तर वेन्टुवान् रक्त–
विन्दु ञान् चारिच्चनु
कालवुम् पोम्त्तीला।'

शिवजि जलाद्रमाम्
कण्णिम चिम्मी तल
निवरम् मलवळी
वारनु मूक्माय् वेळाक।

शाहशाह ने थककर बन्द कर ली अपनी आंखें
आंसू की नन्ही-नन्ही कणिकाएँ
उनमें चमक उठी
शीशे की कनिया-सी।
आकाश के मुख पर
जल उठी एक उल्का
क्रूर परिहास की भांति।

पूना की पुरानी चिता में
दिखायी दिये
दो नयन
उदास टिमटिमाते
अब भी
इतिहास की दुघपता की उपेक्षा कर
जल रहा है सपना
हिन्दू साम्राज्य का?
मुसलमानों ने
अपने समुन्नत सिर पर
जो मुकुट पहना
उसे मन नहीं सहा।
हिन्दू साम्राज्य की
नींव डालने के लिए
मन रक्त बिन्दुओं का तर्पण किया
उसे काल भी न सह सका।
शिवाजी ने
अश्रुपूरित अपने नयन मूंद लिये
मौन मूक होकर
यह वाणी सुननेवाले पवनों ने
अपना मस्तक उठाया।

"डरळिल् निर्माणमाम्
भेदभावनये`लाम् ,
अरिय वेळिच्चमा-
ञ्भित्तियेस्सहियक्कुमो ?
मुकमाम् सत्यत्तिन्टे
चित्रमाम् किरणङ्ङ-
ळाक्वे स्वमौलिक-
व घत्तेयोर्मिच्चेंक्विल् !
तङ्ङळिल्प्पुणर्न्नेङ्किल !
माधुयम् चारिञ्ञुक्को-
ण्टङ्ङने नवोदय-
मिविटेप्पुलर्न्नेङ्किल !'

अन्तरीक्षत्तिन् मौन-
मी मनोहरमाय
चिन्तये लाळिच्चुको-
ण्टनङ्ङातिरियक्कवे
चोरतन् गन्धम् पूशि-
दशावसन्चयम् नक्कि-
प्पारम्पेत्तरिम्पियक्कुम
जडमामारु वातम्
दिल्लियिल प्पञ्चाबिल श्री-
नगरिल क्वुटि टप्पटि ट-
यल्लिलङ्ङ्ने निर-
ङ्कुशमाय् विहरिच्चू ।

—१९४८

"भेद भाव की सारी दीवारें
अन्धकार की उपज हैं
क्या मनोहर प्रकाश
इसे सहन करेगा?
एक ही सत्य की ये विचित्र किरण हैं
ये धर्म सारे
काश,
अपनी मौलिक एकता को याद कर पाते
और आपस में आश्लिष्ट होते ये,
इस तरह यहाँ सुंदर नवान्य का
आरम्भ होता।'

वृद्ध अन्तरिक्ष का मौन
इस मनोहर भावना को दुलरा रहा था
तभी आया दूषित वायु का एक निरंकुश झोंका
रक्त रंजित गंध का अवलेप कर
लाशों का आडम्बर चाट कर
रात में घूम घूम कर पृथ्वी को भय प्रकम्पित करता
दिल्ली में,
पंजाब में,
श्रीनगर में।

—१९४८

भारतेंदु

१

अम्पिळि । येपुपतुम
तुरंयुम कारलङ्ङळक्कु
मुन्पिलाणावनुम्मा नी ?
इविटे प्यार व दरिल

यलिय चेविपळुम्
नीण्टुयर्नपुम् मूक्कु–
मलियुम् मिपिपळु–
मार्न्नोर कृ नावालन्

मुविलिन नीलयराटिन्
चिल्लपळ माटि टन्विरि–
च्चवसेच्चेन्लाण्ळ
नी वरान यविप्पोवे

मेटयिल् ज्जनालयक्क–
लेसिच्चुनाविरक्कोण्
मविटारिल्ले मेम–
लेलुमक्षमयाटे ?

प्राणनाम् प्रियमाता—
युपवामताल् परि–
क्षीणयामारो जानि
धयूवयाम् तापतेङ्ङो ।

अम्मतन् वयेत्रमूवनु
नावणम् गृहत्तिद्धन न्–
त मनरळवर पादु ना–
स्वम्ममानुण्टावुवान् !

ओटवुयल

भारतेन्दु (राष्ट्रपिता)

१

याद!
याद है तुझे,
साठेक वर्ष पहले की बात है,
यहाँ इस पोरबंदर में
बड़ी-बड़ी आँखें,
लम्बी ऊँची नाक,
और बड़े-बड़े कानोंवाला
एक दुबला-पतला बालक
छत पर खिड़की के पास
उत्तरोत्तर अधीर खड़ा रहता था
उचक-उचक कर ताकता था
जब देर हो जाती थी आने में तुझे
बादलों के नीलारण्य की डालियाँ हटाते-हटाते।

प्राणों-सी प्यारी माँ
शायद उपवास से परिक्षीण हो कर
नीचे कहीं काम कर रही हो!
कितना कष्ट उठाना पड़ता है
माता के करों को
अपने बच्चों के लिए
घर में
एक दूसरे स्वर्ग की रचना करने में!

म, ग्मच्चिलुनिनुम् तापे–
yuvakoटिच्चेन्नरियिच्चो–
ह्म्म वाङडणम मव–
नोनु नी नेरे चेन्नाल् ।

वत्सलमाताविट्टे–
याद्रचुम्बनम्पोलो–
ह्सवम् स्नेहिक्कुमा
'मोहनदास'निल्ल ।

दारवळ हर्पालि चिम्मु–
मिममेलानन्दाश्रु–
भारतनूतिळक्कमो–
टक्कुमारने नाविन,

ई मकन् वळर्म्मा–
ळाणु पुण्ययामित्ते ।
नी मन्निन् किरीटमा–
मुन्नते मन्नाळोति ।

२

अम्मिळि, निन्नेप्पोले
सुन्दरनल्लेन्नालु–
मन्पिनोटक्कळय–
नमृतात्मकनायि

भारतचरित्रत्तिन्
चक्रवाळत्तिल्स्सौम्या–
दारदानन् पिन्ने
मोहनन् मन्दम् पाडडी,

भीतिनिश्चलमायि–
क्कानत्तिन् मणन्नट्टिर्
पानि पूष्टुपाय्, कोटि
तवर्नु, चाल् चाणाते,

विटन्न 'विपक्क', न–
डडुन्नु माणाय् , माणा–

ओटक्कुपल

अगर सामने चला आता तू, चाँद,
तो वह छत से नीचे दौड़ पड़ता
और माता को चन्द्रोदय का समाचार दे कर
उसका चुम्बन पाता
प्यार भरी मा के
स्नेहार्द्र चुम्बन से बढ़कर
'मोहनदास' के लिए
कोई दूसरा उत्सव ही नहीं था।
हृष मुकुलित नयनों से
आनन्दाश्रु प्रदीप्त तारों ने
उस बच्चे की ओर देख कर
कहा
हे पुण्यभूमि भारत,
जब यह लाड़ला बड़ा होगा
तब तुम पृथ्वी का मुकुट बनोगी

२
हे चाँद,
यद्यपि तेरी भाँति सुंदर नहीं हुआ
तथापि वह अकलंक
आर्द्र और अमृतात्मक बना
भारत के इतिहास के क्षितिज में
वह सौम्य, उदारदर्शन मोहन
फिर धीरे धीरे
ऊपर की ओर गतिशील हुआ।
प्राची
जो काल के सकत में आधी धँसी
मान मली
भय से निश्चल हो कर
केतु-खण्डित पड़ी थी
वह धीरे धीरे गतिमय दिखायी दी,

युटने चैतयत्तिन्
वेलियेट टवुम नीळे
आयिरम तिरक्ळाय
विश्रोभमलयनुक–
यायि, मुड्डुक्यायी
दुम्तरप्रनिवधम् ।
भूतकालत्तिन्तायि त–
यिटट ननूरम पोरुकान
नूरिकोनुवमान
चरित्रमारभिच्चु ।
प्राचियड्ने पाड्–
वनुतिनोयात्तेतुन
वीचिनळटिच्चेन
गाज्यट्ड्रुणर्तील ।
मरणविकारड्–
ळेतन्तु वाणिच्चील
महियिलजय्यत भविच्च
साम्राज्यड्ळ ।

पारतन्त्र्यत्तिनूरिट–
वनुम्पायी विरयविरन
च्चारयिल यरणीरिन्टे
चुपियिल स्वमम तापि त
पानियुम् मरिप्पिन्च
साम्राज्यस्याटळरावुम्
पालोळि परतुम
मात्विनप्रनागतिल्
भारत्डु हा, वाट्टि–
कराटुतानवान
धारयुम् विटनवु–
माय वम्पनिन् ण्पम् ।

ओटपुवम्

चारों ओर
नयी चेतना का ज्वार लक्षित हुआ,
सारे दुस्तर प्रतिरोध डूब गये,
हजारों लहरों में हलचल मच गयी
इतिहास के अतीत के भीतर
डाल दिये गये लंगर को
अत्यन्त आनन्द के साथ
ऊपर खींचना शुरू किया।
जब प्राची उठी
और आगे बढ़ी तो
मदोन्मत्त हो कर गरजती आती
लहरों के ज्वार में
कितने ही देश जाग उठे!
अजेयता के दर्प से भरे
साम्राज्यों ने
कितने प्रपंच नहीं रचाये!

जिन साम्राज्यवादी लुटेरों ने
गुलामी में जकड़ी प्राची को
खून और आँसू के भँवर में
डुबो कर अधमरा कर दिया था,
उनपर भी
भारतेन्दु ने
दुग्ध धवल सात्विक प्रकाश फैलाया
और उस प्रकाश में
उनके क्रूर कर्म का विकृत रूप
उजागर कर दिया।

युटने चतयत्तिन्
        वेलियेट टवुम नीळे
आयिरम निरवळाय
        विक्षोभमलयक्कुक–
यायि, मुडडुवयायी
        दुस्तरप्रनिनयम ।
भूनकालत्तिलुत्तापि त्त–
        यिन्ट नक्रूरम पोक्कान
भूरिकौतुनमाम
        चरित्रमारभिच्चु ।
प्राचियडडने पाडि—
        क्कुतियवेयात्तॅतुन
वीचिवळटिच्चेत्र
        राज्यड्ड्ळुणर्तीन ।
मरणविवारडु—
        ळेन्नन्नु वाणिच्चीन
महियिनजय्यन भविच्च
        माम्राज्यड्ड्ळ ।

पारतन्त्र्यत्तिल्विरट–
        यक्कुम्मायी विरपविरने'
च्चारपिल, वरणीगिंट
        चुपियिन् स्वयम् तापि_त्त
पानियुम् मरिणिच्च
        माम्राज्यक्काटटरावनुम्
पालोळि परत्तुन्न
        मात्विकप्रवानत्तिल
भारतेंदु हा, वाट्टि–
        क्काट्टुत्तानयक्के
घारवुम् विट्टतवु–
        माय वम्मत्तिन् रूपम् ।

ओटक्कुपल

चारों ओर
नयी चेतना का ज्वार लक्षित हुआ,
सारे दुस्तर प्रतिबंध डूब गये,
हजारों लहरों में हलचल मच गयी,
इतिहास के अतीत के भीतर
डाल दिये गये लंगर को
अत्यन्त आनन्द के साथ
ऊपर खींचना शुरू किया।
जब प्राची उठी,
और आगे बढ़ी, तो
मस्त-मस्त हो कर गरजती आती
लहरों के ज्वार में
कितने ही देश जाग उठे!
अजेयता के दर्प से भरे
साम्राज्यों ने
कितने प्रपंच नहीं रचाये!

जिन साम्राज्यवादी लुटेरों ने
गुलामी में जकड़ी प्राची को
खून और आंसू के भंवर में
डुबो कर अधमरा कर दिया था,
उनपर भी
भारतेन्दु ने
दुग्ध धवल सात्विक प्रकाश फैलाया,
और उस प्रकाश में
उनके क्रूर कर्म का विकृत रूप
उजागर कर दिया!

भारतम् किपस्थि टे
नेतत्वम् वहिञ्चिता
माविपिल विश्वासत्तो–
टिनियुम् कुतियक्कुनु ।

३

अम्पिळि, निन्नेप्पोले
मोळिल निन्निल्ला 'बाप्पु'
तनूपिरनाटिङरले–
च्चेट टमणकुटिलुताऴुम
पुतिय वेळिच्चवुम्
धैयवुम सौन्दयवुम
पोतुविल् वळर्त्तुवान्
स्वातन्त्र्यम विटत्तुवान
मलिननिलङ्ङळिल्,—
कण्णीरिन वयटङळि–
लेळिय मनुष्यर् च–
र्णाद्रनाय् मन्न घुटि ट ।
स्नेहपूर्णमामुळ्ळम
मातमूडु मतिटे
दाहवप्रसरत्ताल्
परिलप्तमायवे,
मेवलसत्यतिने–
तिरञ्ञा महानाद्रै–
जीवनिलहिमये–
ससाटुति, यनिन् नाटम्
गर्वानिवराने चूपुम
रवमाट्वाटि टन्–
स्सार्चरितयायानुम
वेळिच्चम् काट्टुवान् ।

ओटक्कुपस

ला,
भारत प्राची का नेतृत्व स्वीकार कर
अपने उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त होकर
और भी आगे की ओर बढ़ रहा है।

२

हे चाँद,
तेरी भाँति
बापू कभी अछूते ऊपर नहीं रहे,
अपनी जन्मभूमि की
गरीब झोपड़ियों में
नया आलोक,
नया धीरज
और नया सौंदर्य पूरित करने के लिए,
स्वातन्त्र्य भावना को विकसित करने के लिए,
जीवन के मलिन तटों पर
आंसू के गहरे तलों में
अकिंचन दीन मानवों के साथ ही
वह सदा घूमते रहे।
जन्मभूमि के दुःख का
दाहक ताप पाकर
जब वह स्नेहपूर्ण हृदय
झुलस गया था
एकान्त सत्य की खोज में निरत
उस महात्मा ने मानवों की आर्द्र आत्मा में
अहिंसा की ज्योति जगायी
जिसकी लौ चारों ओर के नारकीय चण्डवात में भी
अचल रहती है, और
सब को प्रकाश देने के लिए
चारों ओर जल रही है।

४

अम्पिळि, करयुव ,
कूरिट्टिने वेनान
वेम्पुमा विश्वत्तिटे
मगळविळक्किने,
तन्चराचरस्नेहम
निरयुम विलालमाम
मणचेरातिने मर–
न्नेरियुम विळक्किने,
भूविनु यन्तत्तिटे
निपलाल मरञ्जेपुम
जीवने वीण्टुम् काट्टि–
क्काटुक्कुम विळक्किने,
भेदबुद्धितन् करिम्
कोट्टरळ कतिरिनाल
भेदनम् चेयवान तेळि–
ञ्ञाळिटुम् विळविरने,
पारिलेक्कुतप्मत–
यावेयुमाग्नायच्चन
पाप यनरमाञ्चुण्टायी
मृतिमलरियुवान् ।

पुलितन् यनल्वनण्णुम
सिहत्तिन् रक्माद्रमाम्
वनिय नरळञ्ञुम्
मण्णतिन् विपण्यलुम्
मानर्गत्तनल्स्मूधि–
यवनुम्नाए परिप्लुन–
मानवराणिण्णागिल –
मगमाणिन्नुम मत्यन् ।

ओटक्कुरन

४

हे चाद,
करो रुदन,
क्योंकि
आज एक पापी हाथ
समस्त कृतघ्नता का पुजीभूत रूप
प्रस्तुत हुआ पटक दने के लिए मृत्यु शिला पर
विश्व के उस मगल-दीप को,
जो आतुर था
घोर अधकार को ध्वस्त करने के लिए
जो परिपूर्ण था
चराचर के प्रेम से,
जो जल रहा था
अपनी क्षीण काया की उपेक्षा कर,
ज्योतित था जो
इसलिए कि
पृथ्वी को दिखा दे फिर से
यन्त्रा की परछाइ में छिपी उसकी आत्मा को,
जो था अत्यन्त प्राज्ज्वलित
अपनी किरणा से छिन भिन करने के लिए
भेद भावना के तमस परकोटो को।

अपने अन्तरग में पालते ह
ये सभ्य मानव
बाघ की जलती हुई आख
सिह के रक्त भरे नख
साँप के विषले दाँत
सचमुच आज का मानव पशु ही तो है।

नीवितत्तिने स्वच्छ–
प्राथनयाक्किक्काण्टु
भूविले विशुद्धियाय
वाणोरस्शान्ताकारन
हिन्दुवे, मुसल्माने–
स्शिसनेयारे सत्य–
बि दुविन् विकारमा–
णेल्लामेन्नोर्म्मिप्पिक्के,
सुन्दरसनातन–
चैत यत्तिलेयुक्वेव–
सान्दत्तालवरटे
हृत्तिनेयुयत्तवे
ठन्निली प्रपचत्ते
प्रपचत्तिऊरलत्तने–
त्तभेसुभापूण्णमाय
दर्शिच्चु वकूप्पुम्पोळ
मानवकगत्तिन्टे
पापत्ताल पिळर्न्नता
मारिटम् चरित्रत्ति ,–
भ्रेटुकळ चुवनुपोय !
पिळर्न्नू विरवत्तिटे
शुभ्रमाम हृत्तुम , रक्तोद्–
गळनाल ननञ्ञुपाय्
निम्मलसा घ्याम्बरम् !
पवलिन् मुगत्तुनि–
घटम्नू चोरत्तुळिऴ
परिपाटलमाय
भानुबिम्बत्तिलवनूटि ।
भालत्तिन् मिपियिन–
शरण्णुनीत्तरणमायि –
घराणुव विरक्तुव–
यायी जटन्टे गाऴम् !

वह सौम्याकार,
जिसने
जीवन को बनाया एक पावन प्रार्थना
और विराजित हुआ था
भूमि की विशुद्धि के रूप में,
हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख—सब को सिखाया
कि हम सब
एक ही स्वर्णिका के विविध अंग,
सुन्दर सनातन चैतन्य की ओर
एक ही स्पन्दन से उनके चित्त को ऊर्ध्वमुखी किया,
जब वह अपने में
सारा संसार
और सारे संसार में
अपने को देखकर
हाथ जोड़ वन्दना कर रहे थे,
तो मानव वर्ग के पापों ने
उनका हृदय विदीर्ण कर डाला,
इतिहास के पन्ने लाल हो गये!
फट गया
विश्व का निर्मल वक्ष,
रक्त बहा इतना कि
विमल सन्ध्याकालीन आकाश
भीग गया!
दिवस के मुख से
ढरक पड़ा और स्निग्ध
रक्त का बूँद-सा!
लो,
काल के आनन पर ढुलके अश्रुकण-सा
हमारा यह भूगोल
अभी भी कम्पित
दिखाई देता है!

५

अम्पिळि ! दिक्किन् तोळिल
    मूर्च्छिय्क्कयल्ली ? नीयुळ्-
क्काम्पिने वेविक्कुमी-
    क्कयथाल् विळत्तल्लो ।

इनि विस्तारिक्कुनी-
    लार्द्रात्मन् ! चुटुकण्णीर्
किनियुम् वरळुमा-
    यिरय निल्क्कट्टे , पोकू ।

पारिलम्पिळि ! नी त-
    प्ररुळुम् जगमनो-
हारियाम् वेळिच्चम् पोय्-
    मरयुम् निन्नोटोप्पम् ।

कटलिन् वाचालमाम्
    चुण्टिलो वेळ्ळाम्पलिन्
वरळिडक्ले स्निग्ध-
    मधुराश्रुविक्लो,

मलतन् चिन्तामूक-
    तमामाम् शिरस्सिलो
निलवोळ्कयिल्लतिन्
    तूमयुम् कुळिर मयुम् ।

भारते दुवो तिरा—
    मूतनामृतीर्थस्नालुम्
धीरमाम् तल्सन्देश-
    धाम्मिकप्रभापूरम्

जीवितमरणिये-
    स्सुन्दरमाकित्तकोण्टु
माविधिल् निरन्तरम् !
    परक्कुम् बद्धदूरम् !

५

चाद !

क्या तू

दिशाओ के कधे पर सिर रख कर

मूर्च्छित हो गया है !

दिल दहलानेवाली इस कथा को सुनकर

तू पक् पड गया है ?

नही बखानूगा यह कथा

हे आर्द्र हृदय,

विदा लो तुम ,

जलते आँसुओ से भरा हृदय लेकर

यह भारत खडा रहे शोकमग्न !

हे चाँद,

तेरे जाते ही

विदा ले लेगा ससार से

तेरा जगमोहन प्रकाश !

नही ठहर पायेगी सुभगता

सागर के वाचाल अधरो पर

धवल कुमुदो मे उर के

स्निग्ध मधुर अग मे

पर्वत के चिन्तामूलक उत्तुग हृदय मे !

यद्यपि

भारतेन्दु तिरोहित हो गया,

उसके धीर सन्देश का धार्मिक प्रभा पूर

जीवन के पथ का

सुदर और आलोकमय बनाता हुआ

भविष्य में बहुत दूर तक फैलेगा !

नाळत्तेक्केट्टुवान्
पाञ्ञेत्तुम करिम्पाटट
चीळत्तु चिरकटट्ट
चाम्पलाम , नाळम निल्कुम्,
चित्तयिलद्दहिन्चतु
मृत्युविन् चिरकत्रे ,
जितमत्युवाभात्मा–
वेत्तेनुम जयियक्कुम्नू !

—१९४८

ज्वाला को बुझाने के लिए
कूद पडते हैं काले काले पतग
किन्तु वे जल्दी ही पखहीन बन कर
राख हो जाते हैं,
तब भी ज्वाला रहती है अक्षुण्ण ही
चिता म जो जला
वह तो केवल मत्यु का पख है
आत्मा जो जितमत्यु है,
चिरन्तन रहा करती है!

—१९४८